अमृता प्रीतम चुनी हुई कहानियाँ

चुने हुए निबन्ध

मेरी सम्पादकीय डायरी

अमृता प्रीतम

जन्म हुआ 31 अगस्त, 1919 को गुजरांवाला (पंजाब) मे।
बचपन बीता लाहौर मे, शिक्षा भी वहीं हुई।
लिखना शुरू किया किशोरावस्था से
जिसका क्रम बना रहा है निरन्तर।
कविता भी, कहानी भी, उपन्यास भी निबन्ध भी।
पुस्तकें 50 से भी अधिक।
महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अनेक देशी विदेशी भाषाओ मे अनूदित।
पत्रकारिता मे रुचि का प्रमाण है नागमणि' मासिक
1966 से निरन्तर छप रहा है जो निजी देख रेख मे।
1957 म कविता-सग्रह 'सुनहरे' पर अकादमी पुरस्कार से
1958 मे पजाब सरकार के भाषा विभाग द्वारा
1973 मे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी लिट की मानद उपाधि से
1980 म बुलगारिया के वेप्तसरोव पुरस्कार (अन्तर्राष्ट्रीय) से
और अब
1982 मे भारत के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार
ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित।

अमृता प्रीतम

चुनी हुई कहानियाँ
चुने हुए निबन्ध

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक 421

अमृता प्रीतम चुनी हुई कहानियाँ
चुने हुए निबन्ध

AMRITA PRITAM
CHUNEE HUI KAHANIYAN
CHUNE HUE NIBANDHA

प्रथम संस्करण 1982

मूल्य 50/

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45-47, कनॉट प्लेस नई दिल्ली 110001

आवरण शिल्पी इमरोज

मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस
रोहतासनगर शाहदरा दिल्ली 110032

अपनी बेटी फदला के नाम

कहानियाँ

निबन्ध

मेरी सम्पादकीय डायरी

कहानियाँ

जगली वूटी

अगूरी, मेरे पडोसियों के पडोसियो के पडोसियों के घर, उन के बडे ही पुराने नौकर की बिलकुल नयी बीवी है। एक तो नयी इस बात से कि वह अपने पति की दूसरी बीवी है, सो उस का पति 'दुहाजू' हुआ। जू का मतलब अगर 'जून' हो तो इस का पूरा मतलब निकला 'दूसरी जून मे पड चुका आदमी,' यानी दूसरे विवाह की जून में, और अगूरी क्योंकि अभी विवाह की पहली जून मे ही है, यानी पहली विवाह की जून मे इसलिए नयी हुई। और दूसरे वह इस बात से भी नयी है कि उस का गौना आये अभी जितने महीने हुए हैं, वे सारे महीने मिलकर भी एक साल नहीं बनेंगे।

पाँच-छह साल हुए, प्रभाती जब अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपनी पहली पत्नी की 'किरिया' करने के लिए अपने गाँव गया था, तो कहते हैं कि किरिया-वाले दिन इस अगूरी के बाप ने उस का अगोछा निचोड दिया था। किसी भी मर्द का यह अगोछा भले *ही अपनी पत्नी की मौत पर आँसुओ से नही भीगा होता,* चौथे दिन या किरिया के दिन नहाकर बदन पोछने के बाद वह अगोछा पानी से ही भीगा होता है, पर इस साधारण सी गाँव की रस्म से किसी और लडकी का *बाप उठकर जब यह अगोछा निचोड देता है तो जैसे कह रहा होता है*—"उस मरनेवाली की जगह मैं तुम्हें अपनी बेटी देता हूँ और अब तुम्हे रोने की जरूरत नहीं, मैं ने तुम्हारा आँसुओ से भीगा हुआ अगोछा भी सुखा दिया है।"

इस तरह प्रभाती का इस अगूरी के साथ दूसरा विवाह हो गया था। पर एक तो अगूरी अभी आयु की बहुत छोटी थी, और दूसरे अगूरी की माँ गठिया के रोग से जुडी हुई थी इसलिए गौने की बात पाँच सालो पर जा पडी थी। फिर एक एक कर पाँच साल भी निकल गये थे। और इस साल जब प्रभाती अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपने गाँव गौना लेने गया था तो अपने मालिकों को पहले ही कह गया था कि या तो वह अपनी बहू को भी साथ लायेगा और शहर म अपने साथ रखेगा, या फिर वह भी गाँव से नहीं लौटेगा। मालिक पहले तो दलील

करने लगे थे कि एक प्रभाती की जगह अपनी रसोई में से वे दो जनों की रोटी नहीं देना चाहते थे। पर जब प्रभाती ने यह बात कही कि वह कोठरी के पीछेवाली कच्ची जगह को पोतकर, अपना अलग चूल्हा बनायेगी, अपना पकायेगी, अपना खायेगी, तो उस के मालिक यह बात मान गये थे। सो अगूरी शहर आ गयी थी। चाह अगूरी ने शहर आकर कुछ दिन महल्ले के मर्दों से तो क्या औरतों से भी घूंघट न उठाया था, पर फिर धीरे धीरे उस का घूंघट झीना हो गया था। वह पैरों में चाँदी की झांजरें पहनकर छनक छनक करती महल्ले की रौनक बन गयी थी। एक झांजर उस के पांवों में पहनी होती, एक उस की हँसी में। चाहे वह दिन का अधिकतर हिस्सा अपनी कोठरी में ही रहती थी पर जब भी बाहर निकलती, एक रौनक उस के पांवों के साथ साथ चलती थी।

"यह क्या पहना है, अगूरी ?"

"यह तो मेरे पैरों की छैल चूड़ी है।"

"और यह उगलियों में ?"

'यह तो बिछुआ है।"

"और यह बाँहों में ?"

"यह तो पछेला है।"

'और माथे पर ?"

"आलीबन्द कहते हैं इसे।"

"आज तुम ने कमर में कुछ नहीं पहना ?"

"तगड़ी बहुत भारी लगती है, कल को पहनूंगी। आज तो मैं ने तौक भी नहीं पहना। उस का टाँका टूट गया है। कल शहर में जाऊँगी, टाका भी गढाऊँगी और नाक की कील भी लाऊँगी। मेरी नाक को नक्सा भी था, इत्ता बड़ा, मेरी सास ने दिया नहीं।"

इस तरह अगूरी अपने चांदी के गहने एक नखरे से पहनती थी, एक नखरे से दिखाती थी।

पीछे जब मौसम फिरा था, अगूरी का अपनी छोटी कोठरी में दम घुटने लगा था। वह बहुत बार मेरे घर के सामने आ बैठती थी। मेरे घर के आगे नीम के बड़े-बड़े पेड़ हैं, और इन पेड़ों के पास जरा ऊँची जगह पर एक पुराना कुआ है। चाहे महल्ले का कोई भी आदमी इस कुएँ से पानी नहीं भरता, पर इस के पार एक सरकारी सड़क बन रही है और उस सड़क के मजदूर कई बार इस कुएँ को चला लेते हैं जिस से कुएँ के गिर्द अकसर पानी गिरा होता है और यह जगह बड़ी ठण्डी रहती है।

क्या पढ़ती हो, बीबीजी ? ' एक दिन अगूरी जब आयी, मैं नीम के पेड़ों के नीचे बैठकर एक किताब पढ़ रही थी।

"तुम पढ़ोगी ?"
"मेरे को पढना नही आता।"
"सीख लो।"
"ना।"
"क्यो ?"
"औरतो को पाप लगता है पढने से।"

"औरतो को पाप लगता है, मर्द को नही लगता ?"
"ना, मर्द को नही लगता ?"
"यह तुम्ह किस ने कहा है ?"
"मैं जानती हूँ।"
"फिर मैं तो पढती हूँ। मुझे पाप लगेगा ?"
"सहर की औरत को पाप नही लगता, गाँव की औरत को पाप लगता है।"

मैं भी हँस पडी और अगूरी भी। अगूरी ने जो कुछ सीखा सुना हुआ था, उस मे उसे कोई शका नही थी, इसलिए मैं ने उस से कुछ न कहा। वह अगर हँसती खेलती अपनी जिदगी के दायरे मे सुखी रह सकती थी, तो उस के लिए यही ठीक था। वसे मैं अगूरी के मुह की ओर ध्यान लगाकर देखती रही। गहरे साँवले रग मे उस के बदन का मास गुथा हुआ था। कहते हैं—औरत आटे की लोई होती है। पर कइयो के बदन का मास उस ढीले आटे की तरह होता है जिस की रोटी कभी भी गोल नही बनती, और कइयो के बदन का मास बिलकुल खमीर आटे जसा, जिसे बेलने से फलाया नही जा सकता। सिफ किसी किसी के बदन का मास इतना सख्त गुथा होता है कि रोटी तो क्या चाहे पूरियाँ बेल लो। मैं अगूरी के मुह की ओर देखती रही अगूरी की छाती की ओर, अगूरी की पिण्डलियो की ओर वह इतने सख्त मद की तरह गुथी हुई थी कि जिस से मठरिया तला जा सकती थी और मैं ने इस अगूरी का प्रभाती भी देखा हुआ था, ठिगने कद का ढलके हुए मुह का, कसोरे जैसा। और फिर अगूरी के रूप की ओर देखकर मुझे उस के खाविन्द के बारे म एक अजीब तुलना सूझी कि प्रभाती असल म आटे की इस घनी गुथी लोई को पकाकर खाने का हकदार नही—वह इस लोई को ढककर रखनेवाला कठवत है। इस तुलना से मुझे खुद ही हसी आ गयी। पर मैं अगूरी को इस तुलना का आभास नही देना चाहती थी। इसलिए उस से मैं उस के गाँव की छोटी छोटी बातें करने लगी।

माँ बाप की, बहन-भाइयो की, और खेतो खलिहानो की बातें करते हुए मैं ने उस से पूछा, "अगूरी, तुम्हारे गाँव में शादी कसे होती है ?"

"लड़की छोटी सी होती है, पाँच सात साल की, जब वह किसी के पाँव पूज लेती है।"

"कैसे पूजती है पाँव ?"

"लडकी का बाप जाता है, फूलों की एक थाली ले जाता है, साथ मे रुपये, और लडके के आगे रख देता है।"

"यह तो एक तरह से बाप ने पाँव पूज लिये। लडकी ने कैसे पूजे ?"

"लडकी की तरफ से तो पूजे।"

"पर लडकी ने तो उसे देखा भी नही ?"

"लडकियाँ नही देखती।"

"लडकियाँ अपने होनेवाले खाविन्द को नही देखती ?"

"ना।"

"कोई भी लडकी नही देखती ?"

"ना।"

पहले तो अगूरी ने 'ना' कर दी पर फिर कुछ सोच सोचकर कहने लगी, "जो लडकियाँ प्रेम करती हैं, वे देखती हैं।"

"तुम्हारे गाँव म लडकिया प्रेम करती है ?"

"कोई कोई।"

"जो प्रेम करती हैं, उन को पाप नही लगता ?" मुझे असल म अगूरी की वह बात स्मरण हो आयी थी कि औरत को पढने से पाप लगता है। इसलिए मैं ने सोचा कि उस हिसाब से प्रेम करने से भी पाप लगता होगा।

"पाप लगता है, बडा पाप लगता है।" अगूरी ने जल्दी से कहा।

"अगर पाप लगता है तो फिर वे क्यो प्रेम करती हैं ?"

"जे तो बात यह होती है कि कोई आदमी जब किसी छोकरी को कुछ खिला देता है तो वह उस से प्रेम करने लग जाती है।"

"कोई क्या खिला देता है उस को ?"

"एक जगली बूटी होती है। बस वही पान मे डालकर या मिठाई मे डालकर खिला देता है। छोकरी उसे प्रेम करने लग जाती है। फिर उसे वही अच्छा लगता है, दुनिया का और कुछ भी अच्छा नही लगता।"

"सच ?"

"मैं जानती हूँ, मैं ने अपनी आँखों से देखा है।"

"किसे देखा था ?"

"मेरी एक सखी थी। इत्ती बडी थी मेरे से।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? वह तो पागल हो गयी उस के पीछे। सहर चली गयी उस के साथ।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम है कि तेरी सखी को उस ने बूटी खिलायी थी ?"

"बरफी मे डालकर खिलायी थी। और नही तो क्या, वह ऐसे ही अपने माँ-बाप को छोडकर चली जाती ? वह उस को बहुत चीजें लाकर देता था। सहर से धोती लाता था, चूड़ियाँ भी लाता था शीशे की, और मोतियो की माला भी।"

"ये तो चीजें हुईं न ! पर यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि उस ने जगली बूटी खिलायी थी !"

"नही खिलायी थी तो फिर वह उस को प्रेम क्यो करने लग गयी ?"

"प्रेम तो यों भी हो जाता है।"

"नहीं, ऐसे नही होता। जिस से माँ बाप बुरा मान जायें, भला उस से प्रेम कैसे हो सकता है ?"

'तू ने वह जगली बूटी देखी है ?"

"मैं ने नही देखी। वो तो बडी दूर से लाते हैं। फिर छिपाकर मिठाई मे डाल देते हैं, या पान मे डाल देते हैं। मेरी माँ ने तो पहले ही बता दिया था कि किसी के हाथ से मिठाई नही खाना।"

"तू ने बहुत अच्छा किया कि किसी के हाथ से मिठाई नही खायी। पर तेरी उस सखी ने कैसे खा ली ?"

"अपना किया पायेगी।"

किया पायेगी।' कहने को तो अगूरी ने कह दिया पर फिर शायद उसे सहेली का स्नेह आ गया या तरस आ गया, दुखे हुए मन से कहने लगी, "बावरी हो गयी थी बेचारी ! बालो म कघी भी नही लगाती थी। रात को उठ उठकर गाने गाती थी।"

'क्या गाती थी ?"

"पता नहीं, क्या गाती थी। जो कोई बूटी खा लेती है, बहुत गाती है। रोती भी बहुत है।"

बात गाने से रोने पर आ पहुची थी। इसलिए मैं ने अगूरी से और कुछ न पूछा।

और अब बडे थोडे ही दिनो की बात है। एक दिन अगूरी नीम के पेड के नीचे चुप-चाप मेरे पास आ खडी हुई। पहले जब अगूरी आया करती थी तो छन छन करती, बीस गज दूर से ही उस के आने की आवाज सुनायी दे जाती थी, पर आज उस के पैरों की झांजरें पता नहीं कहाँ खोयी हुई थीं। मैं ने किताब से सिर उठाया और पूछा, "क्या बात है, अगूरी ?"

अगूरी पहले कितनी ही देर मेरी ओर देखती रही, फिर धीरे से कहने लगी, "बीबीजी, मुझे पढना सिखा दो।"

"क्या हुआ अगूरी ?"

"मुझे नाम लिखना सिखा दो।"

"किसी को खत लिखोगी?"

अगूरी न उत्तर न दिया, एकटक मरे मुह की ओर देखती रही।

"पाप नही लगेगा पढने से?" मैं न फिर पूछा।

अगूरी न फिर भी जवाब न दिया और एकटक सामन आसमान की ओर देखने लगी।

यह दुपहर की बात थी। मैं अगूरी को नीम के पेड के नीचे बैठी छोडकर अन्दर आ गयी थी। शाम को फिर कही मैं बाहर निकली, तो देखा, अगूरी अब भी नीम के पेड के नीचे बठी हुई थी। बडी सिमटी हुई थी। शायद इसलिए कि शाम की ठण्डी हवा देह म थोडी थोडी कपकँपी छेड रही थी।

मैं अगूरी की पीठ की ओर थी। अगूरी के होंठो पर एक गीत था, पर बिलकुल सिसकी जैसा—"मेरी मुन्दरी मे लागो नगीनवा, हो बैरी कैसे काटू जोबनवां।"

अगूरी ने मेरे पैरो की आहट सुन ली, मुँह फेर देखा और फिर अपने गीत को अपने होठो मे समेट लिया।

"तू तो बहुत अच्छा गाती है अगूरी!"

सामने दिखायी दे रहा था कि अगूरी ने अपनी आखों मे कांपते आँसू रोक लिये और उन की जगह अपने होठो पर एक कांपती हसी रख दी।

'मुझे गाना नही आता।"

'आता है "

' यह तो "

'तेरी सखी गाती थी?"

"उसी से सुना था।"

' फिर मुझे भी तो सुनाओ। '

"ऐसे ही गिनती है बरस को। चार महीने ठण्डी होती है, चार महीन गरमी, और चार महीने बरखा '

'ऐसे नही, गा के सुनाओ।"

अगूरी ने गाया तो नही, पर बारह महीनो को ऐस गिना दिया जैसे यह सारा हिसाब वह अपनी उँगलियो पर कर रही हा—

> 'चार महीने राजा, ठण्डी होवत है,
> थर थर कांपे करेजवा।
> चार महीने, राजा, गरमी होवत है,
> थर-थर कांपे पवनवा।

चार महीने, राजा, बरखा होवत है,
घर थर कांपे बदरवा।"

"अंगूरी ?"

अंगूरी एकटक मेरे मुह की ओर देखने लगी। मन मे आया कि इस के कन्धे पर हाथ रखके पूछू, "पगली, कही जंगली बूटी तो नही खा ली ?" मेरा हाथ उस के कन्धे पर रखा भी गया। पर मैं ने यह बात पूछने के स्थान पर यह पूछा, "तू ने खाना भी खाया है, या नही ?"

"खाना ?" अंगूरी ने मुह ऊपर उठाकर देखा। उस के कन्धे पर रखे हुए हाथ के नीचे मुझे लगा कि अंगूरी की सारी देह कांप रही थी। जाने अभी अभी उस ने जो गीत गाया था—बरखा के मौसम मे कांपनेवाले बादलो का, गरमी के मौसम मे कांपनेवाली हवा का, और सर्दी के मौसम मे कांपनेवाले कलेजे का—उस गीत का सारा कम्पन अंगूरी की देह मे समाया हुआ था।

यह मुझे मालूम था कि अंगूरी अपनी रोटी खुद ही बनाती थी। प्रभाती मालिकों की रोटी बनाता था और मालिकों के घर से ही खाता था, इसलिए अंगूरी को उस की रोटी की चिन्ता नही थी। इसलिए मैं ने फिर कहा, "तू ने आज रोटी बनायी है, या नही ?"

"अभी नही।"

"सवेरे बनायी थी ? चाय पी थी ?"

"चाय ? आज तो दूध ही नही था।"

"आज दूध क्यों नही लिया था ?"

"वह तो मैं लेती नही, वह तो "

"तू रोज चाय नही पीती ?"

"पीती हूँ।"

"फिर आज क्या हुआ ?"

"दूध तो वह रामतारा "

रामतारा हमारे महल्ले का चौकीदार है। सब का साझा चौकीदार। सारी रात पहरा देता है। वह सवेरसार खूब उनीदा होता है। मुझे याद आया कि जब अंगूरी नही आयी थी, वह सवरे ही हमारे घरो से चाय का गिलास मांगा करता था। कभी किसी के घर से और कभी किसी के घर से, और चाय पीकर वह कुएँ के पास खाट डालकर सो जाता था।—और अब जब से अंगूरी आयी थी वह सवेरे ही किसी ग्वाले से दूध ले आता था, अंगूरी के चूल्हे पर चाय का पतीला चढ़ाता था, और अंगूरी, प्रभाती और रामतारा तीनो चूल्हे के गिर्द बैठकर चाय पीते थे। और साथ ही मुझे याद आया कि रामतारा पिछले तीन दिनो से छुट्टी लेकर अपने गाँव गया हुआ था।

मुझे दुखी हुई हँसी आयी और मैं ने कहा, "और अगूरी, तुम ने तीन दिन से चाय नहीं पी ?"

"ना," अगूरी ने जुबान से कुछ न कहकर केवल सिर हिला दिया।

"रोटी भी नहीं खायी ?"

अगूरी से बोला न गया। लग रहा था कि अगर अगूरी ने रोटी खायी भी होगी तो न खाने जैसी ही।

रामतार की सारी आकृति मेरे सामने आ गयी। बड़े फुर्तीले हाथ पाँव, इकहरा बदन, जिस के पास हलके-हलके हँसती हुई और शरमाती आँखें थी और जिस की जुबान के पास बात करने का एक खास सलीका था।

"अगूरी !"

"जी !"

"कहीं जगली बूटी तो नहीं खा ली तू ने ?"

अगूरी के मुह पर आँसू बह निकले। इन आँसुओ ने बह बहकर अगूरी की लटो को भिगो दिया। और फिर इन आँसुओ ने बह बहकर उस के होठों को भिगो दिया। अगूरी के मुँह से निकलते अक्षर भी गीले थे, "मुझे कसम लागे जो मैं ने उस के हाथ से कभी मिठाई खायी हो। मैं ने पान भी कभी नहीं खाया। सिफ चाय जाने उस ने चाय मे ही "

और आगे अगूरी की सारी आवाज उस के आँसुओ मे डूब गयी।

गुलियाना का एक खत

टहनी पत्तो से भर गयी थी, पर उस पर फूल नहीं लगते थे। मैं रोज पत्तो का मुह देखती थी और सोचती थी कि चम्पा कब खिलेगी। गमला कितना भी बडा हो, पर गमले मे चम्पा नही फूलती—मुझे एक माली ने बताया था और कहा था कि इस पौधे की जडों को धरती की ज़रूरत होती है। और मैं उस पौधे को गमले मे से निकालकर धरती मे रोप रही थी कि एक औरत मुझ से मिलने के लिए आयी।

"तुम्हे कहाँ कहाँ से पूछती और कहाँ कहाँ से खोजती आयी हूँ।"

"तुम ? नीली आँखोवाली सुन्दरी ?"

"मेरा नाम गुलियाना है।"

"फूल-सी औरत।"

"पर लोहे के पैरो चलकर पहुँची हू। मुझे दो साल होने को आये है, चलते हुए।"

"किस देश से चली हो ?'

"यूगोस्लाविया से।"

"भारत मे आये कितना समय हुआ ?"

'एक महीना। बहुत लोगो से मिली हूँ। कुछ औरतो से बडी चाह से मिलती हूँ। तुम से मिले बग़ैर मुझे जाना नहीं था, इसलिए कल से तुम्हारा पता पूछ रही थी।"

मैं ने गुलियाना के लिए चाय बनायी और चाय का प्याला उसे देते हुए भूरे बालों की एक लट उस के माथे से हटायी और उस की नीली आँखो मे देखा और कहा, "अच्छा, अब बताओ गुलियाना ! तुम्हारे पाँव लोहे के हो सही, पर ये क्या अभी तुम्हारे हुस्न और तुम्हारी जवानी का भार उठाकर थके नही ? ये देश-देशान्तर मे भटकते क्या खोज रहे हैं ?'

गुलियाना ने एक लम्बी साँस लेकर मुसकरा दिया। जब किसी की हँसी मे

एक विश्वास घुला हुआ हो, उस समय उस की आँखो म जो चमक उतर आती है, मैं ने वह चमक गुलियाना की आँखो म देखी।

'मैं ने अभी तक लिखा कुछ नही, पर लिखना बहुत कुछ चाहती हूँ। मगर कुछ भी लिखन से पहले मैं यह दुनिया देखना चाहती हूँ। अभी बहुत दुनिया बाकी पडी है जो मैं ने देखी नही है इसलिए मैं अभी थकने की नहो। पहले इटली गयी थी, फिर फ्राम, फिर ईरान और जापान "

"पीछे कोई तुम्हारी बाट देखता होगा ?"

मेरी माँ मरी बाट दख रही है।"

"उसे जब तुम्हारा खत मिलता होगा, तब कितनी चहक उठती होगी वह !"

"वह मेरे हरेक खत को मेरा आखिरी खत समझ लेती है। उसे यह यकीन नही आता कि फिर कभी मेरा और खत भी आयेगा।"

'क्यो ?"

"वह सोचती है कि मैं इसी तरह चलती चलती रास्ते मे कही मर जाऊँगी। मैं उमे खूब लम्बे लम्बे खत लिखती हूँ। आखें तो वह खो बैठी है, पर मरे खत किसी से पढवा लेती है। इस तरह वह मेरी आँखो से दुनिया को देखती रहती है।'

"अच्छा गुलियाना तुमने जितनी भी दुनिया देखी है, वह तुम्हे कसी लगी? किसी जगह ने हाथ बढाकर तुम्हे रोका नही कि बस, और कही मत जाओ ?"

'चाहती थी कि कोई जगह मुझे रोक ले मुझे थाम ले, बाध ले। पर "

"जि दगी के किमी हाथ म इतनी ताकत नही आयी ?"

"मैं शायद जि दगी से कुछ अधिक मागती हूँ जरूरत से ज्यादा। मेरा देश जब गुलाम था मैं आजादी की जग मे शामिल हो गयी थी।"

"कब ?'

"1141 मे हम ने लोकराज्य के लिए बगावत की। मैं ने इस बगावत मे बढकर भाग लिया था, चाहे मैं तब छोटी सी ही रही हूगी।'

'वे दिन बडी मुश्किल के रहे होगे ?"

"चार साल बडी मुसीबतो भरे थे। कई कई महीने छिपकर काटने होते थे।"

'कई बार दुश्मन हमारा पता पा गये। हमे एक पहाडी से चलकर दूसरी पहाडी पर पहुँचना होता था। एक रात हम साठ मील चले थे।'

'साठ मील ! तुम्हारे इस नाजुक से बदन म इतनी जान है, गुलियाना ?"

"यह तो एक रात की बात है। तब हम करीब तीन सौ साथी रहे होंगे। पर सारी उमर चलने के लिए कितनी जान चाहिए, और वह भी अकेले !"

"गुलियाना !"

"चलो, कोई ख़ुशी की बात करें। मुझे कोई गीत सुनाओ।'

"तुम ने कभी गीत लिखे है, गुलियाना ?"

"पहले लिखा करती थी। फिर इस तरह महसूस होने लगा कि मैं गीत नही लिख सकती। शायद अब लिख सकूगी।"

'कसे गीत लिखोगी, गुलियाना ? प्यार के गीत ?"

"प्यार के गीत लिखना चाहती थी, पर अब शायद नही लिखूगी। हालांकि एक तरह से व प्यार के गीत ही होंग, पर उस प्यार के नही जो एक फूल की तरह गमले मे रोपा जाता है। मैं उस प्यार के गीत लिखूगी, जो गमले मे नही उगता, जो सिफ धरती म उग सकता है।"

गुलियाना की बात सुनकर मैं चौंक उठी। मुझे वह चम्पा का पड याद हो आया जिसे अभी अभी मैं ने गमले से निकालकर धरती मे लगाया था। मैं गुलियाना के चेहरे की ओर देखने लगी। ऐसा लग रहा था जैसे इस धरती को गुलियाना के दिल का और गुलियाना के हुस्न का बहुत सा कर्ज़ा देना हो। गुलियाना मुझे लेनदार प्रतीत हो रही थी। पर मुझे उस की ओर देखते लगा कि इस धरती ने कभी भी उस का ऋण नही चुका पाया था।

"गुलियाना !"

'मैं इसी लिए कहती थी कि मैं शायद जि़न्दगी से कुछ अधिक चाहती हू— ज़रूरत से ज्यादा।"

"यह ज़रूरत से ज्यादा नही, गुलियाना ! सिफ उतना, जितना तुम्हारे दिल के बराबर आ सके।"

"पर दिल के बराबर कुछ नही आता। हमारे देश का एक लोकगीत ह—

"तेरी डोली को कहारो न उठाया,
खाट को कौन कन्धा दे,
मेरी खाट को कौन कन्धा देगा ?"

'गुलियाना, तुम ने क्या किसी को प्यार किया था ?'

"कुछ किया ज़रूर था, पर वह प्यार नही था। अगर प्यार होता, तो जि़न्दगी से लम्बा होता। साथ ही मेरे महबूब को भी मेरी उतनी ही ज़रूरत होती जितनी मुझे उस की ज़रूरत थी। मैं ने विवाह भी किया था, पर यह विवाह उस गमले की तरह था जिस म मेरे मन का फूल कभी न उगा।"

'पर यह धरती "

"तुम्ह इस धरती से डर लगता है ?"

'धरती तो बडी ज़रखेज़ है, गुलियाना। मैं धरती से नही डरती, पर "

"मुझे मालूम है, तुम्ह जिस चीज़ स डर लगता है। मुझे भी यह डर लगता

है। पर इसी डर से पुष्ट होकर तो मैं दुनिया मे निकल पड़ी हूँ। आखिर एक फूल को इस धरती मे उगने का हक क्यों नहीं दिया जाता !"

"जिस फूल का नाम 'औरत' हो ? '

"मैं ने उन लोगों से हठ ठाना हुआ है जो किसी फूल को इस धरती म उगने नही देते खासकर उस फूल को जिस का नाम औरत हो। यह सभ्यता का युग नही। सभ्यता का युग तब आयेगा जब औरत की मरजी के बिना कोई औरत के जिस्म को हाथ नही लगायेगा !"

"सब से अधिक मुश्किल तुम्हें कब पेश आयी थी ?"

"ईरान मे। मैं ऐतिहासिक इमारतों को दूर-दूर तक जाकर देखना चाहती थी, पर मेरे होटलवालों ने मुझे कही भी अकेले जाने से मना कर दिया। मैं वहाँ दिन मे भी अकेले नहीं घूम सकती थी।"

"फिर ?"

'बीच-बीच मे कुछ अच्छे लोग भी होते हैं। उसी होटल मे एक आदमी ठहरा हुआ था जिस के पास अपनी गाडी थी। उस ने मुझ से कहा कि जब तक वह होटल में है, मैं उस की गाडी ले जाया करूँ। वह मेरे साथ कभी कहीं न गया, पर उस ने अपनी गाडी मुझे दे दी। ड्राइवर भी दे दिया। मुझे वह सहारा ओढ़ना पडा। पर ऐसा कोई भी सहारा हम क्यों ओढ़ना पडे ?"

"जापान मे भी मुश्किल आयी ?"

"वहाँ मुझे सब से बडी मुश्किल पडी। सिर्फ एक रात एक शराबी ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया था। मैं ने उसी समय कमरे मे से टेलिफोन कर के होटलवालो को बुला लिया था। एक बार फ्रांस मे जाने क्या हो जाता, अगर कही जोरो की बरसात न शुरू हो गयी होती। मैं एक बगीचे मे बैठी हुई थी। सामने कुछ दूरी पर एक पहाड था। मैं वहाँ जाना चाहती थी। दो आदमी काफी देर से मेरा पीछा कर रहे थे। मैं जानती थी कि अगर मैं पहाड की किसी निजन जगह पर चली गयी तो ये आदमी वहाँ जाकर जाने क्या करें। पर मेरे दिल म गुस्सा खौल रहा था कि मैं इन गुण्डो से डरकर पहाड पर क्यो न जाऊँ। इसलिए मैं बगीचे म से उठकर उस तरफ चल पडी। कुछ दूर गयी थी कि जोरो से बरसात होने लगी। मुझे अपने होटल मे लौटना पडा। पर यह सब गलत है। मैं यही सोचती हुई चलती जाती हूँ कि आखिर यह सब अभी तक इतना गलत क्यो बना हुआ है जब मनुष्य अपने को इतना सभ्य और इतना उन्नत मानने लगा है !"

"तुम अपने गुजारे के लिए क्या करती हो, गुल ?"

"छोटे छोटे सफरनामे लिखती हूँ। छपने के लिए अपने देश मे भेज देती हूँ। कुछ पसे मिल जाते है। कुछ अनुवाद कर के भी कमा लेती हूँ। मुझे फ्रेंच अच्छी आती है। मैं फ्रेंच की पुस्तको का अपनी भाषा मे अनुवाद करती हूँ। वापस

जाकर मैं एक बड़ा सफ़रनामा लिखूँगी। शायद गीत भी लिखूँ। आजकल जब मैं सोती हूँ, तो एक गीत मेरे दिल में मँडराने लगता है। पर जब मैं जागती हूँ, तो मैं उसे याद नहीं पाती।"

"अच्छा, गुलियाना, और बातें छोड़ो, मुझे उस गीत की बात सुनाओ। मैं ने गीत नहीं कहा, गीत की बात कही है।"

"बात ही तो मुझे अभी तक मालूम नहीं है। मैं वह बात खोज रही हूँ जिस में से गीत उगते हैं। बिना बात के ही दो पंक्तियाँ जोड़ी हैं। इस से आगे नहीं जुड़तीं। बात के बिना भला गीत कैसे जुड़ेगा?" गुलियाना ने कहा और एक टूटे हुए गीत की तरह मेरी ओर देखा। फिर गुलियाना ने गीत की दो कड़ियाँ सुनायीं—

> "आज किस ने आसमान का जादू तोड़ा?
> आज किस ने तारों का गुच्छा उतारा?
> और चाबियों के गुच्छे की तरह बाँधा,
> मेरी कमर से चाबियों को बाँधा?"

और गुलियाना ने अपनी कमर की ओर संकेत कर मुझ से कहा, "यहाँ चाबियों के गुच्छे की तरह मुझे कई बार तारे बँधे हुए महसूस होते हैं।"

मैं गुलियाना के चेहरे की ओर देखने लगी। तिजोरियों की चाबियों को चाँदी के छल्लों में पिरोकर जिस गुच्छे को उस ने अपनी कमर में बाँधने से इनकार कर दिया था और उस की जगह वह तारों के गुच्छे अपनी कमर में बाँधना चाहती थी। गुलियाना के चेहरे की ओर देखती हुई मैं सोचने लगी कि इस धरती पर वे घर कब बनेंगे जिन के दरवाज़े तारों की चाबियों से खुलते हों।

"तुम क्या सोच रही हो।"

"सोचती थी कि तुम्हारे देश में भी औरतें अपनी कमर में चाबियों का गुच्छा बाँधती हैं?"

"हमारी माँ-दादियाँ अपनी कमर में चाबियाँ बाँधा करती थीं।"

"चाबियों से घर का खयाल आता है और घर से औरत के आदिम सपने का।"

"देखो, इस सपने को खोजती खोजती मैं कहाँ पहुँच गयी हूँ। अब मैं अपने गीतों का यह सपना अमानत दे जाऊँगी।"

"धरती के सिर तुम्हारा कर्ज और बढ़ जायेगा।"

क़र्ज़ की बात सुनकर गुलियाना हँसने लगी। उस की हँसी उस लेनदार की तरह थी जिस के काग़ज़ों पर लिखी हुई क़र्ज़ की सारी गवाहियाँ झूठी निकल आयी हों।

गुलियाना के चेहरे की ओर देखते मुझे ऐसा लगा कि ध्यान के दिये जगा दिये गये हों।

को अगर गुलियाना का हुलिया अपने कागज़ों मे दर्ज करना पडे, तो वह इस तरह लिखेगा—

नाम गुलियाना सायेनोविया।

बाप का नाम निकोलियन सायनोविया।

ज म शहर मैसेडोनिया।

कद पाँच फुट तीन इच।

बालो का रग भूरा।

आँखो का रग सलेटी।

पहचान का निशान उस के निचले होठ पर एक तिल है और बायी ओर की भौं पर छोटे-से ज़ख्म का निशान है।

और गुलियाना की बातें सुनते हुए मुझे इस तरह लगा कि किसी दिलवाले इनसान को अगर अपनी जि दगी के कागज़ो म गुलियाना का हुलिया दर्ज करना हो, तो वह इस तरह लिखेगा—

नाम फूल की महक सी एक औरत।

बाप का नाम इनसान का एक सपना।

ज म शहर धरती की बडी जरखेज मिट्टी।

कद उस का माथा तारा से छूता है।

बालो का रग धरती के रग जैसा।

आँखो का रग आसमान के रग जैसा।

पहचान का निशान उसके होठो पर जि दगी की प्यास है और उसके रोम-रोम पर सपनो का बौर पडा हुआ है।

हैरानी की बात यह थी कि जि दगी ने गुलियाना को ज म दिया था, पर ज म देकर उस की खबर पूछना भूल गयी थी। पर मैं हैरान नही थी क्योकि मुझे मालूम था कि जि दगी को विसार देनेवाली बडी पुरानी आदत है। मैं ने हसकर गुलियाना से कहा 'हमारे देश म एक बूटी होती है जिसे हम ब्राह्मी बूटी कहते हैं। हमारी पुरानी किताबो मे लिखा हुआ है कि ब्राह्मी बूटी पीसकर जो कुछ दिन पी ले उस की स्मरणशक्ति लौट आती है। मेरा ख्याल है कि जि दगी को ब्राह्मी बूटी पीसकर पीनी चाहिए।"

गुलियाना हँस पडी और कहने लगी, 'तुम जब कोई प्यारा गीत लिखती हो या कोई भी, जब कोई बडा प्यारा लिखता है तो वह जगल मे से ब्राह्मी बूटी की पत्तियाँ ही तोड रहा होता है। शायद कभी वह दिन आयेगा जब जि दगी को हम अपनी बूटी पिला देंगे कि उसे भूल जाने की यह आदत नही रहेगी।"

गुलियाना उस दिन चली गली, पर ब्राह्मी बूटी की बात पीछे छोड गयी। मैं जब भी कही कोई प्यारा गीत पढती, मुझे उस की बात याद आ जाती कि

हम सब मन के जंगल में से ब्राह्मी बूटी की पत्तियाँ बीन रहे हैं। हम किसी दिन ज़िन्दगी को शायद इतनी बूटी पिला देंगे कि उसे हम याद आ जायेंगे।

पाँच महीने होने को हैं। मुझे गुलियाना का एक भी ख़त नहीं मिला। और अब महीने पर महीने बीतते जायेंगे, गुलियाना का ख़त कभी नहीं आयेगा। क्योंकि आज के अख़बार में यह ख़बर छपी हुई है कि दो देशों की सीमा पर कुछ फ़ौजियों ने एक परदेशी औरत को खेतों में घेर लिया। औरत को बड़ी चिंताजनक हालत में अस्पताल में पहुँचाया गया। अस्पताल में पहुँचते ही उस की मौत हो गयी। उस का पासपोर्ट और उस के कागज़ आग से जली हुई हालत में मिले। औरत का क़द पाँच फ़ुट तीन इंच है। उस के बालों का रंग भूरा और आँखों का रंग सलेटी है। उस के निचले होंठ पर एक तिल है और उस की बायीं भौं पर एक छोटे से ज़ख्म का निशान है।

यह अख़बार की ख़बर नहीं ! सोच रही हूँ, यह गुलियाना का एक ख़त है। ज़िन्दगी के घर में जाते हुए उस ने ज़िन्दगी का एक ख़त लिखा है और उस ने ख़त में ज़िन्दगी से सब से पहला सवाल पूछा है कि आख़िर इस धरती में उस फूल को आने का अधिकार क्यों नहीं दिया जाता जिस का नाम औरत हो ? और साथ ही उस ने पूछा है कि सभ्यता का यह युग कब आयेगा जब औरत की मरज़ी के बिना कोई मर्द किसी औरत के जिस्म को हाथ नहीं लगा सकेगा ? और तीसरा सवाल उस ने यह पूछा है कि जिस घर का दरवाज़ा खोलने के लिए उस ने अपनी कमर में तारों के गुच्छे का चाबियों के गुच्छे की तरह बाँधा था, उस घर का दरवाज़ा कहाँ है ?

चू

घोडी हिनहिनायी। गुलेरी दौडकर अन्दर से बाहर आयी। उस न घोडी की आवाज पहचान ली थी। वह घोडी उस के मायके की थी। उस न घोडी की गरदन के साथ अपना सिर टेक दिया। जसे वह घाडी की गरदन न होकर उस के मायके का द्वार हो।

गुलेरी का मायका चम्बे शहर म था। ससुराल का गाँव लक्कडमण्डी एव खजियार के रास्ते म एक ऊची समतल जगह पर था। खजियार स लगभग एक मील आगे चलकर पहाडी का एक ऐसा माड आता था, जहा पर खडे होकर चम्बा शहर बहुत दूर और बहुत नीचा दिखायी देता था। कभी कभी गुलेरी जब उदास हो जाती तो अपने मानक को साथ लेकर उस मोड पर आकर खडी हो जाती। चम्बे शहर के मकान उस को एक जगमगात बिन्दु के समान दिखायी देते, फिर वे बि दु उस के मन म एक चमक पैदा कर देत।

मायके वह वष भर मे एक बार आश्विन के महीने मे जाती थी। हर साल इन दिनो उस के मायके मे चुगान का मला लगता था। माता पिता उस को लिवाने के लिए आदमी भेज देते थे। सिफ गुलेरी के ही नही गुलेरी की सभी सहेलिया के मायके अपनी लडकिया को बुलावा भेज देते थे। सभी सहेलियाँ जब एक दूसरे के गले मिलती तो वर्ष भर की सभी ऋतुओ के दुख सुख की बातें एक दूसरी से कह सुन लेती और अपने मायके की गलियो मे हिरनियो के समान चौकडी भरती स्वच्छन्द घूमती।

दो दो, तीन तीन बच्चो की माताएँ बडे बच्चो को उन के दादा दादी के पास छोड आती और गोदवाले को मायके पहुँचते ही ननिहालवालो के हवाले कर देती। मेले के लिए नये कपडे सिलवाती। चुनरियो को रँगवाती और अबरक लगवाती। मेले मे से काच की चूडिया और चादी की बालियाँ खरादती। मेले मे से खरीदी हुई सुगधित साबुन की टिकियो को अपने बदन पर एसे मलती जसे वह अपने खोये हुए कुँआरे यौवन की ग ध को फिर सूघना चाहती हो।

गुलेरी कितने ही दिनों से आज के दिन की इंतजार कर रही थी। आश्विन का आसमान जब सावन-भादों की बरसात के साथ हाथ-पाँव धोकर निखर उठता था, गुलेरी और गुलेरी जैसी ससुराल में बैठी लड़कियाँ पशुओं को दाना पानी डालती, सास ससुर के लिए दाल चावल राँधती और हर रोज़ हाथ पाँव धोकर बन-सँवर बैठती तो मन में सोचने लगतीं आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कोई न कोई उन के मायके से उन को लेने के लिए आता होगा।

आज गुलेरी के घर के दरवाज़े के सामने उस के मायके की घोड़ी हिनहिनायी तो गुलेरी चंचल हो उठी। घोड़ी लेकर आये नत्थू नामे को गुलेरी ने बैठने के लिए चौकी दी।

गुलेरी का कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। उस के मुंह का रंग स्वयं सब कुछ बता रहा था। मानक ने तम्बाकू का एक लम्बा कश खींचा और आँखें बंद कर लीं, जाने उस से तम्बाकू का नशा न झेला गया या गुलेरी के मुंह का रंग।

'इस बार तो मेला देखने आयेगा न, चाहे दिन का दिन ही सही।" गुलेरी ने मानक के पास उठकर बड़े दुलार से कहा।

मानक के हाथ काँपे, उस ने हाथों में पकड़ी हुई चिलम को एक ओर रख दिया।

"बोलता क्या नहीं?" गुलेरी ने रोष के साथ कहा।

'गुलेरी, एक बात कहूँ?"

"मैं जानती हूँ, तू ने क्या कहना है। क्या यह बात तुझे कहनी चाहिए? साल भर में एक बार तो मैं मायके जाती हूँ। फिर तू मुझे ऐसे क्यों रोकता है?"

"आगे तो मैं ने तुझे कभी भी कुछ नहीं कहा?"

"फिर इस बार क्यों कहता है?"

"इस बार बस इस बार" मानक के मुँह से एक लम्बी आह निकल गयी।

'तेरी माँ तो मुझे कुछ कहती नहीं, फिर तू क्यों रोकता है?" गुलेरी की आवाज में बच्चा जैसी जिद थी।

"मेरी माँ" मानक ने अपना मुंह बंद कर लिया। जैसे आगे की बात को उस ने दांतों-तले दबा लिया हो।

दूसरे दिन गुलेरी मुंह अँधेरे बन सँवरकर तैयार हो गयी। गुलेरी का न कोई बड़ा बच्चा था, न गोद का। न किसी को ससुराल में छोड़ना था, न किसी को मायके ले जाना था। नत्थू ने घोड़ी पर काठी कसी और गुलेरी के सास ससुर ने उस के सिर पर प्यार दिया।

"चल, दो कोस मैं भी तेरे साथ चलूँगा।" मानक ने कहा। गुलेरी ने खुश होकर मानक की बाँसुरी अपने आँचल में रख ली।

वे खजियार पार कर गये। आगे एक कोस और लाँघ गये। फिर चम्बे क उतराई आरम्भ हो गयी। गुलेरी ने आँचल में से बाँसुरी निकाली और मानक के हाथ मे थमा दी।

सामने कठिन उतराई थी। पाँव जैसे फिसल रहे थे। गुलेरी ने मानक का हाथ पकडा और रुककर कहने लगी, "बजाता क्यो नही बाँसुरी ?"

सोच भी जैसे उतराई उतर रही थी। मानक का मन फिसलता जा रहा था। गुलेरी ने जब मानक का हाथ पकडा तो मानक ने चौंककर उस की ओर देखा।

"बजाता क्यो नही बासुरी ?" गुलेरी ने फिर कहा।

मानक ने बासुरी होठो के साथ लगायी, फूक मारी पर बासुरी म स ऐसा स्वर निकला जैसे बासुरी की जबान पर छाले पड गये हो।

'गुलेरी तू मत जा ! मैं तुझे फिर कहता हूँ, मत जा। इस बार मत जा।'

मानक ने हाथ की बाँसुरी गुलेरी को वापस कर दी।

"कोई बात भी तो हो ? अच्छा तू मेले के दिन चला आइयो। मैं तरे साथ लौट आऊँगी। पीछे नही रहूँगी, सच्च कहती हूँ, पक्की बात।'

मानक ने कुछ न कहा पर उस ने गुलेरी के मुह की ओर ऐसे देखा जसे वह कहना चाहता हो, गुलेरी यह बात पक्की नही। यह बहुत कच्ची है।' पर मानक ने कुछ न कहा जसे उस को कुछ कहना न आता हो।

गुलेरी और मानक सडक स थोडा-सा हटकर एक पत्थर के साथ अपनी पीठ टेककर खडे हो गये। नत्थू ने दस कदम आगे बढकर घोडी खडी कर दी थी पर मानक का मन कही भी खडा नही हो रहा था।

मानक का मन घूमता फिसलता आज से सात वष पीछे तक चला गया। यही दिन थे जब मानक अपन मित्रो के साथ इस सडक को लाघता हुआ चौगान का मेला देखने चम्बे गया था। मले मे काँच की चूडिया से लेकर गाया बकरियो तक कुछ न कुछ खरीद और बच रह थे। इसी मेले मे मानक ने गुलरी को देखा था और मानक को गुलेरी ने। फिर दोनो ने एक-दूसरे का दिल खरी लिया था।

व दोनो अवसर देखकर एक दूसरे को मिले थे। 'तू तो दुधिया भुट्टे जैसी है।' मानक ने यह कहकर गुलेरी का हाथ पकड लिया था।

पर कच्चे भुट्टे को पशु मुह मारत है।' यह कहकर गुलेरी न हाथ छुडा लिया था और मुसकरात हुए कहा था, 'इनसान तो भुट्टे का भूनकर खाते हैं। यदि साहस है तो मरे पिता से मेरा रिश्ता माँग ले।'

मानक के दूर-पास के सम्बंधियो मे जब भी किसी का ब्याह होता था तो लडकेवाले मूल्य चुकात थे।

मानक डर रहा था कि पता नहीं गुलेरी का पिता कितना रुपया माँग ले। पर गुलेरी का बाप खाता-पीता आदमी था। और फिर वह दूर शहर में भी रह आया था। वह अपने मन में यह निश्चय किये हुए था कि घरवालों से बेटी के पैसे नहीं लूँगा। जहाँ पर अच्छा घर और वर मिलेगा वहीं पर अपनी लड़की का ब्याह कर दूगा। मानक के इस काम में कोई कठिनाई नहीं हुई। दोनों के दिल मिले हुए थे। दोनों ने ब्याह का रास्ता ढूँढ लिया था।

"आज तू क्या सोच रहा है? तू मुझे अपने मन की बात क्यों नहीं बताता?" गुलेरी ने मानक के कन्धे को हिलाते हुए कहा।

मानक ने गुलेरी की ओर ऐसे देखा जैसे उस की जबान पर छाले पड़ गये हों।

घोड़ी हिनहिनायी। गुलेरी को आगे का रास्ता स्मरण हो आया। वह चलने के लिए तैयार हुई और मानक से कहने लगी, 'आगे चलकर नील फूला का वन आता है। कोई दो मील होगा। तू जानता है न उस वन को पार करनेवालों के कान बहरे हो जाते हैं।"

' !," मानक ने धीरे से कहा।

"मुझे ऐसा लग रहा है जैसे हम उस वन में से गुज़र रहे हैं। तुझे मेरी कोई बात सुनायी ही नहीं देती है।"

"तू सच कहती है, गुलेरी। मुझे तुम्हारी कोई बात सुनायी नहीं देती और तुझे मेरी कोई बात सुनायी नहीं देती।' मानक ने एक लम्बी साँस ली।

दोनों ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा। पर दोनों एक दूसरे की बात नहीं समझ सके।

"मैं अब जाऊँ? तू वापस चला जा। तू बड़ी दूर आ गया है।" गुलेरी ने धीरे से कहा।

"तू इतना रास्ता पैदल चलती आयी, घोड़ी पर नहीं बैठी। अब घोड़ी पर बैठ जाना।" मानक ने उसी प्रकार धीरे से कहा।

"यह ले पकड़ अपनी बाँसुरी।"

"तू अपने साथ ही ले जा।"

'मेले के दिन आकर बजायेगा?" गुलेरी हँस दी। उस की आँखों में धूप चमक रही थी।

मानक ने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। शायद उस की आँखों में बादल उमड़ आये थे।

गुलेरी ने मायके का रास्ता लिया और मानक लौट आया।

"माँ !" घर पहुँचकर मानक इस तरह खाट पर गिर पड़ा जैसे वह बड़ी मुश्किल से खाट तक पहुँच पाया हो।

"बड़ी देर लगायी। मैं तो सोचती थी शायद तू उस को आखिर तक छोड़ने चला गया है।" माँ ने कहा।

"नहीं, माँ, आखिर तक नहीं गया। रास्ते में बीच ही छोड़ आया हूँ।" मानक का गला रुँध गया।

"औरतों की तरह रोता क्यों है? मर्द बन।" माँ ने रोष से कहा।

मानक के मन में आया कि वह माँ से कहे, 'पर तू तो औरत है, एक बार औरतों की तरह रोती क्यों नहीं?'

मानक को गुलेरी की एक बात स्मरण हो आयी।

'हम नीले फूलोंवाले वन में से गुज़र रहे हैं जहाँ पर सभी के कान बहरे हो जाते हैं।' मानक को ऐसे महसूस हुआ कि आज किसी को उस की बात सुनायी नहीं देती। सारा संसार जैसे नीले फूलों का वह वन है और सभी के कान बहरे हो गये हैं।

सात वर्ष हो गये थे। गुलेरी की अभी तक कोख नहीं हरियायी थी। माँ कहती थी, 'अब मैं आठवाँ वर्ष नहीं लगने दूँगी।" माँ ने पाँच सौ रुपया देकर भीतर ही भीतर मानक के दूसरे ब्याह की बात पक्की कर ली थी। वह उस समय के इंतज़ार में थी कि जब गुलेरी मायके जायेगी, वह नयी बहू का डोला घर ले आयेगी।

इस के बाद मानक को ऐसे महसूस हुआ जैसे उस के दिल का मास सो गया था। गुलेरी का प्यार उस के दिल में चुटकी भर रहा था। पर उस के दिल को कुछ महसूस नहीं हो रहा था। नयी बहू की कोख से उत्पन्न होनेवाले बच्चे की हँसी उस के दिल को गुदगुदा रही थी, पर उस के दिल को कुछ नहीं हो रहा था। जाने उस के दिल का मास सो गया था।

सातवें दिन मानक के घर उस की नयी बहू बैठी हुई थी।

मानक के सभी अंग जाग रहे थे, एक उस के दिल का मास सोया हुआ था। दिल के सोये हुए मास को उस के जागते रहे अंग सभी स्थानों पर ले गये थे। नयी ससुराल में भी और नयी बहू के बिछौने पर भी।

मानक मुँह अँधेरे अपने खेत में बैठा हुआ तम्बाकू पी रहा था जब मानक का एक पुराना मित्र वहाँ से गुज़रा।

"इतने बड़े सवेरे कहाँ चला है, भवानी?"

भवानी एक मिनट चौंककर ठहर गया। चाहे उस ने अपने कन्धे पर एक छोटी सी गठरी उठायी हुई थी फिर भी धीरे से कहने लगा, "कहीं नहीं।"

'कहीं तो चला है। आ बैठ, तम्बाकू पी ले।" मानक ने आवाज़ दी।

भवानी बैठ गया और मानक के हाथ से चिलम लेकर पीता हुआ कहने लगा 'चम्बे चला हूँ, आज वहाँ मेला है।"

मेले के शब्द ने मानक के दिल मे जाने कैसी सुई चुभो दी, मानक को महसूस हुआ उस के भीतर कही पीडा हुई थी।

8963

"आज मेला है?" मानक के मुह से निकला।

"हर वर्ष आज के दिन ही होता है।" भवानी ने कहा। फिर मानक की ओर ऐसे देखा जसे वह यह भी कह रहा हो, 'तू भूल गया है इस मेले को? सात वर्ष हुए जब तू मेले मे गया था। मैं भी तो तेर साथ था। तू ने तो इसी मेले म मुहब्बत की थी।'

भवानी स कहा कुछ नही, पर मानक को ऐसे महसूस हुआ कि जैसे उस ने सब कुछ सुन लिया था। उस को भवानी पर गुस्सा आ रहा था कि वह सब कुछ क्या सुन रहा है।

भवानी मानक की चिलम छोडकर उठ खडा हुआ। उस की पीठ पर लटक रही गठरी मे से उसकी बांसुरी का सिरा बाहर निकला हुआ था। भवानी चलता जा रहा था।

मानक उस की पीठ को देखता रहा। पीठ पर रखी हुई छोटी सी गठरी को देखता रहा। गठरी म से निकले हुए बांसुरी के सिरे को देखता रहा।

'भवानी और भवानी की बांसुरी मेल जा रहे हैं।' मानक को अपनी बांसुरी स्मरण हो आयी जब उस ने मायके जा रही गुलेरी को अपनी बांसुरी देते हुए कहा था, 'इसे तू साथ ले जाना' फिर मानक को खयाल आया, 'और मैं?'

मानक का मन आया कि वह भी भवानी के पीछे-पीछे दौड पडे। वह अपनी उस बांसुरी के पीछे दौड पडे, जो उस से पहले मेले मे चली गयी थी।

मानक ने हाथ से चिलम फेंक दी और भवानी के पीछे-पीछे दौड पडा। फिर मानक की टांगें कांपने लग पडीं। वह वही का वही बैठ गया।

मानक को सारा दिन और सारी रात मेले जा रहे भवानी की पीठ दिखायी देती रही।

दूसरे दिन तीसरे पहर का समय था जब मानक अपन खेत मे बैठा हुआ था। उस को मेले मे से आत हुए भवानी का मुह दिखायी दिया।

मानक ने मुह एक ओर कर लिया। उस ने सोचा कि मुझ को न तो भवानी का मुंह दिखायी दे और न भवानी की पीठ। इस भवानी को देखकर उस को मेले की याद आ जाती थी और यह मेला उस के सोये हुए दिल के मास को जगा देता था। और जब वह मास जाग पडता था उस मे बहुत पीडा होती थी।

मानक ने मुह फेर लिया, पर भवानी चक्कर काटकर भी मानक के सामने आ बैठा। भवानी का मुह ऐसा था, जैसे किसी ने जल रहे कोयले पर अभी अभी पानी डाला हो। और उसके तार का रग अब लाल न होकर काला हो।

मानक ने डरकर भवानी के मुंह की ओर देखा।

"गुलेरी मर गयी।"

'गुलेरी मर गयी?"

"उस ने तुम्हारे विवाह की बात सुनी और मिट्टी का तेल अपने ऊपर डाल कर जल मरी।"

"मिट्टी का तेल " इस के बाद मानक बोला नहीं।

पहले भवानी डरा। फिर मानक के माँ बाप डर गये, और फिर मानक की नयी बहू डर गयी कि मानक को पता नहीं क्या हो गया था। वह न किसी के साथ बोलता था, और न किसी को पहचानता दीखता था।

कई दिन बीत गय। मानक समय पर रोटी खाता, खेती का काम भी करता और सभी के मुह की ओर एसे देखता जैसे वह किसी को भी न पहचानता हो।

"मैं उस की ओरत काहे की हू? मैं तो सिफ इस के फेरो की चोर हूँ।" नयी बहू दिन रात रोने लगी। यह फेरो की चारी अगले महीन मानक की नयी बहू की और मानक की माँ की आशा बन गयी। बहू के दिन चढ गये थे। माँ ने मानक को अकेले मे बैठाकर यह बात सुनायी। पर मानक ने माँ के मुह की ओर ऐसे देखा जैस यह बात उस की समझ मे न आयी हो।

मानक को चाहे कुछ समझ म नही आया था पर वह बात बहुत बडी थी। मा ने नयी बहू को हौसला दिया कि तू हिम्मत से यह वेला काट ले। जिस दिन मैं तुम्हारा बच्चा मानक की झोली मे रखूगी तो मानक की सभी सुधियाँ पलट आयेंगी। फिर वह वेला भी कट गयी। मानक के घर बेटा पैदा हुआ। माँ ने बालक को नहलाया धुलाया, कोमल रेशमी कपडे मे लपेटकर मानक की झोली मे डाल दिया।

मानक झोली में पडे हुए बच्चे को देखता रहा, फिर जसे चीख उठा, "इस को दूर करो, दूर करो! मुझे इस म मिट्टी के तेल की बू आती है।'

अजनबी

न जाने क्यो, लोकनाथ को अपने जीवन की हर बात किसी न किसी जानवर की सूरत म याद आती थी। बचपन के कितने ही पल एक अघायी हुई बिल्ली की तरह म्याऊँ म्याऊँ करते हुए उसके पास से गुजर जाते थे। इन पलो को जसे उस की माँ ने अभी-अभी दूध स भरी हुई कटोरी पिलायी हो, और उस के भूरे झबरैल बालो को उस के बाप ने जसे अभी अभी अपन हाथो से सहलाया हो।

लोकनाथ का छोटा भाई प्रेमनाथ अब नेवी म था। इकहरे बदन का खूबसूरत सा नौजवान। पर छुटपन मे वह पढाई म भी उतना ही कमजोर था जितना कि वह शरीर से दुबला था। लोकनाथ जब उसे पढाने के लिए कभी अपने पास बिठाता था तो किताब के अक्षरो पर सिकुडी हुई उस की आँखें, कई बार अचानक सहमते से फैलकर लोकनाथ का चेहरा ताकने लगती थी। और फिर जब लोकनाथ उसे दिलासा देता था तो जैस मि नत-सी करती हुई उसकी आँखें पिघलने लग जाती थी। और अब नेवी का अफसर बनकर वह नये नये बन्दरगाहो पर जाता था और वहाँ से तसवीरें खींचकर लोकनाथ को भेजता था तो लोकनाथ को उस के साथ बिताये हुए पलो की याद ऐसे आती थी जैसे एक छोटा सा पिल्ला पछ हिलाते हुए अपनी गीली जीभ से उस की तली को चाटने लगा हो।

उस ने किसी राजनीतिक पार्टी म कभी दखल देना नही चाहा था। पर अनुभवो की भूख कई बार उसे मीटिंगा मे ले जाती थी। वह नही जानता, कब खुफिया पुलिस ने अपने कागजो मे उस का नाम दज कर लिया था और उस के बारे म अपनी लम्बी चौडी राय बना रखी थी। उस की डिगरियो से घबराकर जब कभी कोई सरकारी दफ्तर उसे नौकरी का वचन द देता तो पुलिस की यही लम्बी चौडी राय उस वचन को एक ही झटके मे तोडकर रख देती। अब जब कि लोकनाथ एक कॉलेज का प्रोफेसर था और अपने लिए उस ने एक निश्चित स्थान बना लिया था तो कई परेशान समहों की याद उसे उन चीलो और बन्दरो की

सूरत मे याद आती थी जो न जाने कहाँ से आते थे और उस के हाथ। का खरोंच-कर रोटी का टुकडा छीनकर ले जात थे।

सरकारी दफ्तरो की ढीली रफ्तार उसे केंचुओ सी लगती। किसी भी काब-लियत के रास्त म पेश आनवाली ईर्ष्या उसे साँप की तरह फुकारती सुनायी देती। कइयो की ईष्या और जलन को उस न अपने शरीर पर भेला था—भस के सीगो की तरह। अपन सगे सम्बधिया के फुजूल उलाहनो और रूठने क पल उसे अलमारी म घुसे हुए चूहे मालूम होते थे जा कीमती कागजो को कुतरने चले जाते ह।

लोकनाथ को अपनी बीवी बहुत पसन्द थी। इस बीवी को, लोकनाथ का दिल कहता था, कि उस ने किस्सा कथाओ के इश्क से भी ज्यादा इश्क किया था। उस के साथ बितायी और बीत रही घडिया लोकनाथ की नजर मे ऐस थी जैस नन्हीं-नन्ही चिडिया उस के आसपास चहकती हो, जैसे कुजो की एक कतार बादला को काटकर गुजरी हो, जसे घुग्गियो के कुछ जोडे उस की खिडकी म आकर बैठ गय हो, जस सुग्गो का एक भुण्ड उम के आगन के पेड पर आ बठा हो। अपनी बीवी के खत, और बीवी के नाम लिखे हुए अपने खत लोकनाथ को हमेशा उन कबूतरों-से लगते थे जो किसी दीवार की ओट म घोसला बनाने के लिए तिनके जोडत रहते है।

विवाह से पहले लोकनाथ अपनी बीवी को उस के जन्मदिन पर एक किताब भेंट किया करता था। विवाह के बाद हर साल उस के जन्मदिन पर उस के होठ चूमता था और कहता था, 'मेरी उमर का यह साल एक किताब की तरह तुम्हारी नजर।' इस तरह लोकनाथ अपनी बीवी को अब तक अपनी उमर क पचीम साल पचीस किताबो की तरह सौगात म दे चुका था। उसे यकीन था कि उस के जीते जी उस की बीवी का कोई ऐसा जन्मदिन नही जायेगा जब कि वह अपनी जिन्दगी का कोई साल एक खुली किताब की तरह उसे भेंट नही करेगा।

सिफ एक बार ऐसा हुआ था—बाईस साल पहले की बात है—एक सुबह लोकनाथ चारपाई स उठा तो उम का बदन तप रहा था। रात को वह अच्छा-भला सोया था। गरीवाला एक केक लाकर उस ने अपनी अलमारी म रखा था। इस बार न जाने कैसे उस की बीवी को अपना जन्मदिन याद नही रहा था। शायद इसलिए कि उस की एक बहुत पुरानी सहेली कई सालो बाद उस दिन विदेश स लौट रही थी और उस ने उसे मिलन के लिए जाना था। लोकनाथ ने सुबह अपनी बीवी को चौंकाने क लिए केक लाकर अलमारी म छिपा दिया था। पर सुबह जब वह उठा तो उस के माथे म जोरो का दर्द हो रहा था। बीवी के साथ उम ने चाय भी पी और केक भी खाया उसे चौंकाया भी उन के होठ चूम कर उसे अपनी उमर का एक साल किताब की तरह सौगात में भी दिया। पर

उस के बाद वह सारा दिन चारपाई से नही उठ सका। उस दिन वह सोच रहा था कि जो किताब इस बार उस ने अपनी बीवी को दी थी, उस किताब का एक पन्ना उस मे से फटा हुआ था। उस रात वह फटा हुआ पन्ना किसी जानवर के टूटे हुए पंख की तरह उस की छाती मे हिलता रहा।

लोकनाथ की जिन्दगी के कुछ पल मासूम उडने परिन्दो की तरह थे, कुछ पालतू परिन्दो की तरह और कुछ जगल के जानवरो की तरह। पर किसी पल से वह कभी डरा नही था, चौंका भी नही था। पर एक—लोकनाथ की जिन्दगी में एक वह घडी भी आयी थी—मुश्किल से पन्द्रह मिनटो के लिए जो एक बार एक चमगादड की तरह उस के मन मे चली आयी थी और बेशक होश हवास की सारी खिडकियाँ खुली थी, पर वह घडी एक अन्धे चमगादड की तरह बार-बार दीवारो से टकराती रही थी और बार-बार लोकनाथ के कानो पर झपटती रही थी। लोकनाथ ने घबराकर कानों पर हाथ रख लिये थे और कुछ मिनटो के लिए उसे आवाजें सुनायी नही दी थी, उस की जमीर की आवाज भी नहीं, पर एक आवाज थी जो उस समय भी कनपटियों मे उसे सुनायी देती रही थी, और खून की इस आवाज से छुटकारा पाने के लिए उस ने

बाईस साल बीत गये थे। पर वह घडी, मुश्किल से पन्द्रह मिनटो की वह घडी, लोकनाथ को जब कभी याद आ जाती—याद नही आती थी बल्कि चमगादड की तरह उस के सिर पर उडती थी—तो लोकनाथ घबराकर उसे जल्दी बाहर निकाल देने के लिए उस के पीछे दौडने लगता था।

इस चमगादड जैसी घडी के आने का कोई समय नही था। कभी 'फ्रायड' के पन्ने उलटते हुए वह अचानक आ जाती थी तो कभी किसी खूबसूरत कविता को पढते हुए भी वह दिखायी दे जाती। एक बार अपने नये जनमे बेटे की गरदन मे से दूध की महक सूघते हुए भी लोकनाथ को वह चमगादड दिखायी दी थी। और आज जब लोकनाथ की बडी बेटी सुचेता, मायके मे प्रसूत काल काटकर ससुराल जाने लगी थी, और नन्हे से बालक को झोली मे लेकर जब उस ने अपने बाप से मिन्नत की थी कि उस की छोटी बहन रीता को वह कुछ दिनो के लिए उस के साथ ससुराल भेज दें क्योकि छोटा सा बालक शायद उस से अकेले न सँभले, तो लोकनाथ के चेहरे का रंग पीला पड गया था। एक चमगादड उस के सिर पर मँडराने लगा था। आँगन मे बैठी उसकी बीवी, उस की बेटी, उसे लेने आया उस का खाविन्द, झोली मे पडा बच्चा, कुछ दूर पर बैठी उस की दूसरी बेटी आँगन मे करम खेल रहा उस का बेटा—सारे के सारे जैसे ओझल हो गये। होश हवास की सारी खिडकियाँ खुली थी, पर एक अन्धा चमगादड दीवारो से सिर पटक रहा था, लोकनाथ के कानो पर झपट रहा था, और लोकनाथ उसे जल्दी से बाहर निकाल देने के लिए अपने मन की चारो नुक्कडो मे दौडने लगा।

यह चमगादड एक स्मृति थी। बात बाईस साल पहले की थी—लोकनाथ के घर जब पहला बच्चा हुआ था, यही सुचेता। लोकनाथ की बीवी बेहद कमजोर हो आयी थी। अपनी बीवी को मायके से अपने घर लाने की जगह वह उसे पहाड पर ले गया था। छोटा सा बच्चा न उस से सँभल पा रहा था न उस की बीवी से। इसलिए वह अपनी बीवी की छोटी बहन को भी अपने साथ पहाड पर ले गया था। पन्द्रह सालो की वह उर्मी उसे बिलकुल अपनी बहन सी दिखायी देती थी या अपनी बेटी की तरह जो कुछ सालो बाद उसी की उमर की हो जानी थी। कई बार बच्ची जब सो रही होती थी तो उर्मी को घुमाने के लिए वह अपने साथ ले जाता था। उस की बीवी अभी चल नही सकती थी। कही कही चीड के पेडो के नीचे झरे हुए तिनको की तह बैठ जाती थी। उर्मी दौड पडती थी तो लोकनाथ उसे फिसलने से बचाने के लिए उस का हाथ पकड लेता था। उसने यह कभी नही सोचा था कि इस उर्मी को उस के हाथो कभी ठेस भी लग सकती थी। एक बार सैर के लिए जाते वक्त उस ने अपनी बच्ची की गरदन को चूमा। सो रही बच्ची मे से सौंफिया दूध और पाउडर की अजीब सी गन्ध आ रही थी। बच्ची की मा भी बच्ची के पास लेटी हुई थी। लोकनाथ ने उस के कान के पास होकर धीरे से अपने होंठ छुआये तो बच्चीवाली गन्ध उसे अपनी बीवी के बालो म से भी आयी। और फिर उसी दिन की बात है, सैर करते हुए जब उस ने उर्मी का हाथ पकड कर उसे फिसलती चढाई पर चढने के लिए सहारा दिया तो उस के कन्धे को छूती हुई उस की सास मे से भी वही गन्ध आयी। लोकनाथ अपनी बीवी को मजाक करता आया था और उर्मी से भी बोला, *"बेबी का सौंफिया दूध, लगता* है, तुम दोनो को भी अच्छा लगने लगा है।"

इस के आगे लोकनाथ को नही मालूम कि क्या कैसे हुआ। एक गन्ध थी जो उस के गले सिमट आयी थी—सौंफिया दूध की, पाउडर की गुदाज चमडी की, *औरत के अगो की, और चीड के पेडो की।* और लोकनाथ को लगा कि जगल की खुली हवा में भी उस का दम घुट रहा है। और फिर यह गन्ध कुहासे की तरह उठी और उस के गले से होकर माथे में छा गयी। और फिर सारे चेहरे उस कुहासे की आट मे छिप गये—उर्मी का चेहरा, उस की बीवी का चेहरा, उस की बच्ची का चेहरा। चेहरो का अहसास होता था पर पहचाने नही जाते थे। फिर लोकनाथ को लगा कि दूर-पास कही कोई बस्ती नहीं थी। जहां तक नजर जाती थी—वहाँ तक सिर्फ खँडहर ही थे। फिर किसी खँडहर मे से चमगादडो की एक तेज गन्ध उठी और उस के सिर मे छा गयी। फिर उसे लगा कि किसी दीवार की ओट से निकल कर एक चमगादड उस के कानो पर झपटने लगा था। उस ने घबराकर दोनो हाथ कानों पर रख लिये थे। कुछ मिनटों के लिए उसे कोई आवाज सुनायी नहीं दी थी—जमीर की आवाज भी नही, पर एक आवाज उसे अब भी सुनायी दे रही

थी—सुनायी कानों से नहीं दे रही थी बल्कि खून की हरेक बूद से उठ रही दिखती थी।

यह जैसे एक बहुत बड़ी साजिश थी। जमीर की आवाज के खिलाफ खून की आवाज की साजिश थी—चेहरे की हर पहचान के खिलाफ एक बूंद की साजिश थी—जगल की खुली हवा के खिलाफ़ एक गध की साजिश थी—हर आबादी के खिलाफ़ हर खडहर की साजिश थी।

लोकनाथ किसी की कोई साजिश न समझ सका। पद्रह मिनटों का वह समय जब उस की उमर स टूटकर एक अग की तरह दूर जा पडा तो लोकनाथ को लगा कि उस की सारी जिन्दगी अपाहिज बनकर रह गयी थी।

उस शाम जब वह घर लौटा, उस की बीवी क कमर म जो मोमबत्ती जल रही थी, लोकनाथ को लगा, उस मोमबत्ती की लपट उस के चहरे की तरफ देखकर थरथराती हुई जैसे जल्दी स बुझ जाना चाहती थी।

जब रात घिर आयी तो अँधेरा लोकनाथ को अच्छा लगा। पर, फिर उसे लगा कि एक अंधरा उस की छाती म घिर आया था। अधरे का एक टुकडा रात के अधरे से टूटकर अलग जा पडा था। रात का अँधेरा तालाब के पानी की तरह ठहरा हुआ था जिस म से एक गध उठ रही थी। उस रात लोकनाथ को कितने ही खयाल आये। उसे लगा कि वे सारे खयाल इस तालाब मे तरते हुए मच्छरों जैसे थे।

दूसरे दिन वह पहाड से लौट आया था। उर्मी को उस के मां बाप के पास छोड आया था। और फिर उर्मी को उस के विवाह के दिन, एक बार भरे आंगन मे मिलने के सिवा, वह कभी नही मिला था। वह एक माफी थी, जिसे वह सारी उमर अपने को गैरहाजिर रखकर उर्मी से मांगता रहा था।

"पापाजी!" सुचेता ने एक मिन्नत से लोकनाथ की खामोशी तोडनी चाही। और धीरे से बोली, 'आप क्या सोच रहे हैं, पापा? वैसे मैं जानती हूं, आप 'न' नही करेंगे।"

"क्या?" लोकनाथ ने हैरान होकर अपनी बेटी की तरफ देखा। यह बेटी उसे बहुत प्यारी थी। उस की बात उस ने कभी नही टाली थी। पर वह हैरान था कि अगर कोई होनी वक्त के साथ मिलकर एक साजिश करने लगी थी, तो उस की बेटी को इस साजिश की समझ क्यो नही लग रही थी।

"रीता को कुछ दिन मैं अपने साथ ले जाऊं? यह सोनी मुझ से सँभलती नही " सुचेता फिर कह रही थी। साथ म मां ने भी हामी भरी, 'एक महीने तक रीता का कालेज खुल जायेगा। यही छुट्टियो का एक महीना ही है एक महीना ही सही राजेन्द्र भी ज़ोर डाल रहे हैं।"

"राजेन्द्र बडा होनहार है," लोकनाथ को खयाल आया और फिर अपने

जँवाई के चेहरे की तरफ देखते हुए उसे लगा कि कोई होनी एक पागल कुत्ते की तरह—इस अच्छे लडके को काटने के लिए तिलमिला रही थी। वह तनकर खडा हो गया ऐसे जैसे वह उसे पागल कुत्ते से बचा सकता था। "मैं अगले महीने खुद आकर रीता को छोड जाऊँगा," राजेन्द्र ने धीरे से कहा।

"नहीं, बिलकुल नहीं।" लोकनाथ ने जरा सख्ती से कहा। सब ने घबराकर पहले लोकनाथ की ओर देखा, फिर एक दूसरे की ओर, ऐसे जैसे उन्होंने लोकनाथ की आवाज़ नहीं सुनी थी, किसी बडे अजनबी की आवाज सुनी थी।

एक निश्वास

करमो ने लोटे में लस्सी डलवायी और फिर आधे से भी कम भरे हुए लोट को देखती हुई बोली, "आज बडी सरदारिन नही दिखती कहीं ! राज़ी खुशी तो है ?"

सरदारिन निहालकौर अभी एक घडी पहले चौके मे आयी थी। चूल्हे पर रखी खीर के नीचे ज़्यादा आँच देखकर उस ने लकड़ियाँ पीछे खीच ली थी, "क्यो री, बीरो ! खीर भी कभी इतनी आँच पर बनी है ? इस के नीचे बहुत हलकी आँच चाहिए।" उस ने कहा था और फिर चूल्हे के पास लकडी की पटरी रख कर और उस पर बैठकर पतीले मे कलछी घुमाने लग गयी थी। सुबह दही उस ने खुद बिलोया था, पर लस्सी छानते हुए उस ने बीरो को कहा था कि वह कुछ पल अब आराम करेगी। जो भी आय, बीरो उसे लस्सी दे दे।

शायद औरो ने लस्सी लेते हुए यह बात पूछी थी, पर निहालकौर नही जानती। वह अन्दर के कमरे म थी। पर अब जब वह आँगन मे थी तो दहलीज़ो के बाहर बैठी करमो की आवाज़ उस ने खुद सुनी थी।

"राज़ी हूँ, करमो ! तुम तो ठीक हो ?" निहालकौर ने अन्दर से पूछा।

करमो ने जल्दी से दहलीज़ के पास आकर झाँका और अपने एक हाथ को माथे से छुआती हुई बोली, "जुग जुग जियो सरदारिन, आज तुम्हें देखा नही था ! मैं ने सोचा मेरी सरदारिन ठीक तो है !"

सभी लोग निहालकौर की बलाएँ लेते थे। यह नयी बात नही थी, फिर भी निहालकौर को लगा कि लस्सी लेते ही करमो ने उसे याद किया था तो ज़रूर कोई बात होगी। तभी जब निहालकौर ने करमो की तरफ देखा तो वह लोटा निहालकौर की तरफ झुकाकर खडी हुई थी। निहालकौर समझ गयी। वह बीरो की तरफ देखती हुई बोली, "सुनो ! करमो का लोटा भर दिया कर ! इस के छोटे छोटे बच्चे लस्सी पर पलते हैं।"

"राम तुम्हें दुगना दे ! तुम्हारे हाथ इतने सन्तोषी है कि अनजाने ही दो दो बार लस्सी डार जाते हैं !" लोटे म और लस्सी लेती हुई करमो बोली। और

चाहे इस समय उस को तसल्ली देनेवाले हाथ वीरो के थे, पर वह कह रही थी निहालकौर के हाथों को।

करमा के चले जाने पर निहालकौर उस की दी हुई दुआएँ भूल गयी, उस का कहा हुआ सिर्फ एक शब्द उसे याद रह गया 'बडी सरदारिन'

निहालकौर एक ही दिन में सरदारिन से बडी सरदारिन बन गयी थी। मालूम नहीं उसे बडी सरदारिन कहने का खयाल सब से पहले किसे आया था। शायद सब को एक साथ ही आ गया था। घर की महरी से लेकर कारखाने के सारे मुंशी, मुनीम उसे बडी सरदारिन कहकर बुलाने लगे थे। यहाँ तक कि घर के मालिक सरदार ने भी कल उसे बडी सरदारिन कहकर बुलाया था। और फिर निहालकौर को खयाल आया कि परसों उस ने खुद ही तो महरी से कहा था कि जाकर छोटी सरदारिन को कमरे से बुला लाये। अगर कोई छोटी सरदारिन हो तो बडी सरदारिन खुद ही बन जाती थी। निहालकौर ने सोचा, और फिर कितने ही खयाल छोटे छोटे धान के दानों की तरह उस के मन के दूध में रँधने लगे।

रँधते हुए खयालों में एक खयाल यह भी था कि वीरो जब से इस घर में छोटी बहू बनकर आयी थी तभी से वह रात को सोने से पहले नियमपूर्वक निहालकौर के कमरे में आती थी और उस की चारपाई के पाये पर बैठकर उस के पाँवों को दबाती थी। निहालकौर ने न तो बेटी की डोली भेजनी थी न बेटे की डोली लानी थी, पर जब उस के हाथों ब्याही वीरो उस के पाँवों को दबाती थी तो उसे लगता था कि उस ने बेटी भी पा ली थी और बहू भी। और निहालकौर ने एक गहरा सांस लेकर हँसते हुए होठों से अपने आप को मना लिया था कि वीरो उस की बेटी भी थी और बहू भी।

निहालकौर ने अपने सरदार के दूसरे विवाह के लिए यह लडकी वीरो खुद ही तलाश की थी। रिश्ते अच्छे घर से भी मिल रहे थे, पर वे सारे सरदार के लिए नहीं मिल रहे थे सरदार की हवेली के निमित्त थे। सरदार की ढलती हुई उमर से डरते हुए जो भी लोग रिश्ता लेकर आते थे, वे रिश्ता करने से पहले हवेली को अपनी बेटी के नाम करवा लेना चाहते थे। सरदार अपनी हवेली का वारिस तो जरूर खोज रहा था, पर हवेली को उस औरत के नाम नहीं लिख सकता था जिस की कोख ने किसी वारिस को जाने कब जन्म देना था, और फिलहाल जिस ने वारिस की भविष्यवाणी ही करनी थी।

और सरदार ने दूसरा विवाह करने से इनकार कर दिया था। पर इस इनकार में एक विश्वास मिला हुआ था। निहालकौर ने इस विश्वास को सुना था और इस तरह उस ने एक अदने-से परिवार की यह वीरो खोजकर अपने सरदार को दे दी थी, और उस के बदन में उस का विश्वास खुद ले लिया था।

एक दिन सरदार ने दीवार मे लगी अपनी लोहे की अलमारी खोली तो वह कितनी ही देर खुली अलमारी के सामने खड़ा कुछ सोचता रहा। "बड़ी सरदारिन कहाँ गयी हैं?" सरदार ने बीरो से जल्दी से पूछा। बड़ी सरदारिन घर नहीं थी। सरदार ने अलमारी को बन्द कर दिया और चाबी जेब म रख ली और कारखाने को जाते हुए बीरो स कह गया कि निहालकौर जब भी घर आये, वह नीचे से मुशी का आवाज़ देकर उसे कारखान से बुला ले। जब निहालकौर घर पहुँची तो बीरो बाहर के दरवाजे मे घबरायी हुई बैठी थी, उस न अभी क की थी।

निहालकौर न बीरो का हाथ थामा, उस के कन्धे दबाये और उसे चारपाई पर लिटाया। पर बीरो कांपत परा स चारपाई से नीचे उतरी और निहालकौर के पाँवो से लिपट गयी।

"सरदारिन, तुम ने मुझे एक दिन कहा था कि मैं तुम्हारी बेटी भी हूँ और बहू भी। आज तू मुझे अपनी बेटी समझकर बचा ले और चाहे बहू समझकर।" बीरो बिलख उठी। बिलखत बिलखत बीरो ने निहालकौर को बताया कि जब कुछ दिन पहले उस का भाई उस से मिलने आया था तो उस के भाई को कुछ पैसा की बहुत जरूरत थी। बीरो ने उसे कुछ पसे भी दिये थे, पर पैसे उस के पास बहुत कम थे। इसलिए उस ने सरदार की जेब से चाबी चुराकर लोहे की अलमारी खोली थी और अलमारी मे से चाँदी के बरतन निकालकर अपने भाई को दे दिये थे।

"यह तुम्हारा अपना घर है, बीरो! अगर तुम अपने घर को अपने हाथों बरबाद करोगी " बात अभी निहालकौर के मुह म ही थी कि बीरो तमककर बोली, "यह घर मुझे अपना न कभी लगा है न कभी लगेगा। पर यह मैं तुम से इकरार करती हू सरदारिन, आइन्दा मैं इस घर की कोई चीज कभी बाहर नही दूगी। मैं ने उस दिन भी ग़लती की थी। यो ही कर बैठी। बाद मे पछतायी भी। तुम्ह तो पता है मेरे विवाह के समय मेरे बाप ने मेरे भाई के कारोबार का वास्ता देकर तुम से दो हज़ार रुपया माँगा था। तुम ने वह दे दिया था। मेरे बाप ने विवाह कर दिया। मुझे बेचने मे कसर ही क्या रह गयी? दो हजार रुपये के लिए मुझे इस बूढ़े खूटे से बाँध दिया गया। बाप और भाई भी क्या सगे हुए—मैं किसी का घर बरबाद कर उस का घर भी क्या भरू?"

"बीरो! " निहालकौर चौंककर बीरो के चेहरे की तरफ देखने लगी।

निहालकौर ने बीरो की लाज रख ली। उस ने सरदार से कह दिया कि अलमारी म रखे चाँदी के बरतन पुराने ढब के थे। उस ने वह बरतन निकालकर साथ मे कुछ और चाँदी मिलाकर सुनार को नये बरतन बनाने को दिये थे।

सरदार की चिन्ता जाती रही। पर निहालकौर अब भी बीरो के चेहरे की

तरफ देखती, तो उस के मन मे एक चिन्ता घर कर जाती। वीरो की काले भँवरों जैसी आँखें थी। रग की जरा साँवली थी, पर साँवले रग मे जवानी सख्त आटे की तरह गुधी हुई थी। उस की बाँह बेलना की तरह गोल और सख्त थी। मास म उँगली का एक पोर भी नही गडता था। सरदारिन को लगा कि सरदार म जो निश्वास लेकर उस ने अपने जिम्मे ले लिया था, वीरो ने वही निश्वास अपनी छाती मे डाल लिया था।

और फिर वीरो के पाँव भारी हो गय। हवेली बहुत बडी थी, पर मुबारकें इतनी थी कि हवेली म समाती नही थी। सरदार का पैर जमीन पर नही पडता था और निहालकौर वीरो का पैर जमीन पर नही लगने देती थी। पर लोग न सरदार को इतनी मुबारक द रहे थ, न वीरो को ही, जितनी मुबारक वे निहाल कौर को दे रह थे।

"मैं इस का जनम होते ही इस अपनी झोली मे ले लू? बाद म मत कहना मैं बडी सरदारिन हूँ तुम छोटी सरदारिन। पहला बेटा बडी का होगा। बाद म जो जनम लेंग वे तुम्हारे" निहालकौर हँसकर वीरो से कहती। निहाल कौर खुद ही नही जान पा रही थी कि उस के मन म जरा सी भी मलाल क्यो नही था। उस ने अपने हाथो अपना खाविंद एक परायी औरत को द दिया था और अब उस न सारी जमीन जायदाद भी एक पराये बेट को दे देनी थी।

'अरी टोनाहारिन! मैं ने कब तुम्हे अपनी बेटी और बहू कहा था! मैं इस समय सचमुच एक माँ की तरह खुश हू। मुझ यह कभी याद ही नही रहता कि तू मेरी" निहालकौर की इस बात पर वीरो बीच म ही हँसकर कहती "सरदारिन! मैं बेशक तुम्हारी और कुछ लगती होऊँ या नही, पर यह तुम जानती हो कि मैं तुम्हारी सौत नही लगती।

निहालकौर ने बढई से जो झूला बनवाया, उस झूल मे चादी के घुघरू बाध। सच्चे रेशम की उस न छोटी सी रजाई बनवायी। शहर का एक अँगरेज अफ़सर एक महीने की छुट्टी पर विलायत जा रहा था "विलायती स्वेटर रेशम जसे होते ह," निहालकौर ने कहा और अँगरेज से दो छोट छोटे स्वेटर विलायत से लाने की बात पक्की कर ली।

अपन समय मे निहालकौर ने खुद को दाइयो को भी दिखाया था और बडे शहरो म जाकर डाक्टरो को भी पर उस ने अपने समय मे कभी किसी देवता की मनौती नही की थी। वीरो को जब पूरे तीन दिन कमर म दद होता रहा और फिर एक दिन जब जरा सा खून का दाग भी नजर आया तो निहाल कौर न पहली बार अपनी जिन्दगी मे मनौती मानी।

यह 'मान करने का समय था। वीरो चाहती तो अब देश दशान्तरो की फरमाइशें कर सकती थी। सरदार उस की आवाज के लिए अब उस का चेहरा

ताकता रहता था। पर निहालकौर जानती थी कि अब भी वीरो अचार के एक छोटे-से टुकडे के लिए झिझककर दो बार उस का चेहरा निहारती थी। इसलिए निहालकौर खुद ही वीरो की इच्छाओं का ध्यान रखती। इन सारे दिनो मे वीरो न अपन मुह से जोर देकर किसी बात को कहा था तो सिफ इतनी सी बात को कि आँगन म रस्सी से टँगे हुए शलजमो के हार उतारकर परे रख दिय जायें। "इन्हें देखकर मेरे मन मे कुछ होता है। शलजमो का लटकना इस तरह लगता है जैसे किसी की चमडी लिजलिजा गयी हो।" वीरो ने कहा था और सूखते हुए शलजमो को देखती हुई उबकाने लगी थी।

फिर वीरो के मन मे जाने क्या आया, जब उसे नवाँ महीना हो आया तो उस ने जिद् पकड ली कि वह अपने मायके जाकर ही प्रसूत-काल काटेगी। सरदार उस की जिद् नही मान रहा था। निहालकौर उस की मिन्नतें कर रही थी पर वीरो ने एक ही जिद् पकड रखी थी कि उस के गाँव की एक बूढ़ी दाई बहुत सयानी है। उसे सिफ उसी दाई पर भरोसा है, और किसी पर नही। और उस का विश्वास था कि अगर वह यहीं रहेगी तो शहरी डाक्टरनियो के हाथों वह मर जायेगी।

"यह डर बडी बुरी बला है," डॉक्टरो ने भी सरदार को राय दी। पर सरदार के मन म दूसरा ही डर था। वह निहालकौर को अलग ले जाकर बोला, "मुझे डर है कि अगर उसे वहाँ लडकी हुई तो वह किसी के लडके से उसे बदल देगी। मैं ने पहले भी ऐसी कई बातें सुनी हैं। उसे लालच है कि अगर लडका हुआ तो बडा होकर जायदाद का वारिस होगा "

"तो फिर इस का तो एक ही इलाज है। मैं इस के साथ चली जाती हूँ। मेरे पास रहते वह कुछ नही कर सकेगी।" निहालकौर ने कुछ देर सोचने के बाद कहा।

सरदार मान गया। वीरो ने भी कोई आपत्ति न की। निहालकौर ने घर की महरी को भी खिदमत के लिए साथ ले लिया और वीरो के साथ उस के मायके चली गयी।

वीरो का प्रसव कठिन नही था। वह भर जवान थी और तन्दुरुस्त भी थी। उस की माँ और भाभी चुटकी काटती हुई उसे कहती, "यो ही डरे जा रही है। जनम देने मे क्या लगता है। एक बार चीख भर दिया कि बेटे ने जनम लिया।"

निहालकौर वीरो के मायके पर किसी तरह भी भार न बनी। खुले हाथ खच करती थी। घर के सब लोग उसे सरदारिन सरदारिन कहते अघाते नही थे। निहालकौर हँसकर कहती, "एक बार चीख दिया कि बटे न जनम लिया। पर अगर बेटी को जनम दना हो तो?"

वीरो की भाभी खिलखिलाकर हँसती हुई कहती, "दो बार चीखने से बेटी

को जनम दिया जा सकता है।"

"बेटी के लिए दो चीखें ?" निहालकौर हँसकर पूछती।

'एक चीख पीड़ा की और एक चीख गम की " वीरो की भाभी कहती, "खुशी तो बेटों की होती है। बेटियों की क्या खुशी होगी !"

निहालकौर के दिल में एक गहरी टीस उठी। उस ने सोचा, मैं ने जिन्दगी में न एक बार चीखकर देखा, न दो बार। पर उस ने अपने मुसकराते हुए होंठों से अपनी कसक को इस तरह पी लिया कि उस का दर्द भी उस के चेहरे को देखकर लज्जित होकर रह गया।

और फिर जिस रात वीरो को प्रसव की पीड़ाएँ शुरू हुई तो दाँतों तले दबे उस के जवान होंठों ने उन पीड़ाओं को इस तरह सह लिया कि किसी को खबर भी न हुई। सिर्फ एक बार उस की एक चीख सुनायी दी तो वीरो के सिरहाने बैठी निहालकौर की तरफ देखकर भाई ने कहा, 'सरदारिन मुबारक हो ! आओ तुम्हारी झोली बेटे से भर दूँ !'

निहालकौर ने बेटे को भी आंचल में ले लिया और मुबारकबाद को भी। पर सुबह होते ही जब वह सरदार को तार भेजने लगी तो वीरो ने निहालकौर को अपने पास बुलाकर अपने दोनों हाथ उस के पाँवों पर रख दिये और बोली, "सरदारिन ! मैं दुनिया से झूठ बोल सकती हूँ, पर तुम से नहीं। यह लड़का तुम्हारे सरदार का नहीं "

'वीरो " निहालकौर को लगा जैसे उस की ज़बान लड़खड़ाकर रह गयी हो।

"मैं सरदार की किसी तरह ऋणी नहीं हूँ। पर मैं तुम्हारी ऋणी हूँ। अगर यह लड़का सिर्फ सरदार के आँगन में ही खेलता तो मुझे कोई उज्र नहीं था। पर इसे मैं तुम्हारी झोली में नहीं डाल सकती। यह तुम्हारी झोली के योग्य नहीं है।"

'क्या कह रही हो वीरो !'

"किया तो मैंने हँसी हँसी में था, शायद हँसी को समय इसी तरह डँसता है। सच कहती हूँ तुम से, मुझे अपने लिए कोई पछतावा नहीं। अगर दिल में पछतावा है तो तुम्हारे लिए "

'वी रो !"

'तुम्हें याद होगा कि मैं पिछले साल एक बार मायके आयी थी आप का मुंशी मेरे साथ आया था, मुझे मायके मिलकर ले जाने के लिए। यहां सारे गाँव में यह बात फैली हुई थी कि मेरे माँ बाप ने रुपया लेकर मेरा विवाह एक बूढ़े सरदार से कर दिया था। सरदार कभी इस गाँव में नहीं आया। मेरा बाप ही मुझे आप के शहर ले गया था और गुरद्वारे में विवाह के बाद मुझे आप के घर

छोड़ आया था   मेरे गाँव आने पर हर कोई मुझ से पूछने लगा कि मेरा सरदार कितना बूढ़ा था ? मुझे जाने क्या सूझा, मैं ने उन से पीछा छुड़ाने के लिए कह दिया कि मेरा विवाह बूढ़े से नहीं हुआ था । आप का मुंशी बड़ा जवान था, सुन्दर भी था। उसे दिखाकर मैं न उन से कहा कि यह मेरा घरवाला है। सारी की सारी बस्ती हैरान होकर रह गयी। मुंशी को मैं ने यह बात बता दी। मुंशी ने भी झूठ को ओढ़ लिया। जब मेरी सहेलियों ने उस से बुंदों की माँग की तो अपने सुनार से चाँदी के बुंदे खरीदकर उन्हें दे दिये। पाँच छह दिन मैं यहाँ रही। रोज हँसते हँसते मुझे भी यह महसूस होने लगा कि मेरा विवाह उसी के साथ हुआ था, और किसी के साथ नहीं।"

"हमारा मुंशी मदनसिंह   "

'मैं अब लौटकर सरदार के घर नहीं जाऊँगी। न ही इस लड़के को ले जाऊँगी। इसलिए ज़िद पकड़कर मैं यहाँ आयी हूँ। मेरा किया मेरे सामने आयेगा। मैं तुम से और कुछ नहीं माँगती सरदारनि ! बस एक बात माँगती हूँ कि सरदार को उस मुंशी का नाम मत बताना। नहीं तो उस मुंशी को वह नौकरी से निकाल देगा।"

"पर मदनसिंह विवाहित है, वीरो ! उस के घर दो बच्चे हैं   '

"इसी लिए वह डरता है कि सरदार को पता चल गया तो उस की नौकरी जाती रहेगी। उस ने कौन सा मुझे अपने घर बसाना है कि मैं उस की नौकरी छुड़वाऊँ   वह जहाँ भी रहे खुश रहे   मैं ने एक बार देखा तो सही कि जवान आदमी कैसा होता है   "

निहालकौर ने घबराकर आँखें बन्द कर लीं। और फिर जब उस ने आँखें खोलीं तो उस ने देखा कि वीरो की झोली में पड़ा हुआ उस का बेटा उस की छाती का दूध पीने के लिए मुँह फिरा रहा था।

और निहालकौर को लगा—सरदार का जो 'निश्वास' उस ने अपने ज़िम्मे ले लिया था और वीरो ने उस में वही 'निश्वास' लेकर अपनी छाती में रख लिया था यह लड़का वीरो की छाती में से उसी निश्वास को पीने की कोशिश कर रहा था।

लटिया की छोकरी

पावती ने जब डोली म से पैर उतारा, सब से पहले उस के ससुर ने रुपयो की थैली मे उस का हाथ डलवाया फिर उस की सास ने सोने की कण्ठी उसे मुह-दिखायी दी, फिर उस के देवर ने उसे सफेद मोतियो की अगूठी घूघट उठायी मे दी और फिर बाकी सगे सम्बन्धियो ने अपने अपने सम्बन्ध के अनुसार पाँच पाच या दा-दो रुपये उस की मुट्ठी म दिये। देसराज की बारी आधी रात के करीब आनी थी। सुहाग की सेज पर बैठी पावती सोच रही थी कि उस के ससुर ने उस का घर मे स्वागत कर उसे बहू से बेटी बना लिया था, उस की सास ने उसका मुह देखते हुए उसे घर का सिंगार कहा था, उस के देवर ने उस के रूप को सराहते हुए उसे फूलो जसी भाभी कहा था और सगे सम्बन्धियो ने उसे चन्दन की डाली कह कहकर प्रशसा की थी और वह सोच रही थी कि अगर देसराज उस का मुह देखकर उसे अपने मन म उतार लेगा तब ही यह सब कुछ साथक होगा, नही तो यह सब कुछ निष्फल जायेगा।

देसराज ने बडी कोमलता से पावती का घूघट उठाया और नजर भरकर उस के मुह की ओर निहारते हुए धीरे से कहने लगा, "पारो!"

जिस कोमल आवाज मे देसराज ने पावती को पारो बना दिया—पावती का तन मन पूर गया। उस ने पलकें झपककर देसराज के मुह की ओर देखा। देसराज के मुह पर एक गहरी तसल्ली थी, उस ने कोट की जेब से एक तसवीर निकाली और पारो की झोली मे डालकर कहने लगा, तुम्हारी मुँह दिखायी।"

पारो तसवीर की ओर देखती की देखती रह गयी। यह एक भरपूर जवान लडकी की तसवीर थी। लडकी के बदन पर एक छोटी-सी चोली थी, लाग-वाली धोती बधी थी और बालो मे फूलो के गुच्छे टँके थे। लडकी के मुख पर रूप का ज्वार था और यह रूप जगली फूलो जसा था। पारो को क्षण भर के लिए ऐसा लगा, जसे उस का दिल धडकने से रह गया हो।

दूसरे क्षण देसराज ने पारो को उस के दिल की धड़कन लौटा दी। कहने लगा "यह चारू की तसवीर है। मैं सोचता था, अगर तुम्हारा मुख उतना ही सुंदर हुआ जितना मेरे मन मे बसा हुआ है तो मैं चारू की तसवीर तुम्हें मुंह दिखायी दूंगा।"

और देसराज ने पार्वती को अपनी पारो बनाकर चारू की कहानी इस तरह सुनायी

'एक बार हमारा हाथ बहुत तंग हो गया था। पिताजी किसी के साथ साझेदारी कर बैठे थे। अधिक विश्वास का बदला हमें यह मिला था कि घर का सारा छाप छल्ला बेचकर बाजार का कर्ज चुकाया था। लेना डूब गया था और हम रोटी के भी मुहताज थे। मेरे ताऊ के बेटे, बोधराज और कमचन्द, पिछले कुछ सालो से मध्यप्रदेश मे रहते थे। सुना था ठेकेदारी करते हैं। व कुछ सालो मे ही बड़ी असामी बन गये थे। उन्होंने मुझे लिख भेजा कि मैं भी अगर कुछ थोड़ा बहुत पैसा लेकर उन के पास पहुंच जाऊं तो कुछ दिनो म ही घर की हालत सुधर सकती है।

"मैं सोनीपत छोड़कर बिलासपुर चला गया। बोधराज और कमचन्द जिस ढग से लखपती बने थे, वह ढग देखकर मेरा दिल कांप गया। वे बीस रुपये सैकड़ा ब्याज लेकर अपना रुपया ब्याज पर दे देते थे। दाव लगे तो पचीस रुपये भी लगा लेते थ। आसपास के गांवो म गरीबो का जीना भी गिरवी पड़ा हुआ था और मरना भी। मैं साहूकारी का काम न कर पाया, लेकिन पास-पड़ोस के गांवो मे काम का अवसर देखते हुए मैं न बिलासपुर से उन्नीस मील दूर अकलतरे मे साबुन का कारखाना खोल दिया।

"जो गांव रेलवे लाइन के पास पड़ते है, वहां के आदिवासी चाहे अपनी जगल की आजादी को खो बैठे हैं, फिर भी नाच गान की आजादी उन की हड्डियो मे रमी हुई है। होली के दिनो म मैं ने किसी से पूछा कि अगर मैं लोगो के नाच-गानो की महफिल म चला जाऊं तो किसी को एतराज तो नही? मालूम हुआ कि किसी को एतराज नही था। मैं एक सांझ को गांव के उस 'इक्ट्ठ' म चला गया जहां मदग और बांसुरी बज रही थी, स्त्रियां और पुरुष कांसे की कटोरियो मे ताड़ी पी रहे थे और गा रहे थे। लाल पीले रग म डूबी हुई औरतो ने पूरे हाथों मे कांच की चूड़ियां पहनी हुई थी, परों मे चांदी की नाग मोरियां और नाक मे मोटी मोटी तीलियां। गेंदे के फूल उन के बालो मे बंधे हुए थे। उन का गीत आज तक याद है

मोर अंगना मे आयो रसिया,
का करूं दाई एक न मान।

चले न मोरे बसिया
मोर अँगना मे आयो रसिया !'

"यह जवान लडकी गजब की खूबसूरत थी। उस ने सारे 'इक्टु' की फेरी ली और बाँहे लटकाकर एक लम्बा सा गीत गाया । उस गीत की एक ही पक्ति मुझे याद रह गयी है, 'लटपट पाग से लपेट मन ले गयो ।'—हर बार जब वह यह पक्ति बोलती थी सारे 'इक्टु' की स्त्रियाँ उस के साथ मिलकर इस पक्ति को गुजा देती थी। उस न बडा रग बाँधा । पर मदगवाला उस स भी अधिक मस्ती मे था, उस न बडी लटक से एक गीत गाया

'ताला देखे रहिया री,
लटिया की छोरी मोरे जिया म भा गयी ।
नागन सी छोरी मोरे हिया म छा गयी ।
जहिर चड ह गयो री,
तोला देखे रहियो री।'

"लोग यह गीत गा रह थे और साथ म गुटक रहे थे । मैं ने दखा कि मदगवाला भी और कई दूसरे भी, बार बार जिस ओर देख रहे थे, वहाँ पद्रह सोलह साल की एक वही लडकी खडी थी जिस ने लडको की तरह कमर म एक अगोछा बाधा हुआ था और गले मे एक चारखानी कुरती पहनी हुई थी। उस ओर औरतें अपने बाल खूब लम्ब रखती हैं। पर उस लडकी ने लडको की तरह अपने बाल काटे हुए थे और गानवाली औरता स परे खडी बीडी पी रही थी।

' मैं ने पिछले दिनो गाँव की बोली सीख ली थी। मेरे पास साबुन की फेरी लगानेवाला चेटू काका खडा था, मैं ने उस से पूछा कि यह लडकी कौन थी। चेटू काका ने बडी ताकीद से मुझ बताया, 'अरे, ए छोकरी चारू ! ए बडी चट ए। ऐकर नजीक झन जाव, थाड कुन कोनो एला छेडी से, कि जूती एकर हाथ मे आयी से । ए जौन ननकी मृदग बजावत ए, एकर मौत आये, ऐसना मोला दीखत ए, ए चारू ला प्यार करत ए ।' और चेटू काका न मुझे यह भी बताया कि यह चारू लटियापारे म रहती थी इसी लिए यह मदगवाला ननकी अपन गीत मे कह रहा था कि लटिया की छोरी मोर जिया मे भा गयी ।

"मैं कितनी ही देर चारू की ओर देखता रहा । मैं हैरान था कि चारू ने जान बूझकर अपना रूप क्यो बिगाडा हुआ था । वह अगर दूसरी लडकियो की तरह रगीली धोती बाँधती, बाँहों मे काच के गजरे पहनती, आखो मे काजल डालती और लम्बे बालो का जूडा बनाकर उस मे फूल टाँकती, तो वह बहुत सुन्दर लग सकती थी पर ग्वालो जैसी वह लडकी उस समय बिलकुल लडकी नहीं लग रही थी । सिर्फ उस के मुख पर उस की आखें ऐसी थी जो उस के रूप की चुग़ली खा रही थी । नहीं तो उस की ओर दूसरी बार देखने का भी

खयाल न आता।

"दूसरे दिन चेटू काका ने मुझे फिर बताया कि वह लटियापारे की छोकरी बड़ी खतरनाक थी। आठ आने महीना पर एक खपरैल किराये पर लेकर अकेली रहती थी। छुटपन मे माँ डूबकर मर गयी थी। बाप पागल हो गया था और अब वह शेरनी की तरह किसी से भी नही डरती थी। बीडियाँ फूकती थी, जुआ खेलती थी और ठेके पर जाकर पउवा शराब एक ही बार चढा लेती थी। कभी वह ओखली मे लोगों का धान कूटकर चार-पाँच आने रोज कमा लेती थी और कभी वह स्टशन पर जाकर एक एक आने में लोगों का सामान ढो देती थी। और चेटू काका ने मुझे चेताया कि कभी राह जाते मैं उसे बुला न लूँ। वह किसी की इज्जत नही करती थी और दूसरे का हाथ झटककर पाँव मे से जूती निकाल लेती थी।

'यह सब कुछ बडा अजीब था। मैं अकसर बैठा-बैठा चारू के बारे मे सोचता रहता, कइयों से पूछताछ भी करता। सभी चेटू काका की बात दोहराते थे। वैसे होली के दिनो से, जिस दिन ननकी न वह गीत गाया था, चारू का नाम सारे गाँव मे 'लटिया की छोकरी' पड़ गया था।

"एक दिन चारू बीडी पीती हुई मेरे कारखाने मे चली आयी और आते ही मुझ से कहने लगी, 'ठाकुर! मोला नौकर रखवे का?'

" 'का काम जानत अस?'

" 'जौन काम तै देबे।'

" 'कारखाना मे तो कतको काम ऐ, पानी भरवे? साबुन कटाई करवै? पेटी उठाव?'

" सब काम करी हो।'

" 'छह आना रोजी मीली।'

' 'मोला मजूर ए।'

"चारू मेरे कारखाने मे छ आने रोज पर मजदूरी करने लगी। चारू को आये अभी एक महीना भी नही हुआ था कि ननकी भी मेरे कारखाने मे नौकरी करने आ गया। मुझे ननकी के इश्क का पता था इसलिए मैं ने उसे बारह आने रोज पर अपने कारखाने मे रख लिया। उन दिनों औरत को छह आने रोज और मर्द को बारह आने रोज मिलते थे।

"ननकी का इश्क सारे गाँव मे मशहूर था। मैं ने कुछ दिनों बाद ननकी को बुलाकर कहा, 'ननकी! तोर प्यार के बात तो खूब फैल गये, अब तै चारू से ब्याह कर ले।'

' 'ए साली तो मोर हाथ ही नही आवे।' ननकी ने मुह लटकाकर मुझे जवाब दिया।

" 'तो फिर तूँ एक्कर खयाल ना छोड दे ।' मैं ने ननकी के मन को देखने के लिए फिर कहा ।

" का करूँ, ठाकुर ! एक्कर प्यार के जहर तो मोर स्यां स्यां मे समा ये ।' ननकी ने जिस समय यह उत्तर दिया, ननकी का मुख देखते ही बनता था ।

" 'तोर गाँव मे तो एक्कर ले बडीया-बडीया पड ए ।' मैं न ननकी से हँसकर कहा ।

"पर ननकी का इश्क पक्का था । बडी गम्भीरता से कहने लगा, 'पता नही ठाकुर ! ए साली लटिया की छोकरी मोर ऊपर का जादू कर देई स ।'

'कई महीने बीत गये । ननकी उसी तरह बडे सब्र से इश्क करता रहा और चारू उसी तरह ननकी स भी और गाँव क और मर्दों से भी तनी रही । एक दिन ननकी घबराया हुआ मेरे पास आया और कहने लगा, 'ठाकुर ! एह जौन नया ठोनदार आये स ए मोल ठीक नही दीखत ए । एसेना लागत ए कि कोई दिन ए कोई गडबड जरूर करे ।'

" 'क्यो, ननकी, क्या बात है ?' मैं ने उस स पूछा ।

" 'कल सांझ के चारू जब तालाआ त लौट के आत रही स, तो ठोनदार उक्कर हाथ ला धर लई से । ननकी न मुझे बताया ।

" 'फिर ?' मैं न कुछ चिंतित होकर पूछा ।

' फिर का ? चारू गुस्सा गयी । अऊ खूब, गाली दयी से, अऊ तान के एक थप्पड मारी से ।'

"ननकी ने जब मुझे यह बताया चिंता तो मुझे भी हुई, पर मैं ने ननकी को ढारस देकर भेज दिया । बात यह थी कि गाँव म शराबबंदी हो रही थी । पहले लोग आम पीते थे, अब चोरी स पीनी पडती थी । लोग पुलिसवालो पर खीझे हुए थे और पुलिस लोगो पर । इन दिनो बात-बात पर पुलिसवालो और लोगो म तन जाती थी । मैं ने कभी चारू से पूछा नही था, पर मैं न गाँव में से अफवाह सुनी थी कि चारू हफ्ते मे एक-आध बार बिलासपुर से शराब की बोतल छिपाकर ले आती थी और यहाँ आकर बेच देती थी । बिलासपुर मे शराब-बन्दी नही थी । मेरा डर सच्चा निकला । एक दिन सध्या समय गाँव का नया इन्स्पेक्टर ओमप्रकाश दो सिपाहियो को लेकर मेरी ओर आया क्योंकि उसे लटियापारे जाकर चारू की खपरैल की तलाशी लेनी थी और मुझे साथ ल जाकर सरकारी गवाह बनाना था ।

'मुझे इन्स्पेक्टर के साथ जाना पडा । चारू को जलती हुई आँखो से देखता हुआ वह सिपाहियो से खपरैल का चप्पा चप्पा ढुढवाने लगा । महुए का एक पउवा मिल गया । पर बाकी परछत्ती पर सिर्फ खाली बोतलें पडी हुई थी । पउए को एक झरोखे में रखकर इन्स्पेक्टर और सिपाहियो ने आँगन मे पडे लक-

ड़ियों और उपलों के ढेर में ढूंढना शुरू किया।

"चारू से बात करने का मुझे मौका मिल गया। उस ने मेरे कहने पर एक खाली पउए में पानी भर के शराब के पउए से बदल दिया और बाहर उपलों के ढेर के पास जा खड़ी हुई। उपलों के ढेर से कुछ न निकला। इन्स्पेक्टर ने उसी एक पउए को संभाल लिया। रिपोर्ट लिखकर उस ने मेरे दस्तखत करवाये और चारू का अंगूठा लगवाया और चारू को दूसरे दिन सवेरे नौ बजे थाने में आने के लिए कह गया।

'जाते-जाते उस ने चारू को बड़ी तनी हुई आँखों से देखा और कहने लगा 'लटिया की छोकरी! अब तोला मालूम पड़ी कि आटा, दाल के का भाओ होते, पुलिस के चक्कर में अभी नहीं पड़े अस ना।'

'चारू की हँसी मुझे कभी नहीं भूलेगी। वह ठहाका मारकर हँसी और कहने लगी जा, जा, तोर जैसना कतको देख डारे आ।'

"सवेरे थाने में मुझे भी जाना था। जाकर देखा कि गाँव के कुछ और मुखिया भी इन्स्पेक्टर ने गवाहियाँ देने के लिए बुलाये हुए थे। चारू को आने में ज़रा देर हो गयी थी। पर वह जब आयी, बड़ी बेपरवाही से मेज़ की ओर खड़ी होकर बीड़ी पीने लगी। मेज़ पर इन्स्पेक्टर के अपने कागज़ों आदि के साथ शराब का पउआ रखा हुआ था। गाँव के मुखियों से कागज़ पर दस्तखत करवाते हुए उस ने बोतल दिखायी। बोतल को हाथ में लेकर जब एक आदमी ने हिलाया तो शराब की झाग न उठी। दूसरे ने हैरान होकर ढक्कन उतारा और उसे सूँघा। शराब की बू भी नहीं थी। एक आदमी को एक घूंट पिलाया गया तो उस ने बताया कि यह तो निरा पानी है। इन्स्पेक्टर बड़ा हैरान हुआ। ऊँची ऊँची गालियाँ सिपाहियों को देने लगा कि उन्होंने रात को चारू से रिश्वत लेकर शराब का पानी में बदल दिया था। इन्स्पेक्टर ने सैकड़ों गालियाँ दीं। पर अब क्या हो सकता था! बात टल गयी और चारू उसी तरह बीड़ी पीती हुई थाने से सुर्खरू होकर चली गयी।

'एक दो दिनों के बाद मैं ने चारू को अपने पास बुलाया और कहा, देख चारू! तैं अकेले रहत अस ना? एकरे सातर तोर ऊपर ए सब मुसीबत आत है ए।'

मैं जानत हों ठाकुर!' चारू ने बड़ी हलीमी से जवाब दिया।

'मैं ने फिर उस से कहा, मोर समझ में ननकी बहुत अच्छा छोकरा ए, अऊ तोर सिऊ प्यार करत है ए।'

' मैं जानत हों। उस ने फिर वही जवाब दिया।

"त उकर संगों ब्याह काहे नहीं कर लेत अस?' मैं ने उस से सीधा सवाल किया।

के दरवाजे में बहुत-से फूल टाँके गये थे और बरामदे में चावल पक रहे थे।

"रायोतों की जाति में और दूसरी छोटी जातियों म विवाह की कोई रस्म नहीं होती। लडका लडकी के हाथों म काँच की चूडियाँ पहना देता है, बस विवाह हो जाता है। ननकी की माँ, रायोतो की तीन चार और स्त्रियाँ और गाँव के दा मुखिया इस दावत मे आय हुए थे। बस और कोई नही था। राहू मछली पकी हुई थी, लुचई चावल बने हुए थे और चारू सब को महुए की शराब पिला रही थी। वसे चारू आज कोई दूसरी ही चारू दिखायी दे रही थी। उस ने पीले रग की कुरती पहनी हुई थी, लाल रग की धोती बाँधी थी, हाथों मे काँच की चूडियाँ और शीशे के गजरे पहने हुए थे। माथे पर बिन्दु लगाया था और बालो मे मोगरे के फूल गुथे हुए थे।

"रायोतो की स्त्रियाँ और गाँव के मुखिया जब खा पीकर विदा हो गय तो मैं ने शराब की बोतलों की ओर देखकर चारू से पूछा, 'चारू, तोला डर नही लग, जो ऊपर ले थानेदार आ जाये तो ?'

"चारू के मुख पर पहले रूप ही चढ़ा हुआ था, अब एक और चमक आ गयी और वह बिजली की तरह चमककर बोली, 'अब मोला थानेदार कबी तग करीसे तो मैं उला उही जगा भेजू जहाँ मालगुजार गये से।'

"मैं भौचक्का रह गया। मेरी तरह ननकी का मुह भी खुले का खुला रह गया। ननकी बोल न पाया, मैं ने ही चारू से पूछा, 'सच बता, चारू! माल-गुजार ला तहीं मारे अस ?'

" 'मैं काबर मारीओ, उकर पाप ही उला मारे ई।' चारू तमककर बोली।

" 'ओ तोला छेडी रहो से ?' इस बार ननकी न चारू से पूछा।

"चारू ने दाँत पीसकर जवाब दिया, 'ओ बढऊ के का हिम्मत रही से जैस मोला छेडतीस।'

" 'फिर ?' मैं ने और ननकी ने हैरान होकर पूछा।

"ओ मोर दाई ला मरवाये रही से।' चारू के मुख पर रोष का एक नया रूप चढ गया।

" तोर दाई ला ?' मेरे मुह से निकला।

"चारू ने हाथ मे पकडी हुई शराब की कटोरी एक ओर रख दी और अँगडाई लेकर कहन लगी, 'मोर दाई गाम्हें भर मे सब से खूबसूरत रही से। माल-गुजार के मन खराब हो गयी से। मो दाई एला खूब डाँटो से। आउ एक दिन जब मोर दाई कुआँ ले पानी भरत रहा से, तो ए आपन कोना आदमी के हाथ उला कुआँ में धकेल देई से। मोर दाई मर गय। एइ दुख मा मोर दादा पागल हो गय। मैं आपन मन मे कसम खाये रहियों के अपन दाई के बदला चुका के छोडियो।'

" 'चारू ! इहि खातर तैं ब्याह नही करत रहे अस ?' ननकी ने चारूकी बाँह अपने हाथ मे पकड़ ली और उसे गर्व स पूछा।

" 'हाँ, ननकी ! मैं आपन मन मे प्रतग्या करे रहओ कि मैं आपन हाथ में काँच की एक चूड़ी तक ना पहनूँ '

"ननकी ने चारू को गले से लगा लिया। उस के मुह से बार-बार यही निकल रहा था, 'ए मोर चारू ! ओ मोर लटिया की छाकरी ! तैं अतका दुख अकेने बोहे-बोहे घूमत रहे अस, मोला पहिले काबर नही बताय अस। मैं तोर सब के सब दुख ला आपन ऊपर ले लेत।'

"चारू ने ननकी का बड़ा दुलराया और कहने लगी, 'ओ ननकी ! मैं तोल शुरू ले प्यार करत रहियो। मैं तोला कोई खतरा म कैसे डालत ? अऊ फिर जब तक मैं आपन हाथ ले बदला नहीं लेत, मोर दाई के आतमा कसे चन पातीस !'

'और पारो " कहानी सुनाते हुए देसराज की आवाज भर्रा गयी थी, वह पारो को गले से लगाकर कहने लगा

"चारू के रूप म मैं ने औरत के मन का जो रूप देखा है, उस के आगे मेरा सिर झुक जाता है। मैं न इसी लिए चारू की तसवीर तुम्हे मुह दिखायी म दी है।"

देसराज के सीने से सिर लगाकर पारो ने एक बार फिर चारू की तसवीर की ओर देखा और उस भरी आँखों म सँजोती हुई सोचने लगी कि यह चारू के रूप को अपने रोम रोम मे बसा लेगी और वह देसराज के मन म उसी तरह अमिट हो जायेगी जिस तरह उस के मन म चारू क मन का रूप अमिट है।

गाँजे की कली

"अघनिया ! ओ अघनिया !"

"जा मैं नही गुठियाऊँ।"

"कावर नही गुठियावे ?"

"तैं मोर नाम अघनिया कावर रखे अस ?"

"मैं तोला कै बार बता चुके हो के तैं 'अघन' मे पैदा होए रहे अस, एकरे सेती तोर दादा तोर नाम अघनिया रख दे रही से, ए मा मोर का कसूर ए ?"

"दाई मोला तो ए नाम अच्छा नही लगे। अच्छा बता तो, भला जो मैं कही जेसठ मे पैदा हो जाती तो मोर दादा मोर नाम जेसठी रख देतीस ?"

अघनिया की माँ मन मे गुटक उठी। अघनिया उस की बडकी बेटी थी। और वह भी ढलती उमर मे हुई थी। वह कई साल पीपलो तले नहाती रही थी। कोई टोना उस ने छोड़ा नही था। एक बार किसी अघोरी के कहने पर उस न अपने आप को शिवलिंग को भी समर्पित किया था। और फिर कही जाकर यह बेटी उस की कोख मे पड़ी थी। एक तो बेटी लाडली और वह भी चलमला गाँव के मालगुजार की बेटी। और वह भी किस्मतवाली। क्योंकि उस के बाद उस की माँ ने एक के बाद एक तीन बेटे जन्मे थे। माँ ने लाड से पूछा

"तोर का नाम रखे के मन ए ? जौन नाम तोर मन ला अच्छा लग तै ओई रख लै। सगुणा नाम तोला अच्छा लागत ए ? सगुणा शबरी पोखरी मगली पर एमन सब नाम तो नीच जातीवाला मन के नाम एँ। हमर जाति में तो पुखर, राधा, सीता ऐसना नाम अच्छा लग।"

"ना दाई ना ! मोर तो गुलबत्ती नाम रखे के मन एँ। एई नाम मोला खूब अच्छा लागत ए।"

"तो जा नारियल ले के मन्दिर मे चढा आ, और पुजारी जी ला कहो आज ले मैं आपन नाम गुलबत्ती रख लैं हो।"

अघनिया उर्फ गुलबत्ती खुशी से मचल उठी और दोनो बाँह माँ के गले म

डालकर कहने लगी

'दख दाई, तैं आज मोर एक और बात ला मान ले, बता तो मानब ना?"

"लै ल मोर गला ला तो छोड! तै जौन बात कबे ओई ला मैं मान ल।"

"ओ जो दादा टीपा म सौंफिया दारू रखे एना, ओमा के थोडकुन मोला दे द, आज मार पिए के अडवड मन ए।"

"चल हट! दख तो एकर बात ला काल के छोकरी अऊ दारू पिए बर मांगत ए कभौ सुनी तो का कही?"

"मैं अब मैं बारह साल के तो हो गय आ।"

'बारह साल के हो गये अस तो कौन मार त जवान हो गये अस, दारू पिए बर दारू पिए बर करत ए, जाना जा क सेन मन ला, दख सब ता खेता होत ए ओती दादा दारू म, जूआ म उडात ए, आती नौकर मन सब कुछ खाविजात ए।'

'तै फिकर झन कर, मैं सब देख लू अब तो मैं बडे हो गये ऊँ।"

बडे हो गये अस तो तैं खेती तो तोर दादा ताला घर से निकालत।"

"मोर दादा मोना घर से निकाली?"

'हाँ, अब ता तोर ब्याह के सब बात पक्का हो गय हुए।"

लघनिया से अभी अभी बनी गुलबत्ती के मन मे एक घबराहट सी उठी। वह नारियल की बात भी भूल गयी और दारू की भी। कमर म बधी हुई चांदी की करधनी जैसे उस के गले मे लिपट गयी। और वह खुलकर सांस लेने के लिए एक ही झटके स करधनी उतारकर बाहर कँवल फूलो के तालाब की ओर चल दी।

गुलबत्ती को लडकियो के साथ मिलकर आंखमिचौनी खेलना बिलकुल पसन्द नही था। वह जब गाँव के जवान लडको को 'डुडुया! कबड्डी!' खेलते देखती थी ता वह भी साँस रोककर 'डो डो करती हुई उन की जवानी के बराबर उतरना चाहती थी। पर गुलबत्ती हमेशा अपनी माँ के कहने म रहती थी, उस की माँ न उसे लडको के साथ खेलन से मना किया हुआ था इसलिए गुलबत्ती न अपने मन को एक लगाम डाली हुई थी—आज जब वह तालाब की ओर जा रही थी, मन्दिर के पीछे कितने ही कुर्मी लडके डुडुया खेल रहे थे—गुलबत्ती को लगा कि आज उस के मन की लगाम टूट जायेगी। 'यो तो जवानी सब की खूबसूरत होती है वह सोचने लगी, 'पर चमरो (चमारा), राउतो (माशकियो) और पनको (जुलाहो) के लडको से कुर्मी, लडके बडे तीखे-तने होते है, गुलबत्ती सोचने लगी, 'शायद इसलिए कि वे मछलिया को पकडत हुए पानी मे मछलियो की तरह तरना भी जानते हैं।

गुलबत्ती कुछ देर तक जवान कुर्मी लडको के तेल से चुपडे हुए बदन देखती रही। उन की बाँहो मे मछलियाँ फडक रही थी। और गुलबत्ती को लगा

कि अगर वह भी डो डो करती हुई उन के पास खेलने चली जाये तो वह इन लड़कों की बाँहों में से मछलियाँ पकड़ सकती थी।

शिवाले का घण्टा बजा और गुलबत्ती ने देखा कि उस की सहेली सोनिया मंदिर से प्रसाद लेकर बाहर निकल रही थी। गुलबत्ती को नारियल की बात याद हो आयी और कुर्मी लड़कों की बाँहों में से मछलियाँ पकड़ने की बात भूल गयी।

गुलबत्ती ने सहेली को साथ लेकर मंदिर में नारियल चढ़ाया और शिव की मूर्ति के सामने खड़ी होकर अघनिया से पक्की तरह गुलबत्ती बन गयी।

गुलबत्ती बनकर वह खुश थी पर उतनी खुश नहीं जितनी खुश उसे होना चाहिए था। आज माँ ने उसे जो विवाह की बात बतायी थी वह बात उस के दिल में डूब उतर रही थी। वह अपनी सहेली को साथ लेकर जब कँवल फूलों के तालाब की ओर गयी तो फूलों की नीली और गुलाबी आभा उस के कलेजे में घिर उठी। गुलबत्ती की सहेली गुलबत्ती से दो साल बड़ी थी। वह कभी-कभी एक गीत गाया करती थी जो गुलबत्ती की समझ में कभी नहीं आया था। आज गुलबत्ती ने उसे वही गीत गाने के लिए कहा

"घर ला फोड के बनाय हो कुरिया,
तोर मया के मारे जाओ नहीं दुरिया।"

सहेली ने आज जब यह गीत गाया तो गुलबत्ती को लगा कि आज यह गीत उस की समझ में आ गया था। उसे लगा कि कँवल फूलों की नीली और गुलाबी आभा ही जिस की माया उस के मन को लग गयी थी। वह इस माया की मारी कहीं दूर नहीं जा सकती थी और शायद इसी लिए विवाह की बात से उस का मन घबरा रहा था।

गुलबत्ती का बाप इस झलमला गाँव का मालगुज़ार था – कचकौलप्रसाद पुष्करणा। गाँव में कोई सौ घर होंगे। ये सभी कुर्मियों, पनकों और नीची जातिवालों के घर थे। पुष्करणों के केवल चार घर थे और उन में से भी कचकौलप्रसाद का एक घर था जो पक्का बना हुआ था, बाकी सभी खपरैलें थीं।

कचकौलप्रसाद को ढलती आयु में औलाद हुई थी। अब चाहे इस बड़की बेटी के अलावा उस के घर तीन बेटे थे, पर तीनों बेटे अभी बहुत छोटे थे। एक तो अभी पालने में था। कचकौलप्रसाद को कामकाज सँभालने के लिए सहारा चाहिए था, इसलिए वह चाहता था कि अपनी बेटी को किसी समझदार आदमी से ब्याह कर अपना सहायक बना ले।

झलमला गाँव से कुछ कोस के फ़ासले पर चण्डीपारा गाँव था। इस चण्डीपारे का मालगुज़ार रंगीलाल कचकौलप्रसाद के मिलन-जुलनवालों में से था।

कई बार वे नशा पानी एक साथ करते थे। रंगीलाल की औरत जब मर गयी तो कचकौलप्रसाद ने इस मौके को जाने नहीं दिया। रंगीलाल कचकौलप्रसाद जैसा बडा मालगुजार नहीं था, पर कचकौलप्रसाद जानता था कि वह कारोबार में उस से भी बढ़कर था। बीस साल आयु का अन्तर कचकौलप्रसाद की दृष्टि में कोई बडा अन्तर नहीं था। उस ने गुलबत्ती की सगाई रंगीलाल से कर दी।

अकस्मात् गुलबत्ती ने देखा कि एक दिन उस के पैरों को महावर लगने लगा। घर के आंगन में शामियाना लगा और गांव की औरतें गुलबत्ती के इर्द-गिर्द घेरा डालकर गाने लगीं

'ऐ बेरा कौन जगी
जगी तो दुलहन छोरी
ऐ बेरा कौन जगी।
दुलहन जगी ता काहे जगी
गोरी नहाये तो कावर नहाये
गोरी घर दूल्हा के जाये
ऐ बेरा कौन जगी।''

गुलबत्ती की भांवरें पड़ी। महीने भर में उस का गौना हुआ, उस की पठौनी। पठौनी की रात गुलबत्ती ने देखा कि एक जो अधेड़ उमर का काला कंकाल सा आदमी बैठक में बैठकर दोनों तलियों में गांजे की कलियां मसलकर गुड़गुड़ी पी रहा था वह उस का खाविंद रंगीलाल था। उस का दूल्हा। जिस के लिए वह मल मल न्हायी थी, और जिस के लिए गांव की औरतों ने गीत गाये थे, 'गोरी नहाये तो कावर नहाये गोरी घर दूल्हा के जाये।'

''रौतायन! ओ रौतायन! चूल्हा ले थोउकुन आगि तो ला!' गुड़गुड़ी पीते हुए रंगीलाल ने महरी का जब एक बार आवाज दी तो गुलबत्ती को जाने क्यों यह ख्याल आया कि वह गांजे की एक कली थी, नशे की एक कली जिसे इस रंगीलाल ने सारी उमर अपनी तलिया में मसलकर अपनी गुड़गुड़ी की आग में फूंकना था। गुलबत्ती का मन डूबने लगा। वह किसी के मन की आग में जलना जरूर चाहती थी, किसी का नशा भी बनना चाहती थी पर जाने क्यों उस का कलेजा छीज रहा था कि वह इस रंगीलाल की गुड़गुड़ी में जलने के लिए नहीं बनी थी।

उस ने एक एक कर कई जवान कुर्मी युवकों की कल्पना की। पर किसी भी देखे हुए और परिचित चेहरे का उसे ध्यान न आया। शायद इसलिए कि उस की मां ने उसे आरम्भ से ही चेता दिया था कि कुर्मी युवक बहुत नीची जाति के थे, और गुलबत्ती हमेशा अपनी मां के कहने में रही थी। गुलबत्ती को न कोई कुर्मी युवक याद आया और न कोई और। पर उस का मन उस से पूछ रहा

था कि यह रगीलाल किस जाति से था। पर फिर उस का मा उसे खुद ही कह रहा था कि यह रगीलाल चाहे कितनी भी ऊँची जाति का हो, उस की अपनी जाति से मेल नही खाता।

सम ज की बनायी हुई जाति मेल खा गयी, पर गुलबत्ती के सपनों से सपनो की जाति न मिली, और गुलबत्ती रगीलाल की गुडगुडी मे गाँजे की कली की तरह सुलगने लगी। सुलगती को एक एक कर पाँच वष हो गये।

हर साल की तरह इस साल भी धान के खेत लहलहा उठे। रोनाही का त्योहार आया। मुजारो के गीतो से धरती गुनगुना उठी—और हर साल की तरह इस साल भी गुलबत्ती सूनी आँखो से यह सब कुछ देखती रही। फिर फसलों की कटाई हुई। वर्षा ऋतु आ गयी और भोजली का त्योहार आ गया। औरतो ने थालिया मे जो बोये और हरियायी थालियो म दिये जलाकर मदिरा म चढ़ा आयी।

गुलबत्ती की महरी सोगिया बात बात पर चहक उठती थी। वह जबरदस्ती गुलबत्ती को रगीला 'लुगडा' पहनाती, उस की कुरती पर कौडिया टाँक देती और आती जाती उस के मन को कचोट जाती। इस बार भी मांडली के मेले पर जान का गुलबत्ती का मन नही था, पर सोगिया ने उस का प्यार से सिंगार किया और हठ ठानकर उसे मेले मे ले गयी।

मेले मे तरह-तरह की चीजें थी। कलकत्ता अधिक दूर नही पडता था। कई बनजारे शहरो की सौगाते लाये थे। गुलबत्ती साबुनो की खुशबूदार टिकियो को सूंघती रही, तरह तरह के मोतिया की मालाएँ देखती रही। दो मालाएँ उस ने खरीदी भी। पर मेले मे घूमते एक फेरीवाले ने उस के मन को विचलित कर दिया, जिस से खीझकर उस ने सोगिया से कितनी बार कहा कि वह मेला देखने देखते थक गयी है इसलिए अब वह घर लौटना चाहती है।

फेरीवाला छरहरे बदन का बाँका जवान था। पर वह इतना गोरे रग का था कि उस का परदेसी होना गुलबत्ती को खल रहा था। उस की आँखें शोख भी लगती थी और शर्मीली भी। उस ने कितनी ही बार गुलबत्ती के मुख की ओर देखते हुए होंका लगाया, "कुरती जम्पर कर, कपडा ले लो, धोती ले लो, लुगडा ले लो।" पर जब गुलबत्ती नजर भरकर उस की ओर देखती थी तो वह अपनी आँखें झुका लेता था। गुलबत्ती चाहती तो कपडो की गठरी खुलवाकर जितनी देर मन म आता देखती रहती पर वह गठरी खुलवाकर कपडे देखने की जगह उस स आँखें चुराने लगी। आँखें चुराते हुए उस ने कितनी ही बार रास्ता बदला। पर जाने यह किस्मत का कौन सा छल था, कि गुलबत्ती का बारबार उस फेरीवाले से सामना हो जाता। आखिर मे वह घबराकर मेले से लौट पडी। इस बार जब फेरीवाला लौटती हुई गुलबत्ती के सामने पडा तो

उस के मुँह से अनायास निकल पड़ा

"ठाकुर कौन गाँव के अस ?"

"गरिएगा क ।" फरीवाले न चौंककर जवाब दिया।

"कौन देश से आये अस ?" गुलबत्ती फिर पूछ बैठी।

"पंजाब ले।"

'कतन दूर ए इयाँ ले ?' गुलबत्ती के मुंह से यों आहिस्ता स निकला जस वह मन ही मन मे ये दूरी माप रही हो।

'खूब दूर पडत ए।"

'खूब दूर पडत ए ?' गुलबत्ती होंठो मे इन गिनती के अक्षरो का दोहराती मेले म स लौट आयी।

घर लौटकर आयी गुलबत्ती ने जब रसोई की, और फिर बाहर आँगन म दीया जलाया तो उस ने बाहर चौकर देखा कि सामन मन्दिर क बरामदे मे वही फेरीवाला चटाई बिछाकर बैठा हुआ था और उपलो की आग जलाकर अपन लिए रोटी सेंक रहा था। गुलबत्ती जल्दी से बाहर का दरवाजा भिडका-कर चौके म लौट आयी और अपन उखड हुए मन का भुलान लगी।

उस दिन तो नही पर दूसरे दिन गुलबत्ती की सौतायन न टकटकी बाँधकर गुलबत्ती की ओर देखा और फिर हसकर पूछन लगी, 'नोनी ! आज त कहे चुपे के चुप अस ? काल मेला मे कुछ गवा तो नही आय अस ?'

'मेला मे ?" गुलबत्ती ने हैरान होकर सोगिया की ओर देखा, पर आग न कुछ महरी न कहा और न गुलबत्ती न बात को बढाया।

महरी जब सध्या समय अपन घर चली गयी तो गुलबत्ती न बाहर का दरवाजा भिडकाते हुए मन्दिर क बरामदे की ओर देखा। वही फरीवाला आज फिर उपले जलाकर रोटी सेंक रहा था। गुलबत्ती आज फिर जल्दी स चौके म लौट आयी और मन का सँभालने के लिए अपना निचला होठ दातो म काटन लगी।

बाहर के दरवाजे पर आहट हुई। महरी जान क्यो लौट आयी थी फिर और हँसकर गुलबत्ती से पूछ रही थी, 'नानी ! आज कौन चावल राधे अस ? खूब खुशबू आवत ए।

'क्यू तोर खाये के मन ए का ? आज मैं तो तिलकस्तूरी चावल राँध हो।'

"ए नानी ! हमर एसन भाग कहा, हमन लाइ तो गुरमटिया ही तिलकस्तूरी ए।'

'चल आज तो खा के देख ले। रामकेलिया के साग औ राहर के दाल के साथ तिलकस्तूरी चावल कैसना मिठात ए ?"

"ए दाई, तैं अतन कुछ रांधे अस, तोर घर के सामने जौन पंजाबी ठाकुर पड़े ए ओ लो सुक्खा बाटी खात ए।"

'भोला का करना।" गुलवत्ती ने एक लापरवाही से कहा। पर उस का दिल ज़ोर-ज़ोर म धड़कने लगा।

सोगिया हँस उठी और कहने लगी "अच्छा तो नोनी थोड़कुन आमा के अथान ही दे दे मैं ओ बेचारा ला दे आओं।"

"चल कुटनी ! तोर आपन खाये के मन होई ना ?"

"नही नोनी ! तोर कसम।"

सोगिया कसम खाती रही गुलवत्ती हँसकर यही कहती रही कि उस का अपना मन था अचार खाने को। वह यों ही पंजाबी ठाकुर का बहाना बना रही थी। पर साथ ही गुलवत्ती ने एक कटोरी म आम का अचार डाल दिया। एक म अरहर की दाल, और एक ढकन मे तिलकस्तूरी चावल।

कइ दिन बीत चले। फेरीवाले ने मंदिर के बरामदे मे डेरा लगा दिया। दिन भर वह इस गाँव म और आसपास के गाँवा मे कपड़ा बेचता। रात को इस मन्दिर के बरामद मे लौट आता। रोज़ उपले जलाता गेहूँ का आटा मलकर उस क पेड़े बनाता, उन मे घी भरता और उन्हे उपला की आग पर सेंक लेता। रोटी बनान का यह ढंग पंजाबी नही था। और इस पंजाबी यात्री ने मध्यप्रदेश की छत्तीसगढ़ी भाषा की तरह यह ढंग भी सीख लिया था। और इस तरह वह रोटी जिसे मध्यप्रदेश की भाषा म बाटी कहते हैं, सेक लेता। गुलवत्ती की महरी ने रोज़ उसे दाल, सब्ज़ी या अचार देने का नियम बना लिया था।

'कसे सोगिया तोर फेरीवाला-ठाकुर के का हाल चाल ए ? आजकल तो तोर ओकर खूब पटत ए, कभी अथान ले जात अस, कभी साग ले जात अस, ए का रंग-ढंग ए ?'

एक दिन गुलवत्ती ने महरी को चुटकी भरी।

सोगिया न हँसकर ऐसी नज़रो से गुलवत्ती को देखा कि गुलवत्ती को लगा यह नज़र गहरे तक उस के मन म झांक गयी थी। गुलवत्ती ने खुद ही सोगिया से मज़ाक किया था, खुद ही लजा गयी। सोगिया का साहस बढ़ा। कहने लगी, "हमन ला तो मालिक के मन ला देखना पड़त ए।"

"मोर मन ?" गुलवत्ती ने घबराकर-पूछा।

'तैं घबरा काबर गये अस नोनी ? तोर मन के बात, मोर मन के बात ए। मोर जी छूट जाई, तो छूट जाई, पर तोर बर तो मोर जान भी हाजर ए।"

सोगिया ने यह बात जाने कितने सच्चे दिल से की थी। गुलवत्ती का मन स्नेह के सेंक मे पिघल गया और दो मोटे-मोटे आँसू उस की आँखो मे भर आये।

'तोर दुख ला मैं जानत औं नोनी, तोर दादा सोला चण्डीपारा मे ब्याह

मे भारी गलती करी से।"

गुलबत्ती को महिरम मिल गयी। गुलबत्ती की जिन्दगी मे यह पहली रात थी जिस रात उस ने अपने मन म गुमकर सोचा कि—उस की जिन्दगी अगर गांजे की कली थी तो वह इस पजाबी ठाकुर की तलियों म मसली जाकर उस की उपलो की आग मे सुलगना चाहती थी। वह एक तीखा नशा बनकर इस गोरे, चिट्टे और सुकुमार युवक की आंखो म चढ़ जाना चाहती थी, वह गुलबत्ती आग सोचती-सोचती काँप भी गयी और झूम भी गयी।

दूसरे दिन प्रात काल गुलबत्ती न घर के पीछे बने कँवल फूलो के तालाब पर जाकर बहुत स फूल तोडे और थाली म डालकर मन्दिर मे ले गयी। मन्दिर के बरामदे म स गुजरते हुए गुलबत्ती न पजाबी ठाकुर को जी भरकर देखा और आज स पाँच साल पहल की एक छोटी सी बात उस बहुत याद आयी।—आज स पाँच साल पहल, जिस दिन उस न अघनिया से अपना नाम गुलबत्ती रखा था और अपनी सहेली सोनिया को लेकर कँवल फूलो के तालाब पर गयी थी, उस दिन जब उस की सहेली ने गाया था, 'घर ला फोहके बनाय हा कुरिया, तोर मया के मारे जाओ नही दुरिया,' और उस दिन उसे लगा कि कँवल फूलो की नीली और गुलाबी आभा की उसे माया लग गयी थी। वह वास्तव मे कवल फूलो की माया नही थी, वह इस आनेवाली घटना की परछाई थी। वह इस पजाबी ठाकुर की कँवल फूलो जैसी मोटी और काली आँखों की माया थी

पजाबी सरदार ने बड़ी तरसी हुई आँखों से गुलबत्ती की आँखो का हुकारा भरा जैसे वह रहा हो, 'माया तुझे तो नही लगी सुन्दरी! माया तो मुझे लग गयी तुम्हारी—देख मैं कितने दिनो से तुम्हारे घर के आगे धूनी लगाकर बैठा हूँ।'

पजाबी सरदार हेमसिंह से गुलबत्ती का मन मिल गया। सोनिया के बगैर और चांद-तारो के बगैर इस बात की खबर किसी को न हुई। पर गुलबत्ती जानती थी कि यह खुशबू अधिक देर गाँठ म बाँधकर नही रखी जा सकती थी। इसलिए एक रात गुलबत्ती ने हेमसिंह के हाथों का सहारा लेकर चण्डीपारा गाँव छोड दिया।

रात गुजरनी थी, गुजर गयी। पर चण्डीपारे का दिन नही गुजर सकता था। रगीलाल ने पहले अपना गाँव ढुढवाया। फिर गुलबत्ती के बाप कचकौलप्रसाद को साथ लेकर आसपास के गाँव ढुढवाये और अगली रात ढलने से पहल नरिएरा गाँव मे उस ने गुलबत्ती और हेमसिंह का पता पा लिया।

एक ओर चण्डीपारेवाले और झलमला गाव के लाग थे और दूसरी ओर नरिएरे के। नरिएरेवालों का कहना था कि उन के गाँव म जो भी कोई औरत

सहारा लेने के लिए आयी थी, वे उसे जरूर सहारा देंगे। दोनो गाँवों के मुखिया मिल बैठे और बात को लड़ाई झगड़े से बचाने के लिए उन्होंने पचायत बाँध ली। गुलबत्ती ने हेमसिंह का हाथ पकड़ा। भरी पचायत में बैठकर अपने हाथो की चूड़ियाँ तोड़ दी और रगीलाल से कहने लगी, 'ले ए पड़े ए तोर चूड़ी, आज ले तोर मोर कोई रिश्ता नही ए।"

पचायत ने हेमसिंह को दो सौ रुपये का दण्ड दिया और रगीलाल का दो सौ रुपया दिलवाकर गुलबत्ती हेमसिंह के साथ कर दी।

हेमसिंह की खपरैल में जब गुलबत्ती ने पचायत की ओर से सुखरू होकर चूल्हा जलाया तो उस के अगो में से खजूर के चीर खाए हुए तने से बूंद-बूंद बहती ताड़ी की तरह मस्ती टपक रही थी।

उस रात, और हर रात जब गुलबत्ती हेमसिंह की बाँहो में सोती थी तो उसे एक ही खयाल आता था कि वह गाँजे की कली थी जो हेमसिंह के साँसो की आग में सुलगकर पूरी नशा बन गयी थी। वह जी भरकर हेमसिंह की आँखो में देखती। उस की आँखो मे एक बावलापन होता और वह सोचती यह उसी के नशे की गुलाबी धारियाँ थीं। और वह सोचती कि उस की निष्फल जाती जिन्दगी सफल हो गयी थी।

तीन महीने बीत गये। एक दिन बैठी-बैठी गुलबत्ती के अन्तर से एक मसक उठी, 'को जाने का बात ए, आज मोर मन बीह खाये बर करत ए,' और गुलबत्ती ने जब तक तीन बड़े बड़े अमरूद न खा लिये उस का मन अमरूदों में भटकता रहा। एक दिन, दो दिन, और फिर गुलबत्ती का मन शकरकन्दी खाने के लिए मचलने लगा। गुलबत्ती ने शकरकन्दी भूनी और पेट भरकर खायी। अगले दिन गुलबत्ती हैरान थी, 'आज मोर जोदरी खाये के मन ए।' और गुलबत्ती के दूधिया भुट्टे भूनकर खाये। घर में झीना परागी चावल भी पड़े हुए थे और लुचई चावल भी, पर गुलबत्ती के अन्तर से उठकर उस की नाक को दुबराज चावलों की खुशबू चढ़ गयी थी। चावलों के माँड से उस के मन को उबकाई आ रही थी। उस ने प्याज भूनकर दुबराज चावलो का पुलाव पकाया। साथ तल में मछली भूनी और उस का मन खिल उठा। 'आज मोर समझ मे आयी सँ। मैं भी कहूँ कैसे मोर मन खाये खाये कर करत ए।' और गुलबत्ती मटक मटक उठी कि आज जब हेमसिंह रात को घर आयगा तो वे दोनो मिलकर अपने आनेवाले बच्चे की बातें करेंगे।

हेमसिंह फेरी लगाकर अभी घर नही लौटा था, मालगुजार के घर से एक आदमी ने आकर एक खत दिया। हेमसिंह को पहले भी कभी-कभी अपने गाँव से अपने माँ बाप का खत आया करता था और हमेशा मालगुजार के पते पर आता था। गुलबत्ती ने खत को सँभालकर रख दिया और बाहर दहलीज में

चढा झूठ बोल बैठा जो उस ने गुलबत्ती को यह नही बताया था कि पीछे गाँव म उस की एक औरत भी थी और एक बच्चा भी। और आज उस की औरत का मिन्नत भरा खत आया था कि उन का इकलौता बेटा मोटर के नीचे आ गया था और अब वह अस्पताल में पडा हुआ था। और उस की औरत ने दुहाई दी थी कि वह घर लौट आये।

हरी टहनी जैसी गुलबत्ती एक पल भर में झुर गयी। बोली कुछ नही, केवल हर्मसिंह के मुह की ओर देखती रही। देखते देखते उस के मन म आया कि उस की मुगे पत्तों जैसी जान अपनी अ ग से आप ही जल उठे। वह भी जलकर राख हो जाये और उस की डाल पर बैठा हुआ यह पछी भी जलकर राख हो जाये।

उदासी का एक सियाह बादल गुलबत्ती के मन में उठा और अँधेरी रात जैसे इस बादल का गुलबत्ती के मन म आयी एक बात बिजली की तरह चीर गयी। गुलबत्ती का सारा बदन बिजली की तरह चमका और बिजली की तरह काँपा। उस ने बिजली की लकीर की तरह हर्मसिंह की ओर देखा और कहन लगी, "मो तोला एक ठन बात बतात हौं।"

'का ?"

' मोर बच्चा होई लागत ए।"

हर्मसिंह चकित रह गया। उस ने सोचा कि चाहे वह गुलबत्ती को पचायत के सामने अपनी औरत बनाकर उसे पूरे अधिकार दे चुका था, पर इस समय गुलबत्ती न अपने अधिकारों को और पक्का करन के लिए शायद बच्चेवाली बात अपन मन म गढ ली थी।

"सच कहत अस ?"

मैं तोला सच कहत हो ठाकुर! जोन दिन मैं तोर घर आये रहऊँ, मोला बिलकुल मालम नही रही स कि मोर घर मे कुछ होनेवाला है "

' तार कहे क मतलब ए कि ए बच्चा रगीलाल के हैवे ?"

' हाँ।"

हर्मसिंह के मन से एकबारगी सारा भार उतर गया। उस के सुर्खरू होकर गुलबत्ती की ओर देखा। पहले तो गुलबत्ती के मन मे धरती को कपा देनेवाली बिजली की कडक उठी, पर फिर यह कडक उस के मन के सूने आसमानों म ही खो गयी। और गुलबत्ती ने शा त होकर हेर्मसिंह को गाँव लौटने के लिए तैयार कर लिया। अपने बारे म उस ने यही कहा कि वह रगीलाल के पास लौट जायेगी और उसके बच्चे को उस के बाप के घर जन्म देगी।

हर्मसिंह को रात की गाडी से गाँव भेजकर गुलबत्ती ने वह रात नरिएरा गाँव म ही काटी। रात का चौथा पहर था जब वह झलमला गाँव के लिए चल

बैठकर हेमसिंह की राह देखन लगी—आज वह मन म हेमसिंह के लिए दोहरी खुशी लेकर बैठी हुई थी।

हेमसिंह की झलक वह घन कुहासे मे भी पहचान लेती थी। आज तो अभी सांझ झीनी झीनी थी। उस ने सामने खेत की मड पर से आत हुए हेमसिंह को देख लिया। खुशी की एक लहर उस के मन मे उठी और वह सोचने लगी कि वह हेमसिंह को पहले कौन सी बात बतायेगी। बच्चेवाली बात बहुत बडी थी। और बडी बात हमेशा अन्त मे खोली जाती है गुलबत्ती ने सोचा, और अन्दर से खत लाकर अपने आँचल मे छिपाती वह आगे उमभकर हेमसिंह से मिली।

'तोर बर एक ठो चीज लाये हो, बता तो भला का ए?'

'महूँ तोर बर एक ठन चीज लाये हो। मोर सऊ बदली कर ले।"

पहले तो गुलबत्ती ने हेमसिंह को बनाया और कहने लगी, 'पहले मोर मन के साथ आपन मन के बदला बदली कर ले।"

पर जब हेमसिंह ने गुलबत्ती को अपनी बाँहो मे लेकर कहा, "आ तो कब के हो चुके ए। अब मैं ओ नया मन कहाँ ले आऊँ," तो गुलबत्ती ने आँचल मे छिपाया हुआ खत हेमसिंह को दे दिया और हेमसिंह से मोगरे के फूल लेकर अपने बालों मे टाँकने लगी।

हेमसिंह ने खत पढा और उस के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आयी। गुलबत्ती ने जल्दी से हेमसिंह का हाथ थामा और अपनी खपरल मे चले आये। पर हेमसिंह का मुख इस तरह हो आया था जैसे भरे दरिया म उस के हाथ से चप्पू छट गया हो। गुलबत्ती ने महुए की शराब कसोरे मे डाली और कसोरा हेमसिंह की आर बढाती हुई कहने लगी, "ए मा घबराय के का बात ए? जितना पैसा की तोला जरूरत होई, मैं देहा।"

पिछले दिनो हेमसिंह को जब गुलबत्ती के बदले इकट्ठे दो सौ रुपये दने पडे थे तो उसका हाथ तग हो गया था। उस न बताया था कि पीछे पजाब म उस के बूढे मा बाप उसी के सहारे थे। वह उ ह हर महीने कम से कम डेढ सौ रुपया भेजा करता था, तो गुलबत्ती ने एक रात अपने बाप से चोरी अपनी माँ से हेमसिंह को दो सौ रुपये ला दिये थे। इसलिए अब भी गुलबत्ती ने यही सोचा कि हेमसिंह को रुपये की जरूरत आ पडी थी।

हेमसिंह की आँखो से आसू वह निकले और वह गुलबत्ती के मुह की ओर बडी ऋणी आँखो से देखने लगा। गुलबत्ती घबरायी भी, पर घबराहट की अपेक्षा वह दिल थामकर तन बैठी। उस का मन हेमसिंह के हिस्से की हिम्मत भी अपने पास से जुटा रहा था। धीरे धीरे हेमसिंह ने मन की बात कही। और उस ने गुलबत्ती को जो प्रेम किया था वह प्रेम सच्चा था। पर वह एक बहुत

बड़ा झूठ बोल बैठा जो उस ने गुलबत्ती को यह नहीं बताया था कि पीछे गाँव में उस की एक औरत भी थी और एक बच्चा भी। और आज उस की औरत का मिन्नत भरा खत आया था कि उन का इकलौता बेटा मोटर के नीचे आ गया था और अब वह अस्पताल में पड़ा हुआ था। और उस की औरत ने दुहाई दी थी कि वह घर लौट आये।

हरी टहनी जैसी गुलबत्ती एक पल भर में झुर गयी। बोली कुछ नहीं, केवल हेमसिंह के मुँह की ओर देखती रही। देखते देखते उस के मन में आया कि उस की सूखे पत्तों जैसी जान अपनी आग से आप ही जल उठे। वह भी जलकर राख हो जाये और उस की डाल पर बैठा हुआ यह पंछी भी जलकर राख हो जाये।

उदासी का एक सियाह बादल गुलबत्ती के मन में उठा और अँधेरी रात जैसे इस बादल को गुलबत्ती के मन में आयी एक बात बिजली की तरह चीर गयी। गुलबत्ती का सारा बदन बिजली की तरह चमका और बिजली की तरह काँपा। उस ने बिजली की लकीर की तरह हेमसिंह की ओर देखा और कहने लगी, "मो लाला एक ठन बात बतात हौं।"

"का ?"

' मोर बच्चा होई लागत ए।"

हेमसिंह चकित रह गया। उस ने सोचा कि चाहे वह गुलबत्ती को पंचायत के सामने अपनी औरत बनाकर उसे पूरे अधिकार दे चुका था, पर इस समय गुलबत्ती ने अपने अधिकारों को और पक्का करने के लिए शायद बच्चेवाली बात अपने मन में गढ़ ली थी।

"सच कहत अस ?"

मैं तोला सच कहत हौं ठाकुर ! जौन दिन मैं तोर घर आये रहूँ, मोला बिलकुल मालम नहीं रही स कि मोर घर मे कुछ होनेवाला है "

' तोर कहे के मतलब ए कि ए बच्चा रगीलाल के हैं ?"

' हाँ।"

हेमसिंह के मन से एकबारगी सारा भार उतर गया। उस के सुर्खरू होकर गुलबत्ती की ओर देखा। पहले तो गुलबत्ती के मन में धरती को कँपा देनेवाली बिजली की कड़क उठी, पर फिर यह कड़क उस के मन के सूने आसमानों में ही खो गयी। और गुलबत्ती ने शान्त होकर हेमसिंह को गाँव लौटने के लिए तैयार कर दिया। अपने बारे में उस ने यही कहा कि वह रगीलाल के पास लौट जायेगी और उसके बच्चे को उस के बाप के घर जन्म देगी।

हेमसिंह को रात की गाड़ी से गाँव भेजकर गुलबत्ती ने वह रात नरिएरा गाँव में ही काटी। रात का चौथा पहर था जब वह झलमला गाँव के लिए चल

पड़ी।

गुलबत्ती से भी पहले गुलबत्ती की बात गाँव म पहुँच गयी थी। हेमसिंह जाते हुए नरिएरा गाँव के मालगुजार को मिलकर गया था। उस ने मालगुजार को यह बात बतायी थी और उस न यह बात रातो रात गुलबत्ती के बाप का पहुँचा दी थी।

गुलबत्ती जब झलमला गाँव म पहुँची, बाप का मुख खिंचा हुआ था, पर गुलबत्ती की माँ न उस गले से लगा लिया और उस का दिल बहलान लगा।

गिनती के तीन दिन निकले थ कि कचकौलप्रसाद न रगीलाल का बुला भेजा। रगीलाल न कुछ हेकड़ी तो दिखायी पर मन स शायद वह खुश था। उस ने कचकौलप्रसाद के घर आकर दारू पानी पिया और गुलबत्ती को फिर स अपने घर डालन क लिए मान गया। गुलबत्ती पहले अपन बाप स उलझी फिर रगीलाल के सामने जाकर तन गयी, 'तोर मच कहत हो, ए तोर नाहें।" और उस न रगीलाल क घर बसन म इनकार कर दिया।

माँ हैरान थी। सारा गाँव हैरान था। पर गुलबत्ती क लिए जैसे कुछ हुआ ही नही था। उस ने धप स माँ की सयानी बेटी की तरह माँ का चौका चूल्हा सँभाल लिया और बाप क सयान बेटे की तरह बाप के खेतो का काम सभाल लिया और अपन मन का समझा लिया कि हेमसिंह की आँखों मे दिखने कवल फूलो की जो माया उस के मन को लग गयी थी वह वास्तव म हेमसिंह की आँखो की माया नहीं थी, वह उस की अपनी कोख से पैदा होनवाले कवल फूल उस बच्चे की माया थी। और वह बड़ी उत्सुकता से अपने बच्च के जन्म का इन्तजार करन लगी।

गुलबत्ती क मन की गहराइ किसी न न पायी। गाँव की औरतें और गाँव के मर्द कुछ इधर उधर की चर्चा करत—खेतो की कटाई की बात कर सकते थे और मामले की बात भी कर सकत थ, पर कोई गुलबत्ती की छाती मे धड़कते हुए दिल की बात नही कर सकता था, गुलबत्ती की कोख म पड़ हुए बच्चे की बात नही कर सकता था। केवल एक बार जब उस के बचपन की सखी सोनिया जब ससुराल से आयी, उस ने हिम्मत बाँध ली और गुलबत्ती को कनेरो के तले बैठाकर पूछने लगी

'गया। एक ठन बात पूछत हों बतावे ?"

"पूछ ना। का पूछत अस ?'

'ए तार बच्चा काकर अस ए ?"

'मोर ए।"

'एकर दादा कौन ए ?"

'मैं ही एकर दाई हो, मैं हो एकर दादा।"

सोनिया की जैसे जवान थपला गयी। पर फिर भी उस ने हिया बांधकर पूछा, "तोर मर्द कौन ए गुलवत्ती ?"

"मोर मद अबी पैदा नहीं होए ए। जौन बच्चा मोर घर मे जनमे, ओइ हर मोर मद होई। ना तो रंगीलाल मोर सच्चा मद ए, अऊ ना हुमसिंह। अब मोर सच्चा मर्द मोर पेट ले जन्म मोर बच्चा मोर मर्द" और गुलवत्ती एक नशे म झूम गयी। उसे लगा कि वह गांजे की कली जरूर थी पर किसी भी मद के पास उसे पीने के लिए दिल की आग नही थी। इस कली को पीने के लिए उसे आग भी अपने दिल मे ही जलानी पड़ी थी। कली भी वह खुद थी, आग भी वह खुद थी, पीनेवाली भी वह खुद थी।

पाँच वरस लम्बी सड़क

सेंक मौसम का था मन का नहीं।

हवाई जहाज वक्त पर आया था, पर नीचे एयरपोर्ट से अभी सिगनल नहीं मिल रहा था। जहाज को दिल्ली पहुँचने की खबर देकर भी, अभी दस मिनट और गुजारने थे इसलिए शहर के ऊपर उस को कुछ चक्कर लगाने थे।

उस ने खिड़की म से बाहर झाँकते हुए शहर के मुंडेरे पहचाने, मुंडेरे, किले, खंडहर खेत

क्या पहचान सिर्फ आँखों की होती है ? आँखें इस पहचान को अपने से आगे, कहीं नीचे तक क्यों नहीं उतारती ? —उसे खयाल आया। पर एक धुन जैसी सोच की तरह नहीं ऐसे ही राह जाता खयाल।

मुंडरे, किले, खंडहर, खेत—उस ने कई देशों के देखे थे। हर देश म इन चीजों के यही नाम होते हैं चाहे हर देश मे इन चीजों का अलग अलग इतिहास होता है। इन के रंग, इन के कद, इन की मुंह मुहार भी अलग-अलग होती है—एक इनसान से अलग दूसरे इनसान की तरह। पर फिर भी इनसान का नाम इनसान ही रहता है। मुंडेरों का नाम भी मुंडेरे ही रहता है, किले का नाम भी किला ही

सिर्फ एक हलका सा फर्क था—हर देश म इन चीजों को देखते वक्त एक खयाल सा रहता था कि वह इन्हे पहली बार देख रहा था। पर आज अपने देश म इन्हे देखकर उसे लग रहा था कि वह इन्ह दूसरी बार देख रहा था और उसे खयाल आया अगर वह फिर कुछ दिनों बाद परदेश गया तो वहाँ जाकर, उन्ह देखकर भी, इसी तरह लगेगा कि वह उन को दूसरी बार देख रहा है। बिलकुल आज की तरह। यह देश और परदेश का फर्क नहीं था। यह सिर्फ पहली बार, और दूसरी बार देखने का फर्क था।

जहाज ने लैण्ड' किया। एयरपोर्ट भी जाना पहचाना-सा लगा, दूसरी बार देखने की तरह। इस से ज्यादा उस के मन म कोई सेंक नहीं था।

ओवरकोट उस के हाथ मे था। गले का स्वेटर भी उतारकर उस ने कन्धे पर रख लिया।

सेंक मौसम का था, मन का नही।

कस्टम मे से गुजरते वक्त उसे एक फाम भरना था कि पिछले नौ दिन वह कहाँ कहाँ रहा था। पिछले नौ दिन वह सिफ जरमनी मे रहा था। उस न फाम भर दिया। और उसे खयाल आया—अच्छा है, कस्टमवाले सिफ नौ दिनो का लेखा पूछते हैं, बीस पचीस दिना का नही। नही ता उसे सिलसिलेवार याद करना पडता कि कौन सी तारीख वह किस देश म रहा था। उस ने वापस आते समय कोई एक महीना सिफ इसी तरह गुजारा था— कभी किसी देश का टिकट ले लेता था, कभी किसी देश का। अगर किसी देश का वीजा उस नही मिलता था तो वह दूसरे देश चल पडता था

पासपोर्ट की चेकिंग करते समय और पासपोर्ट वापस करते हुए, एक अफसर ने मुसकरा के कहा था, 'जनाब पाँच बरस बाद देश आ रहे हैं।

बिलकुल उसी तरह जिस तरह एयर हास्टस न राह मे कई बार बताया था कि इस वक्त तक हम इतन हजार किलोमीटर तय कर चुके हैं। गिनती अजीब चीज होती है, चाह मीलों की हा या बरसो की। उस हँसी सी आयी।

जहाज मे स उस के साथ उतरे हुए लोगों को लेने आय हुए लोग—हाथ मिलाकर भी मिल रहे थे, गले मे बाँह डालकर भी मिल रहे थे। कइयो के गल मे फूलो के हार भी थे। 'पसीने की और फूलो की गध स शायद एक तीसरी गध और भी होती है' उसे खयाल आया। पर तीसरी गध की बात उस एक थीसिस लिखन के बराबर लगी। वह अभी अभी एक परदेशी जबान सीखकर और उस के लिटरेचर पर थीसिस लिख के, एक डिगरी लेकर आया था। नय थीसिस की कोई बात वह अभी नहीं सोचना चाहता था। इसलिए सिफ पसीन और फूलों की ग ध सूघता हुआ वह एयरपोर्ट से बाहर आ गया।

घर म सिफ माँ थी।

जाते वक्त बाप भी था, छोटा भाई भी, और एक लडकी नही वह लडकी घर म नही थी, वह सिफ उसी दिन उस क जानेवाले दिन आयी थी। माँ को सिफ एस ही कुछ घण्टो के लिए भ्रम हुआ था कि वह लडकी छोटा भाइ ब्याह करा क अब दूर नौकरी पर रहता था घर म नही था। बाप अब इस दुनिया मे कही नही था। इसलिए घर म सिफ माँ थी।

कई चीजें अन्दर स बदल जाती हैं, पर बाहर स वही रहती हैं। कई चीजें बाहर से बदल जाती हैं, पर अन्दर से वही रहती है।

उस का कमरा बिलकुल उसी तरह था—उस का पीला गलीचा उस की खिडकी के टसरी परदे, उस की मेज पर पडा हुआ हरी धारियो का फूलदान,

और दहलीज़ों मे पडा हुआ गहरा खाकी पायदान। चाँदनी का पौधा भी उस की खिडकी के आगे उसी तरह खिला हुआ था। पर पहले इस सब कुछ की गन्ध—दीवारो की ठण्डी गन्ध के समेत—उस के साथ लिपट-सी जाती थी। और अब उसे लगा कि वह उस के साथ लिपटने से सकुचाती, सिर्फ उस के पास से गुज़रती थी और फिर परे हो जाती थी। पता नही, उस के अन्दर कहा क्या बदल गया था।

माँ कश्मीरी सिल्क की तरह नरम होती थी और तनी सी भी। पर उम्र ने उसे जसे धो सा दिया था। वह सारी की-सारी सिकुड गयी लगती थी। मा से मिलते वक्त उस का हाथ मा के मुह पर ऐसे चला गया था,जैसे उसे हथेली से मास की सारी सिकुटनें निकाल देनी हो। माँ की आवाज़ भी बडी धीमी और क्षीण सी हो गयी लगती थी। शायद पहले उस की आवाज़ का ज़ोर उस के क़द जितना नहीं, उस के मद के कद जितना था, और उस के बिना अब वह नीचा हो गया था, मुश्किल से उस के अपने कद जितना। जब उस ने बेटे का मुह देखा था, उस की आखें उसी तरह सजग हो उठी थी जैसे हमेशा होती थी। उस के सीने की सास उसी तरह उतावली हो गयी थी, जैसे हमेशा होती थी। वह कही किसी जगह, बिलकुल वही थी जो हमेशा होती थी। सिर्फ उस के बाहर बहुत कुछ बदल गया था।

"मुझे पता था, तू आज या कल किसी दिन भी अचानक आ जायेगा," माँ ने कहा।

उस ने अपने कमरे मे लगे हुए ताजे फलो को देखा, और फिर माँ की तरफ।

मा की आवाज सकुचा सी गयी—"यह तो मैं रोज ही रखती थी।"

"रोज ? कितने दिनो से ?" वह हँस पडा।

"रोज" मा की आवाज़ उस के जिस्म की तरह और सिकुड गयी, "जिस दिन से तू गया था।"

"पाच बरसो से ?" वह चौंक सा गया।

मा सकुचाहट से बचने के लिए रसोई मे चली गयी थी।

उस ने जेब मे से सिगरेट का पैकेट निकाला। लाइटर पर उँगली रखी, तो उस का हाथ ठिठक गया। उस ने मा के सामने आज तक सिगरेट नहीं पी थी।

माँ ने शायद उस के हाथ मे पकडा हुआ सिगरेट का पैकेट देख लिया था। वह धीरे से रसोई मे से बाहर आकर, और बैठक म से ऐश ट्रे लाकर उस की मेज पर रख गयी।

उसे याद आया—छोटे होते हुए माँ ने उसे एक बार चोरी से सिगरेट पीते देख लिया था, और उस के हाथ से सिगरेट छीनकर खिडकी से बाहर फेंक दी

थी

माँ शायद वही थी पर वक्त बदल गया था।

माँ फिर रसोई में चली गयी। वह चुपचाप सिगरेट पीने लगा।

"मुझे पता था, तू आज या कल किसी दिन भी आ जायेगा" उसे माँ की अभी कही गयी बात याद आयी। और उस के साथ मिलती जुलती एक बात भी याद आयी। "मुझे पता लग जायेगा जिस दिन तुम्हें आना होगा, मैं खुद उस दिन तुम्हारे पास आ जाऊँगी।"

बहुत देर हुई, जब वह परदेश जाने लगा था, उसे एक लडकी ने यह बात कही थी।

उस लडकी से उस की दोस्ती पुरानी नहीं थी वाकफियत पुरानी थी, दोस्ती नहीं थी। पर पाँच बरसों के लिए परदेश जाने के वक्त, जाने की खबर सुन कर, अचानक उस लडकी को उस के साथ मुहब्बत हो गयी थी – जैसे जहाज में बैठे किसी मुसाफिर को अगले बन्दरगाह पर उतर जानेवाले मुसाफिर से अचानक ऐसी तार जुडी सी लगने लगती है कि पलों में वह उसे बहुत कुछ दे देना और उस से बहुत कुछ ले लेना चाहता है।

और ऐसे वक्त पर बरसों में *गुज़रनेवाला पलों में गुज़रता है।*

उस ने यह 'गुज़रना' देखा था। अपने साथ नहीं, उस लडकी के साथ।

"तुम्हारा क्या खयाल है मैं जो कुछ जाते वक्त हूँ, वही आते वक्त होऊँगा?" उस ने कहा था।

"मैं तुम्हारी बात नहीं करती, मैं अपनी बात कहती हूँ" लडकी ने जवाब दिया था।

"तुम यही होगी, यह तुम्हें किस तरह पता है?"

"लडकियों को पता होता है।"

"तो लडकियाँ बावरी होती हैं।"

वह हँस पडा था। लडकी रो पडी थी।

जाने में बहुत थोडे दिन थे। पाँच दिन और पाँच रातें लगाकर उस लडकी ने एक पूरी बाहोंवाला स्वेटर बुना था। उसे पहनाया था और कहा था, "बस एक इकरार *माँगती हूँ, और कुछ नहीं। जिस दिन तुम वापस लौटो, गले में* यही स्वटर पहनकर आना।'

"तुम्हारा क्या खयाल है, मैं वहाँ पाँच बरस" उस ने जो कुछ लडकी को कहना चाहा था, लडकी ने समझ लिया था।

जवाब दिया था, "मैं तुम से अनहोने इकरार नहीं माँगती। सिर्फ यह चाहती हूँ कि वहाँ का वहाँ ही छोड आना।"

वह कितनी देर तक उस लडकी के मुँह की तरफ देखता रहा था।

और फिर उस को यह सब कुछ एक अनादि औरत का अनादि छल लगा था। वह बेवफ़ाई को छूट दे रही थी पर उस पर वफ़ा का भार लादकर।

कह रही थी, "मैं तुम्हें खत लिखने के लिए भी नहीं कहूँगी। सिर्फ उस दिन तुम्हारे पास आऊँगी, जिस दिन वापस आओगे।"

तुम्हें किस तरह पता लगेगा, मैं किस दिन वापस आऊँगा?" लड़की को टीज़ करने के लिए उस ने कहा था।

और उस ने जवाब दिया था, 'मुझे पता लग जायगा, जिस दिन तुम्हें आना होगा।

उस दिन वह हँस दिया था।

उस ने परदेश देखे थे, वरम देखे थे, लड़कियाँ भी देखी थीं।

पर किसी चीज़ में उस ने डूबकर नहीं देखा था, सिर्फ किनारों से छूकर।

और वह सोचता रहा था—शायद डूबना उस का स्वभाव नहीं, या वह चलता है तो एक भार भी उस के साथ चलता है, और उसके पैरों का हर जगह कुछ रोक सा देता है

इन बरसों में उस ने कभी उस लड़की को खत नहीं लिखा था। लड़की ने कहा भी इसी तरह था।

हर देश की दोस्ती उस ने उसी देश में छोड़ दी थी। यह शायद उस का अपना ही स्वभाव था, या इसलिए कि उस लड़की ने कहा था।

सिर्फ वापस आते वक्त, जब वह अपना सामान पैक कर रहा था, उस स्वेटर को हाथ में पकड़कर वह कितनी देर सोचता रहा था कि वह उस और चीज़ों के साथ पैक कर दे या उस लड़की की बात रख ले और उसे पहन ले।

जो स्वेटर पहनकर जाना, पाँच बरसों बाद वही पहनकर आना, उसे एक मूर्खता की सी बात लगी थी। मूर्खता की सी भी और जज़्बाती भी।

और एक हद तक झूठी भी। क्योंकि जिस बदन पर यह स्वेटर पहनना था वह उस तरह नहीं था जिस तरह वह लेकर गया था।

पर उस ने स्वेटर को पैक नहीं किया। गले में डाल लिया। पर जब वह स्वेटर पहनकर शीशे के सामने खड़ा हुआ—उसे आर्ट गैलरियों में बैठे वे आर्टिस्ट याद आ गये, जो पुरानी और क्लासिक पेंटिंग्ज़ की हूबहू नकलें तैयार करते हैं।

और स्वेटर पहनकर उसे लगा—उस ने भी अपनी एक नकल तैयार कर ली थी।

इस नकल से वह शर्मिन्दा नहीं था सिर्फ इस नकल पर वह हँस रहा था।

मां को वह सब कुछ याद था, जो कभी उसे अच्छा लगता था। लेकिन वह स्वयं भूल गया था।

"देख तो अच्छा बना है ?" माँ ने जब पनीर का परांठा बनाकर उस के आगे रखा, तो उस को याद आया कि पनीर का परांठा उसे बहुत अच्छा लगता था। माँ न जानेवाले दिन भी बनाया था।

उस ने एक कौर तोड़कर मक्खन में डुबाया, और फिर माँ के मुह म डालकर हँस पड़ा—"वहाँ लोग पनीर तो बहुत खाते हैं पर पनीर का परांठा कोई नही बनाता।'

यह छुटपन से उस की आदतें थीं। जब वह बड़ा रो मे होता था, रोटी का पहला कौर तोड़कर माँ के मुह म डाल देता था।

'तू सात विलायत घूमकर भी वही का वही है ' माँ के मुह मे निकला और उस की आँखो म पानी भर आया। भरी आँखो म वह कह रही थी, 'तू आया है, सब कुछ फिर उसी तरह हो गया है।"

वह 'वह' नही था। कुछ भी वह नही था, जाते वक्त जो कुछ था वह सब बदल गया था। उस न बाप की बात नहीं छेड़ी थी, सिर्फ उस के खाली पलग की तरफ़ देखा था, और फिर आँखें परे कर ली थी। माँ के दिन ब दिन मुरझाते मुह की बात भी नहीं की थी। छोटे भाई की खैर खबर पूछी थी पर यह नही कहा था कि माँ को अकेला छोड़कर उसे इतनी दूर नहीं जाना चाहिए था। पर माँ कह रही थी ' सब कुछ फिर उसी तरह हो गया है "

"झटपट जो कोई भुलावा पड जाय, क्या हरज है,' उस न सोचा भी यही था। माँ के मुह म अपनी रोटी का कौर भी इसी लिए डाला था।

उस ने कोई और भी माँ की मरजी की बात करनी चाही। पूछा, "भाभी कैसी है ? तुम्हे पसन्द आयी है ?"

माँ न जवाब नही दिया। सिर्फ सवाल सा किया, "मेरा खयाल था, तू विलायत से कोई लड़की "

वह हँस पड़ा।

' बोलता क्यो नही ? '

' विलायत की लडकियाँ विलायत मे ही अच्छी लगती हैं, सब वहीं छोड आया हूँ।"

' मैं ने तो इस महीने पिछले दोनो कमरे खाली करवा लिये थे। सोचा था, तुझे जरूरत होगी।"

'ये कमरे किराये पर दिये हुए थे ? '

"छोटा भी चला गया था। घर बडा खाली था इसलिए पिछले कमरे चढ़ा दिये थे। जरा हाथ भी खुला हो गया था "

"तुम्हें पैसों की कमी थी ? ' उस परेशानी सी हुई।

"नही, पर हाथ म चार पैसे हों तो अच्छा होता है।"

"छाट की तनख्वाह थोडी नही, वह "

'पर वह भी अब परिवारवाला है, आजकल मे ही उस के घर "

"सा मरी माँ दादी बन जायेगी "

उस न माँ को हँसाना चाहा, पर मा कह रही थी, "मुझे तो कोई उज्र नही था जो तू विलायत मे कोई लडकी "

वह मा को हँसाने के य न म था। इसलिए कहने लगा, 'लाने तो लगा था पर याद आया कि तुम न जाते समय पक्की की थी कि मैं विलायत से किसी को साथ न लाऊँ।"

उसे याद आया — जानेवाले दिन, वह लडकी जब मिलने आयी थी, वह माँ को अच्छी लगी थी। मा न उन दोनो का इकट्ठे देखकर, ताकीद दी थी, देख, कही विलायत से न कोई ले आना। कोई भी अपने देश की लडकी की रीस नही कर सकती '

पर इस वक्त माँ कह रही थी, "वह तो मैं न वस ही कहा था। तेरी खुशी से मैं ने मुनकिर क्यों होता था। पीछे एक खत म मैं ने तुझे लिखा भी था कि जो तेरा जी चाहता हो "

'यह ता मैं ने सोचा, तुम ने ऐसे ही लिख दिया होगा," वह हँस पडा और फिर कहने लगा अच्छा, जो तुम कहो तो मैं अगली बार ले आऊँगा।"

'तू फिर जायगा ?" माँ घबरा सी गयी।

'वह भी जो तुम कहो तो, नही तो नही।

उसे लगा, उस आते ही जाने की बात नही करनी चाहिए थी। आते वक्त उसे एक यूनिवर्सिटी से एक नौकरी आफर हुई थी। पर वह इतने बरसो बाद एक बार वापस आना चाहता था। चाहे महीना के लिए ही।

"जा तुम कहोगी ता नही जाऊँगा," उस न फिर एक बार कहा।

मा को कुछ तसल्ली आ गयी। कहन लगी, "तू सामन होगा, चूल्हे म आग जलाने की तो हिम्मत आ जायगी, वसे तो कई बार चारपाइ पर से नही उठा जाता।'

'मा तुम इतनी उदास थी तो छाटे के साथ उस के घर "

म यहाँ अपन घर अच्छी हूँ। अब तू आ गया है मुझे और क्या चाहिए !"

उस को लगा मा बहुत उदास था। और शायद उस की उदासी का सम्बन्ध सिर्फ उस के अकेलपन स नही, किसी और चीज से भी था।

खिड़की म से आती धूप की लकीर दीवार पर बडी शोख सी दिख रही थी। उस ने खिड़की के परदे को सरकाया। और उस दालान का पीला रंग एस लगा जैसे निश्चिन्त सा होकर कमरे मे सो गया हो।

"तू थक गया होगा। कुछ खा ले, ' माँ न कहा, और मेज पर से प्लेटें उठा-

कर कमरे से जाने लगी।

"नही मुझे नींद नही आ रही," उस ने हलका सा झूठ बोला, और कहा, "मैं तुम्हारे लिए एक दो चीजें लाया हूँ, देखूं पूरी आती हैं कि नही।"

उस ने सूटकेस खोला। एक गरम काली ऊन की शाल थी, पखो जैसी हलकी। मां के कंधों पर डालकर कहने लगा, "यह जाडे की चीज है, पर एक मिनट जरा ऊपर ओढ़कर दिखाओ। यह तुम्हे बडी अच्छी लगेगी।"

फिर उस ने फर के स्लीपर निकाले। मां के पैरो मे पहनाकर कहने लगा, "देखो, कितने पूरे आये हैं! मुझे डर था, छोटे न हों।"

'इस उम्र में मुझे अच्छे लगेंगे?" मां की आंखों मे पानी सा भर आया था।

वह मां का ध्यान बंटाने के लिए और चीजें दिखाने लगा। प्लास्टिक की एक छोटी सी डब्बी म कुछ सिक्के थे—इटली के लीरा, यूगोस्लाविया के दीनार, बलगारिया के लेवा, हंगरी के फारेंटस, रोमानिया के लेई जरमनी के दीनार उस ने सिक्कों को खनकाया और कहने लगा, "मां, तुम ने कहा था न कि छोटे के घर बहुत जल्दी कोई बच्चा '

"हां हां, कहा था," मां कमरे से जाने के लिए उतावली सी लगी।

"यह अपने भतीजे को दूंगा।"

और फिर उस ने सूटकेस म से और चीजें निकाली—"छोटे के लिए यह कैमरा, और भाभी के लिए यह "

मां रुआंसी सी हो गयी।

उस का हाथ रुक गया।

"मां, क्या बात है, तुम मुझे बताती क्या नही?"

मां चुप थी।

उस ने मां के कंधे पर हाथ रखा।

मां को कोई कही कुसूरवार लगता था। पता नही, कौन? और सोच सोच कर उसे अपना मुह ही कुसूरवार लगने लगा था। उस ने एक विवशता से उस की तरफ देखा।

"मां, तुम कुछ बताना चाहती हो, पर बताती नही।

'वह लडकी "

"कौन सी लडकी?"

"जो तुझे उस दिन मिलने आयी थी, जिस ने तेरे लिए एक स्वेटर "

"हां, क्या हुआ उस लडकी को?"

"उस ने छोटे के साथ ब्याह कर लिया है।"

मां के कंधे पर रखा हुआ उस का हाथ कस सा गया। एक पल के लिए उसे लगा कि हाथ ने कंधे का सहारा लिया था, पर दूसरे पल लगा कि हाथ ने

कन्धे को सहारा दिया था।

और वह हँस पड़ा—"सो वह मेरी भाभी है !"

माँ उस के मुँह की तरफ देखने लगी।

"मुझे खत में क्यों नहीं लिखा था ?"

"क्या लिखती यह उन्होंने लिखनेवाली बात की थी ?"

"छोटे ने सिर्फ ब्याह की खबर दी थी और कुछ नहीं लिखा था।"

"दोनों शरमिन्दे तुझे क्या लिखते !"

खुले सूटकेस के पास जो दूसरा बन्द सूटकेस था, उस पर उस का ओवरकोट और वह स्वेटर पड़ा हुआ था जो उस ने सुबह आते वक्त पहना था।

वह एक मिनट स्वेटर की तरफ देखता रहा। स्वेटर गुच्छा सा होकर अपने-आप को ओवरकोट के नीचे छिपाता सा लग रहा था।

एक मर्द एक औरत

अलमारी का शीशा बहुत लम्बा था—उस के क़द जितना।

वह अपने कोट के बटन खोलने लगा था, उस का हाथ पहले बटन पर ही रुक गया जैसे शीशे के बीचवाले हाथ ने उस का हाथ पकड़ लिया हो।

"कपड़े नहीं बदलोगे ?" औरत की आवाज़ आयी।

मर्द हँस सा दिया। शीशे मे भी कुछ हिल सा गया।

"तुम ने 'पिक्चर ऑफ डोरियन ग्रे' पढ़ी है ?" मर्द ने पूछा।

"पिक्चर आफ डोरियन ग्रे ?"

"आस्कर वाइल्ड का सब से मशहूर उपन्यास।"

"मेरा ख्याल है कॉलेज के दिनो में पढ़ी थी, पर इस वक्त याद नहीं शायद उस मे एक पेण्टिंग की कोई बात थी"

"हाँ, पेण्टिंग की। वह एक बड़े हसीन आदमी की पेण्टिंग थी"

"फिर शायद वह आदमी हसीन नहीं रहा था और उस के साथ ही उस की पेण्टिंग बदल गयी थी कुछ ऐसी ही बात थी।"

"नहीं, वह उस की पिछली शक्ल के साथ नहीं बदली थी, उस के मन की हालत से बदली थी। रोज बदलती थी।"

"अब मुझे याद आ गया है। आदमी उसी तरह हसीन रहा था पर पेण्टिंग के मुह पर झुर्रियाँ पड़ गयी थी"

"उस के मन की सोचो की तरह।"

"अब मुझे सारी कहानी याद आ गयी है।"

"मेरा ख्याल है यह शीशा"

"यह शीशा ?"

"सामने शीशे मे देखो, मेरी शक्ल बदल गयी है।"

"आज पार्टी मे तुम ने बहुत पी थी।"

"नहीं बहुत नहीं मैं अभी और पीना चाहता हूँ यहाँ अकेले, इस शीशे

के सामने बैठकर और देखना चाहता हूँ—यह शक्ल और कितनी बदल सकती है "

औरत परे खडी थी, उधर पलग के पास। इधर मद के पास आयी, शीशे के पास। उस की आवाज़ मे दिलजोई थी। कहने लगी, "आज की पार्टी मे कोई सब से हसीन आदमी अगर था तो वह सिफ तुम। तुम न उन की शक्लें नही देखी ? उन सब की, जि ह तुम ने पार्टी पर बुलाया था व मास के ढेर से "

"मैं उन की बात नही कर रहा, सिफ अपनी कर रहा हूँ।"

"हाँ देख लो शीशे मे—तुम्हारा वही च दनकी गेली जसा जिस्म। माथा, आँखें नाक जैसे खुदा न फुरसत म बैठकर गढे हो " औरत ने कहा। वह अभी भी दिलजाई की रौ मे थी।

"यह शब्दावली शायरो के लिए रहने दो " मद खीझ-सा गया।

"मेरा खयाल है, तुम थक गये हा। वसे भी रात आधी हाने को है "

"पर तुम शीशे म क्या नही देखती ? देखने से डरती हो ?"

"शीशे म कुछ और हो जायगा ?"

"हो जायेगा नही, हो गया है।"

"कहाँ ? कुछ भी नही हुआ "

'अभी हुआ था, मैं ने खु द देखा था मैं जब हँसा था, शीशे म मेरा यही मुँह रो पडा या यह शीशा डोरियन ग्रे की पेण्टिग की तरह "

"मैं गुसलखान म से नाइट सूट ला देती हूँ, तुम कपडे बदल लो।"

'कपडे सम्यता की निशानी हात है, इस निशानी के बगैर मैं क्या हाऊँगा तुम ने ही कहा था कि इस पार्टी के लिए मुझे नया सूट सिलवाना चाहिए "

'मैं ने ठीक कहा था, वह सब तुम से वडे इम्प्रेस हुए लगते थे '

"इसलिए मैं यह सूट उतारना नही चाहता।"

"पर अब घर मे कोई नही।'

'अभी मैं हू

औरत को अब यकीन हो गया था कि वह अब बहक गया है इसलिए बोली नही।

मद ने ही कहा, "उस वक्त मैं न उन को इम्प्रेस किया था, प र इस वक्त अपनआप का करना है इसलिए अभी यह सूट नही उतार सकता।"

औरत चुप थी।

'कुछ ह्विस्की बची है ?' मद न पूछा।

औरत क मुह पर से एक सोच की परछाइ गुज़र गयी। परछाइ को पसीने की तरह पोछकर बोली वह, "नही।'

"मेरा खयाल है, तुम्हे झूठ बोलने का अभी ढग नही आया।" मद हँस दिया।

"पर इस वक्त मैं और नहीं पीने दूँगी।"

"सिफ एक गिलास "

"नहीं।"

"तुम ने उ ह किसी गिलास के लिए मना नहीं किया था।"

"वे गेस्ट थे "

"रिस्पक्टेबल गेस्ट रिस्पेक्टबल सिफ वे थे, मैं नही ?"

"मैं ने रिस्पक्टबल नहीं कहा, सिर्फ़ गेस्ट कहा है।"

"तुम मुझे भी अपना गेस्ट समझ लो "

"क्या ?"

"यह घर तुम्हारा है, मैं तुम्हारा गेस्ट हूँ।"

"यह घर सिफ मेरा है ?"

"घर सिफ औरत का होता है।"

औरत को इस वक्त कुछ भी कहना ठीक नही लगा। उसे लगा कि इस वक्त सिफ सो जाना चाहिए। वह चुपचाप गुसलखान म गयी, और मद का नाइट सूट लाकर, पलग की बाँही पर रख दिया।

मद न कमरे के हलक नील आयन पेण्ट की तरफ देखा, पलग की रेशमी सलेटी चादर की तरफ, फिर टेबल लम्प क आसमानी शेड की तरफ और उस का जी चाहा, वह औरत से कहे—इस कमरे का सारा कुछ बरसो से उस की कल्पना थी। इस कमरे की भी और बाहर के बडे कमरे की भी इस सब कुछ को चाहती वह खुद करती थी कि उस के दफ्तर से उस कोई वास्ता नही, पर अपना घर वह अपनी मरजी स बनायेगी घर औरत का होता है

फिर उस न नाइट सूट की तरफ देखा। और सिफ इतना कहा, "यू आर ए वण्डरफुल होस्ट आई मीन होस्टेस "[1]

औरत अभी भी चुप थी।

सिफ वही कह रहा था, मेरी महरबान, अब एक गिलास ह्विस्की दे दो।'

औरत को लगा कि इस वक्त गिलासवाली बात को टाला नहीं जा सकता। वह बाहर के कमरे म गयी, और कुछ मिनटो के बाद, उस न एक गिलास लाकर मेज पर रख दिया।

"यू आर रीयली ए डार्लिग।'[2] मद न ह्विस्की के पहले नही पर तीसर

1 तुम बहुत अच्छी मेजबान हो

2 तुम सच में प्रिय हो।

घूट के साथ कहा ।

औरत को कुछ याद आया—और वह खोल सी गयी—"मुझे यह शब्द अच्छे नही लगते ।'

'क्यो ?"

"आज की पार्टी म बिलकुल यही शब्द तुम्हारे एक मेहमान ने तुम्हारी सेक्रेटरी को कहे थे ।"

'पर वह नाराज़ नही हुई थी ।"

"वह सेक्रेटरी है, मैं बीवी हूँ ।"

'यह फक कैसा लगता है ?"

' डिसगस्टिंग ।' [1]

' डिसगस्टिंग बीवी होना या कि सक्रेटरी होना ?"

"मेरे खयाल म सेक्रेटरी होना ।"

यू आर राइट ।"

मद ने ह्विस्की का घूट भरा, और कहने लगा, ' एक मरिड औरत की पोज़ीशन सचमुच बडी शानदार होती है । वह जब चाहे नाराज़ हो सकती है । जिस बात पर, और जब चाह पर बेचारी सक्रेटरी "

इस तन्ज़ का मतलब ?"

"यह तन्ज़ नही ।'

"फिर यह क्या है ?"

"एक फक्ट । '

"उस से बडी हमदर्दी है ?"

"उस के साथ नही, सिफ उस के सेक्रेटरी होने से ।"

"इसी लिए उस की हर दूसरे महीने तरक्की हो जाती है ?"

यह तरक्की नही, डियर, यह रिश्वत है । सिफ यह रिश्वत का नया तरीका है ।'

' किस चीज़ की रिश्वत ?'

"हमारी एजेन्सी को जिस सेठ ने अपने मिल का ऐडवरटाईज़िंग एकाउण्ट दिया है, यह उसकी शत थी उस लडकी की तरक्की भी उसी की शत है '

"यह उस सेठ की "

' ए कप्ट विमेन" ।[2]

"इट इज़ आल डिसगस्टिंग । '[3]

1 घृणित ।
2 रखैल ।
3 यह सब बड़ा घृणित है ।

"यस, इट इज़ आल डिस्गस्टिंग।"
'पर तुम्हें उस से हमदर्दी किस बात की है?"
"क्योंकि मैं उस का हमपशा हूँ।
'क्या मतलब?"
'हम सब सब उस के हमपशा हैं "
"किस तरह?"
'वी आर नॉट मैरिड टु अदर वन वी आर आल लाइक कैप्ट विमेन "[1]
मर्द हँसा फिर कहने लगा 'आज की पार्टी से भी यह जाहिर था। मैं ने उन को खुश करने के लिए यह सब कुछ किया था। पाँच लाख एक साल के बिजनेस का सवाल था "
मर्द ने ह्विस्की के गिलास का आखिरी घूँट भरा, शीशे की तरफ देखा। पता नहीं उसे क्या नजर आया उस ने एक बार आँखें बन्द सी कर ली। फिर खोली तो वह उस शीशे की तरफ नहीं खाली गिलास की तरफ देख रही थी।
"मेरी मेहरबान, एक गिलास और।'
"नहीं, और नहीं।"
'आज जश्न-गुलामी है।'
औरत ने अपनी घबराहट को माथे पर से पसीने की तरह पोंछा।
'देख मेरी जान, आज की पार्टी ने अगले साल का बिजनेस भी पक्का कर दिया है। इस का मतलब है—अगले साल भी पाँच लाख का बिजनेस। इसलिए मैं ने नया सूट पहना था वे औरतें मेरा मतलब है कैप्ट विमेन इसी तरह नयी साड़ी पहनती हैं फिर सारा वक्त दिल फरेब बातें उन्हें किसी भी बात से नाराज होने का हक नहीं होता मैं भी किसी बात से नाराज नहीं हुआ '
औरत ने मर्द के पास होकर उस के कोट के बटन खोले। बटन खोलते हुए वह काफी देर तक उस के सीने के पास खड़ी रही। शायद मर्द के हाथ की किसी हरकत का इन्तजार कर रही थी
रात कमरे में भी अडोल थी, दूर परे तक भी अडोल थी। मर्द के अंगों की तरह।
और फिर अचानक एक कुत्ते के भूंकने की आवाज आयी। और औरत को लगा—उस की छाती में भी कुछ था, जो इस वक्त
कुत्ते के भूंकने की आवाज बायें हाथवाली कोठी की तरफ से आयी थी। फिर अगले मिनट दायें हाथवाली कोठी की तरफ से भी आयी। शायद जवाब की सूरत में।

1 हमारी शादी अपने काम से नहीं हुई है हम सब रखैलों की तरह हैं।

शाह की कजरी

उसे अब नीलम कोई नही कहता था, सब शाह की कजरी कहते थे।

नीलम को लाहौर हीरामण्डी के एक चौबारे म जवानी चढी थी। और वहाँ ही एक रियासती सरदार के हाथों पूरे पाँच हजार म उस की नथ उतरी थी। और वहाँ ही उस के हुस्न ने आग जलाकर सारा शहर झुलस दिया था। पर फिर एक दिन वह हीरामण्डी का सस्ता चौबारा छोडकर शहर के सब स बडे होटल फ्लटी म आ गयी थी।

वही शहर था, पर सारा शहर जैसे रातोरात उसका नाम भूल गया हो, सब के मुह से सुनायी देता था—शाह की कजरी।

गजब का गाती थी। कोई गानेवाली उस की तरह मिरजे की 'सद' नही लगा सकती थी। इसलिए लोग चाहे उस का नाम भूल गये थे पर उस की आवाज नही भूल सके। शहर म जिस के घर भी तववाला बाजा था, वह उस के भरे हुए तवे जरूर खरीदता था। पर सब घरो म तवे की फरमाइश के वक्त हर कोई यही कहता था आज शाह की कजरीवाला तवा जरूर सुनना है।'

लुकी छिपी बात नही थी, शाह के घरवालो को भी पता था। सिर्फ पता ही नहीं था, उन के लिए बात भी पुरानी हो गयी थी। शाह का बडा लडका जो अब ब्याहने लायक था, जब गोद मे था तो सेठानी ने जहर खाकर मरने की धमकी दी थी, पर शाह ने उस के गले म मोतिया का हार डालकर उस कहा था, 'शाहनीये ! वह तेरे घर की बरकत है। मेरी आख जौहरी की आँख है, तू ने सुना हुआ नही कि नीलम ऐसी चीज होता है जो लाखो को खाक कर देता है और खाक को लाख बनाता है। जिसे उलटा पड जाय, उस के लाख के खाक बना देता है। पर जिसे सीधा पड जाय उसे खाक स लाख बना देता है। वह भी नीलम है, हमारी राशि स मिल गया है। जिस दिन से साथ बना है, मैं मिट्टी म हाथ डालूँ तो सोना हो जाती है'

"पर वही एक दिन घर उजाड देगी, लाखो को खाक कर देगी" शाहनी ने

चाहती थी—कहना नही, एक कुत्ते की तरह और औरत ने अपनी छाती पर एक हाथ रख लिया। उसे लगा, उस की छाती धौंक रही थी।

'तुम अब भी चुप हो, उस वक्त भी चुप थी " अचानक मर्द ने कहा।

"उस वक्त ? किस वक्त ?' औरत चौंक सी गयी।

मर्द फिर हँस सा पड़ा, कहने लगा, 'तुम्हारा ख्याल है मैं ने देखा नही था ? जिस वक्त उस सेठ ने तुम से हाथ मिलाया था, कहा था, 'थैंक यू मैडम और उस ने तुम्हारा हाथ भींचा या तुम्हारी तरफ देखते हुए उस की नजर एक शिकारी कुत्ते की तरह '

औरत कुछ देर मर्द की तरफ देखती रही, फिर कहने लगी, 'एक हमारे पहले घर की पड़ोसिन थी, उस का मर्द आये दिन घर में नयी औरत लाता था। वह हमेशा चुप रहती थी। मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा था उस बात का इस बात से कोई सम्बन्ध नही, पर फिर भी कुछ इसी तरह लगा था मैं ने सोचा, मेरे कुछ बोलने से तुम्हारा कारोबार "

औरत ने आखो मे आये हुए पानी को पसीने की तरह पोछा।

"मैं भी चुप रहा था" मर्द ने कहा और मेज पर रखा हुआ गिलास फिर हाथ में पकड़ लिया। गिलास को आखिरी घूट तक पीता हुआ कहने लगा 'इट इज फार आल द डाग्ज द मैड वस द हण्टिंग वस द बार्किंग वस एण्ड[1] " मर्द ने पहले मुसकराकर औरत की तरफ देखा, फिर शीशे में, और कहा—'ऐण्ड द साइलण्ट वस '[2]

1 यह जाम सारे कुत्तों के लिए है पागल कुत्तों के लिए शिकार करनेवाले कुत्तों के लिए भूकनेवाले कुत्तो के लिए और

2 और उन कुत्तो के लिए जो चुप रहते हैं

शाह की कजरी

उस अब नीलम कोई नही कहता था, सब शाह की कजरी कहते थे।

नीलम को लाहौर हीरामण्डी के एक चौबार म जवानी चढी थी। और वहाँ ही एक रियासती सरदार क हाथो पूरे पाँच हजार म उस की नथ उतरी थी। और वहाँ ही उस के हुस्न ने आग जलाकर सारा शहर झुलस दिया था। पर फिर एक दिन वह हीरामण्डी का सस्ता चौबारा छोडकर शहर के सब स बडे होटल पलटी मे आ गयी थी।

वही शहर था, पर सारा शहर जसे रातोरात उसका नाम भूल गया हो, सब के मुह से सुनायी देता था—शाह की कजरी।

गजब का गाती थी। कोई गानेवाली उस की तरह मिरज की सद नही लगा सकती थी। इसलिए लोग चाहे उस का नाम भूल गय थ पर उस की आवाज नही भूल सके। शहर म जिस के घर भी तववाला बाजा था, वह उस क भर हुए तव जरूर खरीदता था। पर सब घरो म तव की फरमाइश के वक्त हर कोई यही कहता था 'आज शाह की कजरीवाला तवा जरूर सुनना है।'

लुकी छिपी बात नही थी, शाह के घरवालो को भी पता था। सिफ पता ही नहीं था, उन के लिए बात भी पुरानी हो गयी थी। शाह का बडा लडका जो अब ब्याहने लायक था, जब गोद म था तो सठानी न जहर खाकर मरन की धमकी दी थी, पर शाह न उस के गल म मोतियो का हार डालकर उस कहा था, 'शाहनीय ! वह तेर घर की बरकत है। मरी आँख जौहरी की आँख है, तू ने सुना हुआ नही कि नीलम ऐसी चीज होता है जो लाखो को खाक कर देता है और खाक को लाख बनाता ह। जिसे उलटा पड जाय, उस के लाख क खाक बना देता है। पर जिसे सीधा पड जाय उस खाक स लाख बना देता है। वह भी नीलम है, हमा ी राशि से मिल गया है। जिस दिन स साथ बना है, मैं मिट्टी म हाथ डालूँ तो सोना हो जाती है'

'पर वही एक दिन घर उजाड देगी, लाखो को खाक कर देगी," शाहनी न

छाती की साल सहकर उसी तरफ से दलील दी थी, जिस तरफ से शाह ने बात चलायी थी।

"मैं तो बल्कि डरता हूँ कि इन कजरियों का क्या भरोसा, कल किसी और ने सब्जबाग दिखाये, और जो यह हाथों से निकल गयी, तो लाख से खाक बन जाना है।" शाह ने फिर अपनी दलील दी थी।

और शाहनी के पास और दलील नहीं रह गयी थी। सिर्फ वक्त के पास रह गयी थी और वक्त चुप था कई बरसों से चुप था। शाह सचमुच जितने रुपये नीलम पर बहाता, उस से कई गुना ज्यादा पता नहीं कहाँ कहाँ से बहकर उस के घर आ जाते थे। पहले उस की छोटी सी दुकान शहर के छोटे से बाजार में होती थी पर अब सब से बड़े बाजार में लोहे के जंगलेवाली, सब से बड़ी दुकान उस की थी। घर की जगह पूरा महल्ला ही उस का था, जिसमें बड़े खाते-पीते किरायेदार थे। और जिस में तहखानेवाले घर को शाहनी एक दिन के लिए भी अकेला नहीं छोड़ती थी।

बहुत बरस हुए, शाहनी ने एक दिन मोहरोंवाले ट्रंक को ताला लगाते हुए शाह से कहा था, "उसे चाहे होटल में रखो और चाहे उसे ताजमहल बनवा दो पर बाहर की बला बाहर ही रखो, उसे मेरे घर ना लाना। मैं उस के माथे नहीं लगूंगी।"

और सचमुच शाहनी ने अभी तक उस का मुंह नहीं देखा था। जब उसने यह बात कही थी, उस का बड़ा लड़का स्कूल में पढ़ता था, और अब वह ब्याहने लायक हो गया था, पर शाहनी ने न उस के गानेवाले तवे घर में आने दिये, और न घर में किसी को उस का नाम लेने दिया था।

वैसे उस के बेटों ने दुकान दुकान पर उस के गाने सुन रखे थे, और जने जने से सुन रखा था—'शाह की कजरी।'

बड़े लड़के का ब्याह था। घर पर चार महीने से दर्जी बैठे हुए थे, कोई सूट पर सलमा काढ़ रहा था, कोई तिल्ला, कोई किनारी, और कोई दुपट्टे पर सितारे जड़ रहा था। शाहनी के हाथ भरे हुए थे—रुपयों की थैली निकालती, खालती, फिर और थैली भरने के लिए तहखाने में चली जाती।

शाह के यार दोस्तों ने शाह की दोस्ती का वास्ता डाला कि लड़के ब्याह पर कजरी जरूर गवानी है। वैसे बात उन्होंने बड़े तरीके से कही थी ताकि शाह कभी बल न खा जाये, "वैसे तो शाहजी की बहुतेरी गाने-नाचनेवाली हैं, जिसे मरजी हो बुलाओ। पर यहाँ मलिका ए तरन्नुम जरूर आये, चाहे मिरजे की एक ही 'सद' लगा जाये।'

पन्टी होटल आम होटलों जैसा नहीं था। वहाँ ज्यादातर अँगरेज लोग ही आते और ठहरते थे। उस में अकेले-अकेले कमरे भी थे, पर बड़े-बड़े तीन कमरों

के सेंट भी। ऐसे ही एक सेंट मे नीलम रहती थी। और शाह ने सोचा – दोस्तो-यारो का दिल खुश करने के लिए वह एक दिन नीलम के यहाँ एक रात की महफिल रख लेगा।

'यह तो चौबारे पर जानेवाली बात हुई," एक ने उज्र किया तो सारे बोल पडे, "नही, शाहजी! वह तो सिर्फ तुम्हारा ही हक बनता है। पहले कभी इतने बरस हम ने कुछ कहा है? उस जगह का भी नाम नही लिया। वह जगह तुम्हारी अमानत है। हम तो भतीजे के ब्याह की खुशी मनानी है उसे खान-दानी घराना की तरह अपने घर बुलाओ, हमारी भाभी के घर "

बात शाह के मन भा गयी। इसलिए कि वह दोस्ता-यारो को नीलम की राह दिखाना नही चाहता था (चाहे उस के कानो मे भनक पडती रहती थी कि उस की गैर हाजिरी मे कोई कोई अमीरजादा नीलम के पास आने लगा था)—दूसरे इसलिए भी कि वह चाहता था, नीलम एक बार उस के घर आकर उस के घर की तडक भडक देख जाये। पर वह शाहनी से डरता था, दोस्तो को हामी न भर सका।

दोस्तो यारो म से दो ने राह निकाली, और शाहनी के पास जाकर कहने लगे, "भाभी, तुम लडके की शादी के गीत नही गवाओगी? हम तो सारी खुशियाँ मनायेंगे। शाह न सलाह की है कि एक रात यारो की महफिल नीलम की तरफ हो जाये। बात तो ठीक है पर हजारो उजड जायेंगे। आखिर घर तो तुम्हारा है, पहले उस कजरी को थोडा खिलाया है? तुम सयानी बनो। उसे गाने-बजाने के लिए एक दिन यहाँ बुला लो। लडके के ब्याह की खुशी भी हो जायेगी और रुपया उजडने स बच जायगा।"

शाहनी पहले तो भरी भरायी बोली, 'मैं उस कजरी के माथे नही लगना चाहती," पर जब दूसरो ने बडे धीरज स कहा "यहा तो भाभी तुम्हारा राज है। वह बाँदी बनकर आयेगी तुम्हारे हुक्म म बँधी हुई, तुम्हारे बेटे की खुशी मनाने के लिए। हेठी तो उस की है, तुम्हारी शाह की? जसे कमीन कुमन आय, डोम मिरासी, तैसी वह।"

बात शाहनी के मन भन भा गयी। वैसे भी कभी सोते बैठते उस खयाल आता था — एक बार देखू तो सही कैसी है?

उस ने उसे कभी देखा नही था पर कल्पना जरूर थी—चाहे डरकर, सहमकर, चाहे एक नफ़रत स। और शहर मे स गुजरते हुए, अगर किसी कजरी को टाग मे बैठी देखती तो न सोचते हुए ही सोच जाती—क्या पता, वही हो?

"चलो एक बार मैं भी देख लू,' वह मन मे फूल सी गयी, 'जो उस को मेरा बिगाडना था, बिगाड लिया, अब और उसे क्या कर लेना है! एक बार

चन्दरा को देख तो लू।"

शाहनी ने हामी भर दी, पर एक शर्त रखी—"यहाँ न शराब उड़ेगी, न कबाब। भले घरों में जिस तरह गीत गाये जाते हैं, उसी तरह गीत करवाऊँगी। तुम मर्द मानस भी बैठ जाना। वह आय और सीधी तरह गाकर चली जाय। मैं वही चार बताशे उस की झोली में भी डाल दूँगी जो और लड़कियों बहुकियों को दूँगी जो बन्ने सहरे गायेंगी।"

'यही तो भाभी हम कहते हैं।" शाह के दोस्तों ने फूँक दी, "तुम्हारी समझदारी से ही तो घर बना है नहीं तो क्या खबर क्या हो गुजरना था।"

वह आयी। शाहनी ने गुरु अपनी बग्घी भेजी थी। घर महमानों से भरा हुआ था। बड़े कमरे में सफेद चादरें बिछाकर बीच में ढोलक रखी हुई थी। घर की औरतों ने बन्ने सहरे गाने शुरू कर रखे थे

बग्घी दरवाजे पर आ रुकी तो कुछ उतावली औरतें दौड़कर खिड़की की एक तरफ चली गयी और कुछ सीढ़ियों की तरफ

'अरी बदशगुनी क्यों करती हो, सहरा बीच में ही छोड़ दिया।' शाहनी ने डाँट भी दी। पर उस की आवाज खुद ही धीमी सी लगी। जैसे उस के दिल पर एक धमक सी हुई हो

वह सीढ़ियाँ चढ़कर दरवाजे तक आ गयी थी। शाहनी ने अपनी गुलाबी साड़ी का पल्ला सँवारा जैसे सामने देखने के लिए वह साड़ी के शगुनवाले रंग का सहारा ले रही हो

सामने उस ने हरे रंग का बाँकड़ीवाला गरारा पहना हुआ था, गले में लाल रंग की कमीज थी और सिर से पैर तक ढलकी हुई हरे रेशम की चुनरी। एक झिलमिल सी हुई। शाहनी को सिर्फ एक पल यही लगा—जैसे हरा रंग सारे दरवाजे में फैल गया था।

फिर हरे काँच की चूड़ियों की छनछन हुई, तो शाहनी ने देखा—एक गोरा-गोरा हाथ एक झुके हुए माथे को छूकर आदाब बजा रहा है, और साथ ही एक झनकती हुई सी आवाज—"बहुत बहुत मुबारिक, शाहनी! बहुत-बहुत मुबारिक"

वह बड़ी नाजुक सी, पतली सी थी। हाथ लगते ही दोहरी होती थी। शाहनी ने उसे गाव तकिये के सहारे हाथ के इशारे से बैठने को कहा तो शाहनी को लगा कि उस की मांसल बाँह बड़ी ही बेडौल लग रही थी

कमरे के एक कोने में शाह भी था। दोस्त भी थे, कुछ रिश्तेदार मर्द भी। उस नाजनीन ने उस कोने की तरफ देखकर भी एक बार सलाम किया और फिर परे गाव-तकिये के सहारे ठुमककर बैठ गयी। बैठने वक्त काँच की चूड़ियाँ

फिर छनकी थी, शाहनी ने एक बार फिर उस की बाँहों को देखा, हरे काँच की चूड़ियों को और फिर स्वाभाविक ही अपनी बाँह में पड़े हुए सोने के चूड़े को देखने लगी

कमरे म एक चकाचौंध सी छा गयी थी। हरेक की आँखें जैसे एक ही तरफ उलट गयी थीं शाहनी की अपनी आँखें भी, पर उसे अपनी आँखों को छोड़कर सब की आँखों पर एक गुस्सा सा आ गया

वह फिर एक बार कहना चाहती थी —अरी बदशगुनी क्यों करती हो ? सेहरे गाओ ना पर उस की आवाज गले म घुटती सी गयी थी। शायद औरों की आवाज भी गले म घुट गयी थी। कमरे म एक खामोशी छा गयी थी। वह अधबीच रखी हुई ढोलक की तरफ देखने लगी, और उस का जी किया कि वह बड़ी जोर से ढोलक बजाये

खामोशी उस ने ही तोड़ी जिस के लिए खामोशी छायी थी। कहने लगी, मैं तो सब से पहले घोड़ी गाऊँगी लड़के का सगन करूँगी, क्यों शाहनी ?" और शाहनी की तरफ ताकती, हँसती हुई घोड़ी गाने लगी निक्की निक्की बूँदी निक्किया मीह वे वर तेरी माँ वे सुहागन तेरे सगन कर '

शाहनी को अचानक तसल्ली सी हुई—शायद इसलिए कि गीत के बीच की माँ वही थी और उस का मर्द भी सिर्फ उस का मर्द था—तभी तो माँ सुहागन थी

शाहनी हँसने से मुँह म उस के बिलकुल सामने बैठ गयी —जो उस वक्त उस के बेटे के सगन कर रही थी

घोड़ी खत्म हुई तो कमरे की बोलचाल फिर से लौट आयी। फिर कुछ स्वाभाविक सा हो गया। औरतों की तरफ से फरमाइश की गयी—'ढोलकी रोड़ेवाला गीत।' मर्दों की तरफ से फरमाइश की गयी—"मिरज़े दियाँ सद्दाँ।"

गानेवाली ने मर्दों की फरमाइश सुनी अनसुनी कर दी और ढोलकी को अपनी तरफ खींचकर उस ने ढोलकी से अपना घुटना जोड़ लिया। शाहनी कुछ रौ म आ गयी—शायद इसलिए कि गानेवाली मर्दों की फरमाइश पूरी करने के बजाय औरतों की फरमाइश पूरी करने लगी थी

मेहमान औरतों म से शायद कुछ एक का पता नहीं था। वह एक दूसरे से कुछ पूछ रही थीं, और कई उन के कान के पास कह रही थीं— 'यही है शाह की कजरी "

कहनेवालियों ने शायद बहुत धीरे से कहा था—खुसुरफुसुर सा, पर शाहनी के कान म आवाज पड़ रही थी, कानों से टकरा रही थी—शाह की कजरी शाह की कजरी और शाहनी के मुँह का रंग फिर फीका पड़ गया।

इतने म ढोलक की आवाज ऊँची हो गयी और साथ ही गानेवाली की

आवाज "सूहे वे चीरे वालिया मैं कहनी हाँ " और शाहनी का कलेजा थम सा गया — यह सूहे चीरेवाला मेरा ही वेटा है, सुख से आज घोडी पर चढनेवाला मेरा वेटा

फरमाइश का अत नही था। एक गीत खत्म होता, दूसरा गीत शुरू हो जाता। गानेवाली कभी औरतो की तरफ की फरमाइश पूरी करती, कभी मर्दों की। बीच-बीच मे कह देती, "कोई और भी गाओ ना, मुझे साँस दिला दो।" पर किस की हिम्मत थी, उस के सामने होने की, उस की टल्ली सी आवाज वह भी शायद कहने को कह रही थी, वैसे एक के पीछे झट दूसरा गीत छेड देती थी।

गीतो की बात और थी, पर जब उस ने मिरजे की हेक लगायी, "उठ नी साहिबा सुत्तीय ! उठ के दे दीदार ' हवा का कलेजा हिल गया। कमरे म बठे मर्द बुत बन गये थे। शाहनी को फिर घबराहट सी हुई, उस ने बडे गौर से शाह के मुह की तरफ देखा। शाह भी और बुता सरीखा बुत बना हुआ था, पर शाहनी को लगा वह पत्थर का हो गया था

शाहनी के कलेजे मे होल सा हुआ, और उसे लगा अगर यह घडी छिन गयी तो वह आप भी हमेशा के लिए बुत बन जायेगी वह कर, कुछ करे, कुछ भी करे, पर मिट्टी का बुत ना बने

काफी शाम हो गयी, महफिल खत्म होनेवाली थी

शाहनी का कहना था, आज वह उसी तरह बताशे बाटेगी, जिस तरह लोग उस दिन बाटते हैं जिस दिन गीत बठाये जाते हैं। पर जब गाना खत्म हुआ तो कमरे मे चाय और कई तरह की मिठाई आ गयी

और शाहनी ने मुट्ठी मे लपेटा हुआ सौ का नोट निकालकर, अपने बेटे के सिर पर से वारा और फिर उसे पकडा दिया, जिस लोग शाह की कजरी कहते थे।

"रहने दे, शाहनी। आगे भी तेरा ही खाती हू।" उस ने जवाब दिया और हँस पडी। उस की हँसी उस के रूप की तरह झिलमिल कर रही थी।

शाहनी के मुह का रग हलका पड गया। उसे लगा, जैसे शाह की कजरी ने आज भरी सभा म शाह स अपना सम्बन्ध जोडकर उस की हतक कर दी थी। पर शाहनी न अपनाआप थाम लिया। एक जेरासा किया कि आज उस ने हार नही खानी थी। और वह जोर से हँस पडी। नोट पकडाती हुई कहने लगी, "शाह से तू न नित लेना है, पर मेरे हाथ से तू ने फिर कब लेना है ? चल, आज ले ले "

और शाह की कजरी, सौ के नोट को पकडती हुई, एक हा बार मे हीनी सी हो गयी

कमरे मे शाहनी की साडी का सगुनवाला गुलाबी रग फल गया

दो खिडकियाँ

इमारतो जैसी इमारत थी, पाँच मजिलोवाली । जैसी और, वैसी वह । और जैसे औरो में पन्द्रह पन्द्रह घर थे, वैसे ही, उस मे भी । बाहर से कुछ भी भिन्न नही था, सिर्फ अन्दर से

"यह जो एक-सा दिखते हुए भी एक-सा नही होता, यह " डाका इस 'यह' के आगे की खाली जगह को देखने लगती

'खाली जगह का क्या होता है, उसे जब तक चाहे देखते रहो पर जो *खाली दिखता है, क्या सचमुच ही खाली होता है " और डाका का लगता* जैसे ऐसी बहुत-सी बातें थी जिन के शब्द उस के पास रह गये थे और अब उस खाली जगह चले गये थे

आज भी डाका अपने बडे कमरे की एक एक चीज़ को देखती हुई शब्दों को ढूंढने लगी, "न सही अर्थ, शब्द ही सही, पर वे भी कहाँ हैं ?"

डाका के बडे कमरे में दो खिडकियाँ थी । आगेवाली खिडकी की तरफ बडी सडक थी वहाँ बडी रात तक लोग आते जाते रहते थे। पर पीछे की खिडकी की तरफ एक जगल था, जिस के पेड कही आते जाते नही थे । और डाका दोनो खिडकियो को देखने-देखते रो-सी पडती, "लगता है, शब्द आगे-वाली खिडकी मे से निकलकर बाहर बडी सडक पर चले गये हैं, और अब पीछे की खिडकी म से निकलकर बाहर जगल म चले गये हैं "

और उन दोनो खिडकियो के बीच जो जगह थी, डाका को लगा—वह दो देशो की सरहदो के बीच छोडी गयी थोडी सी जगह थी, जहाँ वह कई वर्षों से खडी थी । बडी अकेली थी, पर वर्षों से वही खडी थी । उसे खयाल आया कि वह कभी इधर की या उधर की सरहद पार कर किसी एक तरफ क्या नही चली गयी थी ? पर उसे लगा—उस के पाँव जैसे वर्षों से हिलते नही थे । और वह हमेशा वही की वही खडी रही थी ।

आगे की खिडकी मे से बडा शोर आता था—लोगो के पाँव, ट्रामों के

पहिये—जैसे शब्दो का खडाक होता है—पर पीछे की खिडकी म से कोई खडाक नही आता था—जैसे अर्थों का कोई खडाक नही होता, और व सिफ पेडो के पत्तो की तरह चुपचाप उग आते हैं, और चुपचाप झड जात हैं।

कमरे म चीजें भी वैसी ही थी जैसी वह आप। एक गहरी लाल मखमल का, शाही किस्म का दीवान था, जिस के ऊँचे बाजुओ पर सान के रग का पत्तर चढा हुआ था। एक तरफ काली और चमकती हुई लकडी का मेज था, जिस पर नक्काशी का काम किया हुआ था। एक तरफ अलमारी थी, जिस म लम्बी गरदनोवाली काँच की सुराहियाँ थी, नीले फूलो से चिन्नित प्लेटें थी और चाँदी के काँटे और चाँदी के चम्मच थ। तीनो दीवारा पर आयल प ट की तीन बडी तस्वीरें थी जिन क बड बडे चौखटे सोन के रग क पत्तरा स मढे हुए थे। और इस बडे कमर के दूसरे कोन म खाना खान के लिए एक बहुत बडी मेज थी, जिस के गिर्द मखमल की बडी ऊची पीठवाली, आठ कुर्सियाँ थी। इसी बड कमरे म स एक दरवाजा एक छोटे कमरे म खुलता था, जिस मे एक पलग था जिस पर रशम की एक बहुत बडी चादर बिछी हुई थी। उस के दानो तरफ रखी हुइ पीतल की तिपाइयो पर मीनाकारी की हुई थी। इसी कमरे की एक दीवार के साथ किताबो की अलमारी थी, जिस क खाना म बडी महँगी जिल्दोवाली किताब चुनी हुई थी।

इस सब कुछ की उमर भी डाँका जितनी थी—क्योकि डाका के बाप न बताया था कि उस न यह सब डाँका क ज म पर खरीदा था। और अब जस डाका की जवानी ढल गयी थी, इन चीजो की चमक-दमक भी ढल गयी थी—सोन के रग क पत्तर बुझ गय थे, मखमल फीका पड गया था।

य चीजें भी डाका की तरह बडी अकेली थी—वह मेज पर खाना खान बठती तो आठ म से सात कुरसियाँ खाली रह जाती। नीले फलोवाली प्लेटा म स सिफ एक पानी से धुलती। चाँदी की चम्मचा म स सिफ एक चम्मच इस्तेमाल होता। और रशमी चादरवाले बड पलग का सिफ एक कोना किसी जि आदमी की साँसें सुनता।

आज पीछे की खिडकी म खड खडे डाका को वह वक्त याद आ गया—जब ये सब की सब चीजें कही अलोप हो गयी थी। उसे उस की मा का, और उस के बाप का बागियो न आधी रात को उन के घर से निकाल दिया था, घर और घर की एक एक चीज छीन ली थी। फिर उन तीनो को एक कैम्प म रखा गया था, जहाँ से व एक दिन उस के बाप का वहा ल गय थे जहाँ से वह कभी वापस नही आया था। और मा पगलायी सी मास की एक गठरी बन गयी थी। तब डाँका—एक कुआरी कन्या

उस का कौमाय डाँका को लगा, एक मद ने नही राजनीति की एक

घटना न भंग किया था राज्य बदला और राज्य का प्रबन्ध बदला। किसी का किसी चीज पर कोई हक नहीं रह गया था। किसी का किसी तरह के एतराज पर कोई अधिकार नहीं रह गया था। काम भी वही करना होता था, जिस का हुक्म मिले, सोचना भी वही होता था जिस का फरमान हो। डॉका को उस के बाप ने तीन जुबानों की तालीम दी थी—एक अपने देश की जुबान, एक फ्रेंच और एक जरमन। इतनी तालीम किसी बिरले के पास थी, इसलिए नयी राजनीति को उस की जरूरत थी। और डॉका ने जब उन जुबानों में वही लिखना शुरू किया, जिस का उसे हुक्म मिला था, तो उसे लगा जैसे सरकारी हुक्म ने एक उचक्के मर्द की तरह उस का कौमार्य भंग कर दिया था।

बाप क़त्ल हुआ था, पर डॉका ने क़त्ल होते अपनी आँखों से नहीं देखा था। माँ जिस तरह से जी रही थी, उसे तब आँखों से देखना ऐसे था जैसे कोई रोज किसी का तिल तिल क़त्ल होते देखे। माँ चारों तरफ देखा करती थी पर पहचानती कुछ नहीं थी। कभी डॉका का हाथ पकड़कर दूर तक देखते हुए पूछा करती "हम कहाँ आ गये हैं? हमारा शहर कहाँ गया? यह किस का घर है?" तो डॉका रोने रोने को हो उठती थी

और जब कुछ शांति सी हुई थी, डॉका को रहने के लिए यह घर मिला था तब डॉका को एक खयाल आया था—उस ने ऊँची पदवी के अधिकारियों की मिन्नत की थी कि वह पहले से भी ज्यादा उन के हुक्म में रहेगी सिर्फ अगर कभी उस की खिदमतों के बदले में उसे कुछ वह सामान लौटा दिया जाये जो कभी उस के बाप के वक्त घर में हुआ करता था।

डॉका की यह दरख्वास्त मंजूर हो गयी थी और डॉका के इस खयाल ने सचमुच ही उस की मदद की थी—माँ की आँखों में कुछ पहचान लौट आयी थी। कई बार वह उठकर मेजों और कुरसियों को छू छूकर देखने लगती थी। और फिर उस ने यह पूछना छोड़ दिया था कि यह किस का घर है।

सो डॉका के घर में कुछ वही चीजें थीं, जो एक दिन अलोप भी हुई थीं और प्रकट भी।

'पर' डॉका सोचा करती, 'जो कुछ खयालों और सपनों में से अलोप हो गया है, वह? ' और डॉका उस 'वह' के आगे की खाली जगह को कितनी कितनी देर घूरती रहती

(2)

डॉका ने मेज की एक दराज खोली। इस दराज में वह कुछ सिगरेट रखा करती थी जो उन बोझिल पलों में पिया करती थी—जब उस के प्राण सिगरेट के धुएँ की तरह, एक धुआँ सा बन हवा में घुल जाना चाहते थे

उसे वह दिन भी याद था, जब उस ने पहला सिगरेट पिया था। एक दिन माँ पलग की रेशमी चादर को पलग पर बिछा रही थी कि उसे अचानक याद हो आया था, "डांका ! यह चादर तुम्हारे पिता चीन से खरीद कर लाये थे। देखो, मैं ने इसे कितना सँभालकर रखा है !"

जवाब मे डांका की आवाज काँप गयी थी, उसे खौफ-सा हुआ था कि अभी माँ का अपने मद की याद आ जायगी और फिर वह बैठी बैठी रोने लगेगी। पहले भी कई बार उसे बैठे-बठे कुछ हो जाया करता था, पर गनीमत यह थी कि उस की माँ का यह नही पता था कि उस के मद का कत्ल हो चुका है। उस के अचानक गुम हो जाने के सदम न उस के होश कुछ इस तरह छीन लिय थे कि उस ने खुद ही सोचा और खुद ही विश्वास बना लिया कि उस का मर्द किसी दूर दश म तिजारत करने के लिए चला गया, पर उस दिन डांका को लगा—माँ के हाश लौट रहे थे, घर की चीजो ने उस की कुछ पहचान लौटा दी थी, और अगर उसे कैम्प के दिनोवाली लोगो की खुसुरफुसुर याद हो आयी

डांका ने उस का ध्यान चीजो मे ही लगाये रखने के लिए जल्दी से पूछा था 'माँ, यह इतना खूबसूरत पलग कहाँ से बनवाया था ?"

तुम्हारे पिता एक तसवीरावाली किताब लाये थे। मालूम नही, कहाँ से ! उस म इस पलग का नमूना था

कुरसियो का नमूना भी उस मे था ?'

'हा, कुरसिया का भी ऐसी रगीली तसवीरें थी, जस कुरसियो पर सचमुच ही मखमल लगी हुई हो '

और माँ, ऐसी प्लेटें भी तो किसी और के पास नही "

य तो वह फ्रास से लाय थे दखो मैं ने इन म से एक भी नही टूटने दी, अभी तक पूरी बारह हैं, गिनो तो भला '

डांका चाहती कि माँ का ध्यान कही लगा रहे, भले ही प्लेटें और चम्मच गिनने म ही। पर उसे इस मे भी कठिनाई सी अनुभव होती थी जब माँ को कुछ और ऐसी ही चीजें याद आ जाती थी, जो अब वहाँ नही थी। एक दिन ता माँ ने मोतिया की एक कघी के लिए सारा दिन मुसीबत किय रखी थी—एक एक चीज को खोलती और रखती वह कघी को ऐसे ढूढ रही थी जैसे सुबह वह खुद ही कही रखकर भूल गयी हो।

पर उस दिन माँ को किसी और चीज की याद नही आयी थी। डांका कुछ आश्वस्त हो चली थी कि अचानक माँ ने मेज की एक दराज खोलते हुए पूछा था, 'अरी, डांका, तुम्हार पिता का यहा खत पडा हुआ था, कहाँ गया ?

"खत डाका चौंक उठी।

कल तुम्हारे पिता का खत आया था कि अब वह बडी जल्दी आ जायगा,

मैं ने कल तुम्हें बताया नही था ?"

"नही।"

"फिर खुशी मे भूल गयी हूँगी ? मैं ने यहाँ मेज की दराज मे रखा था "

डांका को लगा—जैसे माँ को रात कोई सपना आया हो।

'बोलती क्यो नही ? तुम ने लिया है खत ?" माँ पूछ रही थी, पर डांका से कुछ नही बोला जा रहा था।

माँ फिर खुद ही पूछ रही थी, 'पेरिस से आया था न ?' और खुद ही दलीलो मे पडकर कह रही थी, "वहाँ से वह कही इटली ना चला जाय, अगर इटली चला गया "

"इटली ' डांका ने माँ का ध्यान दूसरी तरफ लगाने के लिए धीरे स कहा, माँ, तुम कभी इटली गयी हो

' नही, पर मुझे यह पता है कि इटली गया मर्द जल्दी नही लौटता। कई तो लौटते ही नहीं। क्या पता, तुम्हारे पिता भी " और माँ कुछ ऐसी दलीलो मे पड गयी थी कि वह खडी नही रह सकी थी। वह पलग की एक बाँही पर गुम सुम सी बैठ गयी थी।

डांका क लिए माँ की यह हालत भी बुरी थी, जब वह पत्थर-सी हो जाया करती थी। उस न माँ का एक असीम चुप्पी से बचाने के लिए पूछा, पर, माँ, लोग इटली जाकर लौटते क्यो नही ?"

माँ कितनी ही देर उस के मुह की तरफ दखती रही, फिर हँस सी पडी, "मर्द किसी देश भी जाय, उस की औरत डरती नही, पर अगर इटली जाय तो औरत का उस का भरोसा नही रहता "

"पर क्यो ?' डांका भी हँस सी पडी थी।

'तुम तो पगली हो," माँ का यह बात बताने म शर्म-सी आ रही थी, पर फिर वह सकोच स कहने लगी थी, "इटली की औरतें मर्दों पर जादू कर देती हैं "

और फिर माँ ने एक गहरी साँस लेकर कहा था, "हाय र ! वह कही इटली न चला जाये ! फिर मैं उमर भर यहाँ इ तजार करती रहूँगी वह नही आयगा "

उस दिन अकेले बैठकर डांका ने जि दगी म पहला सिगरेट पिया था

(3)

"सिगरेट का इतिहास कौन लिखेगा ?" डांका को एक खयाल सा आया, 'देखने को लगता है कि सिगरेट का इतिहास उस के नाम मे होता है। अलग अलग नाम मे, अलग-अलग ब्राण्ड मे—किसी का इतिहास पचीस वर्ष का किसी का

पचास वर्ष का – फिल्मों में जब किसी का इश्तिहार रहता है, उस का इतिहास ऐसे ही बताया जाता है—पर यह सिगरेट का इतिहास कैसे हुआ ? यह तो उस कम्पनी विशेष का इतिहास हुआ ...''

डॉका ने हाथवाले सिगरेट की आखिरी आग से एक और सिगरेट सुलगाया और सोचने लगी, 'एक बार मेरे पिता ने मुझे खुद बताया था कि उस ने पहला सिगरेट अपनी पहली कमाई के जश्न के मौके पर पिया था। उस दिन वह बहुत खुश था। पढ़ाई के दिनों में उसने इस तरह से संयम रखा था और मन से इकरार कर लिया था कि जब तक वह अपनी हथेली पर अपनी कमाई के पैसे नहीं रखेगा तब तक वह सुख की कोई चीज़ नहीं खरीदेगा ... सो उस के लिए यह सुख की निशानी थी ...'

डाका के सिर को एक चक्कर सा आया—शायद इसलिए कि उस ने सुबह से कुछ नहीं खाया था। रविवार था, काम पर नहीं जाना था, इसलिए कुछ भी बनाने का उपक्रम नहीं किया था। कॉफी की जगह उसने सिगरेट पी थी, रोटी और पनीर के टुकड़े की जगह भी सिगरेट, और सिगरेट की जगह भी सिगरेट।

और डॉका को खयाल आया कि एक बार उस ने खलील जिब्रान की एक किताब में पढ़ा था, खलील के अपने हाथों का लिखा हुआ खत, कि उस ने एक दिन में दस लाख सिगरेट पिये थे ...

डाका फिर ख्यालों में डूब गयी—सिगरेट का असली इतिहास यह होता है कि किसी को किस वक्त सिगरेट की तलब महसूस होती है ...

और डाका को पहाड़ी पर का वह गिरजा याद हो आया —जिस में पत्थरों की कुछ कन्दराएँ बनी हुई थीं। कहते हैं कि दो वर्ष पहले जब यहाँ तुर्कों का राज्य स्थापित हुआ था, लोगों पर बड़े जुल्म हुए थे। तब कुछ विद्वान इन कन्दराओं में चले गये थे और तुर्कों की नज़र से छिपकर समय का इतिहास लिखते रहे थे ... जंगलों के कन्दमूल और तम्बाकू के पत्ते खाकर वे गुजारा करते और इतिहास लिखते ...

डॉका के मन में, पहाड़ों की कन्दराओं में बैठकर इतिहास लिखनेवालों के चेहरे, और खलील जिब्रान का उस की तस्वीरों में देखा हुआ चेहरा गड्डमड्ड-से हो गये। सोचने लगी—तो यह भी सिगरेट का इतिहास है—किसी रचना की ज़रूरत के वक्त ...

फिर एक और याद उसके बदन में झुरझुरी सी पैदा कर गयी। यह कोमारक की याद थी। उसके अन्दर भूख की एक लहर दौड़ गयी—'एक जिस्म को रोटी की भूख भी लगती है और दूसरे जिस्म की भी ...''

डाका ने सिगरेट का लम्बा कश लिया, और आँखें मीच ली। हाथ बढ़े

उम के होठों के पास सो सा गया। सिगरट के साथ इकट्ठी होती रही राख जब झडकर उस के मुह पर गिरी तो उस की तपिश से वह चौंक उठी।

"कम्बख्त न जान कहा होगा ' ' डॉका के मन म कुछ हुआ तो उसे लगा—उस के कमरे की दोनो खिड़कियाँ अचानक बन्द हो गयी थी। और हर न द जो आग की खिड़की म से बाहर चला गया था, हमेशा क लिए बाहर रह गया था। और हर अथ जो पीछे की खिड़की म से बाहर चला गया था, हमेशा के लिए बाहर रह गया था

कमरे म सिगरट जलता रहा डॉका सुलगती रही

"सिगरट का इतिहास " डॉका की आँखो के आगे धु ध सी छा गयी—शायद सिगरट का धुआँ।

"यह पल यह घडी इस जस कई पल, कई घड़ियाँ य भी सिगरेट का इतिहास है वगर इन के लिए शब्द भी कोई नही, और अथ भी कोई नही " डॉका ने पोरो म थामे हुए सिगरेट के आखिरी टुकडे को वही पर फेंक दिया।

वह ख़ुद बुझे हुए सिगरेट की तरह वही निढाल हो गयी जहाँ बठी हुई थी।

"डॉका, तुम्ह मरी कसम, अपना ध्यान रखना। बोलो, रखोगी?'

"रखूगी।'

'यह मैं तुम्ह अमानत दे रहा हूँ।

'अमानत ?

'यह, मरी डॉका मरी अमानत।"

डॉका बुझी हुई भी सुलग उठी। उस के कानो म कोमारक की आवाज भर रही थी

'कोमारक कहाँ है ? कही भी नही ' डॉका का मन व्याकुल हो उठा, "यहाँ सिफ मैं रह गयी हू और उस की आवाज '

डॉका को एक बेचनी भी महसूस हुई, एक चन सा भी मिला, 'अगर व्यतीत की कुछ आवाजें भी आदमी के पास न रहती, आदमी का क्या बनता

साथ ही डॉका को अपना इकरार याद हो आया कि वह कोमारक की अमानत थी, और उसे अमानत का ध्यान रखना था। उस ने उठकर कॉफी का प्याला बनाया, पनीर का एक टुकडा प्लेट मे रखा, और जब खान लगी, उसे याद हो आया—कोमारक की जो नज्म कभी जलसो मे बडे जोश के साथ सुनी जाती थी, वह नज्म लिखते वक्त उस ने कोई एक सौ सिगरेट पिये थे। कोमारक घर म भी कभी कभी वह नज्म बडे मन से पढ़ा करता था—

'मैं शहीदो की कब्र पर जाकर
इक छुरी तेज कर रहा हू—

इक छुरी के दम से, इक बगावत आयेगी
औ' उन के लहू का बदला चुकायगी "

और डांका हँसा करती थी, "एक नज़्म लिखते हुए तुम न एक सौ सिगरेट पिये हैं, अभी तो तुम छुरी को तेज़ ही कर रहे हो, जब इस से बगावत लाओगे तब कितनी सिगरेट पीओगे ?'

पुरानी हँसी मे से डांका को नयी रुलायी आ गयी, "इन सिगरेटों का इतिहास कौन लिखेगा ? ये जा कोमारक ने इस नज़्म को लिखते वक्त पिये थे ?"

डाका ने कॉफी का आखिरी घूट भरा और फिर एक सिगरेट पीते हुए खयालो म डूब गयी —"इस नज़्म का इतिहास भी कौन जानता है ? उस ने न जाने किस के लिए लिखी थी लोगो ने किस के लिए समझी "

"लोग जब इस नज़्म पर तालिया बजाते है, मै कुछ हैरान हो जाता हूँ," कोमारक कहा करता था।

"वे समझते हैं, यह जो बगावत है यह नज़्म उस का इतिहास है," डांका उसे जवाब दिया करती थी।

'यही ता मुश्किल है यह जो कच्ची पक्की सी बगावत आयी , इस से क्या बदला है ? हुक्म नही बदले, सिर्फ हाकिमो के मुह बदल हैं," कोमारक की आवाज कुछ ऊँची हा जाया करती थी।

डांका उस की आवाज़ को अपन होठा से ढक दिया करती थी, "खुदा का वास्ता है यह बात किसी और के आगे न कहना।"

मुझे कुछ भी कहने मे विश्वास नही सिर्फ करने म विश्वास है," कोमारक हँस पडा करता था।

"पर तुम्हारे मेरे किये क्या हाता है" डांका उदास-सी हो जाया करती थी।

'तुम्ह एक बात बताऊँ ?' एक दिन कोमारक न अचानक ऐसे कहा था कि डांका बिलकुल ही नही जान सकी थी कि वह कौन सी बात कहन लगा था, जिस का पहले उसे पता नही था।

'क्या ?'

"वह मेरी नज़्म है न

"कौन सी ? मरे हुओ की कब्र पर छुरी तेज़ करनेवाली कि कोई और ?'

"वही।'

हाँ।"

"यह बडी देर से मरे मन मे थी, तब स जब इस पिछली बगावत का चेहरा कुछ निखर रहा था "

"सो यह नज़्म इसी की देन है ?"

"जब इस की कल्पना की थी, तब इसी की थी, पर जब लिखी तो इस की न रही।"

"किस तरह ?"

"इसलिए कि यह बगावत अपने ही कहे पर कायम न रही। जो हथियार इस की हिफाजत के लिए पकडा था, वही फिर इस से बचने के लिए पकडना पड गया डाका !"

"हाँ।'

"तुम्हारे पिता एक अमीर ताजर थे न ?'

"हाँ।'

'इस बगावत ने उसे इसलिए मरवाया कि धरती पर गढ्हे और टीले न रहे, पर बाद मे अगर नय गढ्हे और टीले ही बनाने थे "

डाका ने जहाँ तक अपने बाप को देखा था, एक रहमदिल इनसान ही पाया था। सोचा करती थी शायद उस जैसी जगहवाले बाकी लोग उस जसे न होते हा, पर जो था, उस के लिए यह सज़ा क्यों थी ?

जवाब कही से भी नहा मिला था, इसलिए उसे अक्सर चुप रह जाने की आदत पड गयी थी।

'क्या डाका ?" कोमारक के मन म जो कुछ था, उस दिन उस के मन म समा नही रहा था।

'तुम्ह पता है, मैं कभी गिरजे म क्यो नही जाती ? माँ कई बार जान की जिद्द करती है, पर मै टाल जाती हू।' डाका कुछ कहन कहने को हो उठी थी। कहने लगी, 'वहाँ के लोगा के उदास चेहरे मुझ से देखे नहीं जात। शायद वहाँ एक ऐसी जगह है जो लोगो की उदासी का पनाह देती ह—या लोग ही उस से तसल्ली का भ्रम लेने जात हैं—जान से कुछ नही सँवरता, पर जात है—कोमारक !"

'हाँ।"

'असल मे कत्ल तो उन की उदासी को करना था " डाका के य शब्द उस के मुह मे हो थे कि कोमारक न उसे बाहो म भर उस के शब्द चूम लिये थे। डाका की आँखो मे पानी भर आया था। उस ने सहमकर कोमारक के चेहरे की तरफ दखा था, जैसे भरी दुनिया म उसे मुश्किल से इस जैसा एक ही चेहरा मिला हो, और उसे विश्वास न हो रहा हो कि यह चेहरा उसे सदा दिखायी दता रहेगा।

आज डाँका को कोमारक याद आया तो इस तरह याद आया, जिस तरह उसे याद करने से वह मुद्दत से डर रही थी, और आज उस डर की मियाद खत्म हो गयी थी।

कोमारक को गये हुए पांच वर्ष हो गये थे, डाका उसे जी भरकर याद करने का मौका बड़े यत्नों से टालती रही थी। जानती थी—वह इस तरह याद आया तो जिंदगी का एक दिन भी उस से उस के बिना गुज़ारा नहीं जा सकेगा। पर दिन तो गुजारने ही थे, यह कोमारक की नसीहत भी थी, और ज़िन्दगी का दिलासा भी।

जब कोमारक का उम्र ने खुद अपने हाथों विदा किया था, डाका के हाथ बेहद मजबूर थे

यह भी ज़िन्दगी का रहम था—वह ज़िन्दगी में मिल गया, तीन साल मैंने उस के साथ गुज़ार लिये डाका को अपनी उमर के सारे वर्ष इस तरह याद आये, जैसे उस ने रेत के किनारे पर बैठकर कुछ खाली सीपियां बटोरी हों। और कोमारक से मिलन इस तरह जैसे एक दिन अचानक एक सीपी में से मोती निकल आया हो

उन की मुलाकात एक सरकारी दफ्तर में हुई थी—एक गहरी और लम्बी चुप में से। देखने को तो डाका उसे रोज़ देखा करती थी, पर चेहरों की पहचान तो मिलाप नहीं होती

एक दिन डाँका दफ्तर में बड़ी उदास थी। जो लिख रही थी उस से नहीं लिखा जा रहा था। और दफ्तर में ही उस की आखें भर भर आयी थीं। कोमारक ने उसे बीमार समझा था हाल पूछा था पर डाका जब तेज़ सिर दर्द कहकर दफ्तर से छुट्टी लेकर घर लौटी थी, कोमारक उसे घर तक छोड़ने आया था। घर आकर डाका ने उस के और अपने लिए काफी बनायी थी। किसी पर विश्वास करने की डाका को आदत नहीं थी, पर उस दिन काफी पीते हुए कोमारक के सामने उस के मुंह से निकल गया, 'रोज़ इतना कुफ़ नहीं तोला जाता, हिम्मत नहीं रह गयी'

और डाँका की आखों में फिर पानी भर आया था लोग सांस रोके जी रहे हैं, मैं रोज़ उन की खुशी के इश्तिहार लिखती हूँ। यह सब कुछ किस लिए करती हूं इसी लिए न कि ज़िन्दा रह सकूं'

यही विश्वास एक जड़ था जिस में से डाँका और कोमारक की दोस्ती उगी थी। और फिर कुछ महीनों के बाद उन्होंने विवाह कर के अपने खयाल भी एक कर लिये थे, और सपने भी।

माँ के चेहरे पर एक रौनक सी लौट आयी थी। सिर्फ एक दिन उस ने कहा था, "डांका, तुम इटली अपने पिता को खत लिख देती तो तुम्हारा खत पढ़कर वह जरूर आ जाते। तुम उन के आने पर विवाह करती तो अच्छा था " पर फिर कभी उस ने कुछ नही कहा था।

कोमारक ने ही एक बार माँ के चेहरे की तरफ देखकर, डांका से अकेले में कहा था "डांका, यह जो नज्म है न – कब्रों पर छुरी को तेज करनेवाली, तुम्हें पता है वे कौन सी कब्रें हैं ?'

'शहीदो की।' डांका ने जवाब दिया था।

"हाँ शहीदो की, पर इस शब्द के बड़े अर्थ होते है "

'किस तरह ?'

'ये उन मासूम लोगों की कब्रें भी हैं जिन के खाहमख्वाह कत्ल होते हैं— जैसे तुम्हारे बाप की कब्र—और ये उन उदासियों की कब्रें भी है, जिन में मरे हुए नही, जिन्दा लोग रहते हैं जैसे माँ

उस दिन कोमारक की छाती से सिर सटा डांका बहुत रोयी थी।

डांका और कोमारक का रिश्ता एक विश्वास की जड़ में से उगा था। और इस के साथ बेशुमार आँसू थे जो शायद इस पौधे को पानी देने के लिए बने थे। डांका को यह याद आया कि वह अपने विवाह की पहली रात भी रोयी थी

यह वह रात थी—जब एक पूरी औरत एक पूरे मर्द से मिलती है – और उस रात डांका ने कोमारक को बताया था, "दफ्तर में जब भी बहुत झूठे खत लिखती हूँ, घर आकर लगता है, जैसे पराये मर्द के साथ सोकर आयी हूँ। सारा जिस्म गलीज लगता है 'और डांका की आँखों में पानी भर आया था, 'सिर्फ आज पहली बार देखा है कि जिस्म पवित्र कैसे होता है।"

उस रात कोमारक की बाँह डांका के गिर्द से खुलती नही थी। बार बार कहता था तुम इतनी पाकीजा हो कि सोचता हूँ तुम्हे कहाँ छिपाऊँ।'

फिर साल गुजर गया, दो गुजर गये, तीसरा भी गुजरने को हो आया। डांका औरत थी, उस ने एक मर्द को पाकर अपनी सारी दुनिया उस तक समेट ली। पर कोमारक मर्द था, उस के लिए दुनिया के अर्थों का बड़ा विस्तार था। इर्द गिर्द जो कुछ भी बदला था, सिर्फ शब्दो में बदला था अर्थ वही थे जो एक हुकूमत के हुआ करते हैं। और नयी हुकूमत के और भी सख्त हुआ करते हैं। कोमारक इन वर्षों में जो कुछ भी देख रहा था, उस बारे में किसी से कुछ नही कहता रहा था, पर अपनी नज्मो को बताता रहा था – शायद चुप की कब्र पर वह कुछ तेज करता रहा था।

और फिर अचानक खबर मिली कि कोमारक की जान खतरे में थी

शायद एक रात था भी भराता नहीं था। सिर्फ एक ही रास्ता था कि कोमारक रात रात में ही देश में से निकल जाय, सरहद पार कर जाये

डॉका सारी-की-सारी उस में समा जाना चाहती थी। उस ने कोमारक को जाने के लिए तैयार किया था, पर उस की छाती से अलग किये अलग नहीं हो रही थी

पीछे माँ थी, माँ को कहीं भी अकेला नहीं छोड़ा जा सकता था। नहीं तो एक बार तो डॉका अनहोनी सोच गयी थी

'अगर वही अनहोनी हो जाती—" डॉका की छाती में उबाल आया, 'माँ तो बाद में एक साल भी जिन्दा नहीं रहती, वही जिन्दा रहती—यहाँ बस मैं रह गयी और ये दीवारें"

और डॉका के लिए माँ का दुख भी ताजा हो आया—कोमारक ने जाते वक्त माँ से प्यार लिया। बताया कि उसे दूसरे देश में कुछ काम पड़ गया है इसलिए वह अरसे बाद लौटेगा और माँ ने उसे ताकीद की थी कि वह चाहे जिस देश जाय, पर इटली नहीं"

आज डॉका की आँखों में जैसे माँ के आँसू भर आये, "माँ जितनी देर जिन्दा रही, कहती रही—डॉका! उस का कोई खत आया? नहीं आया? वह जरूर इटली चला गया होगा"

खत डॉका ने यह शब्द जहर के घूट की तरह पी लिया—उसे सिर्फ एक खत का पता था जो उस ने एक बार आँखों से देखा था। उसे पुलिस के महकमे में बुलाकर उस के नाम से आया हुआ कोमारक का खत उसे दिखाया गया था। उस में सिर्फ इतनी भर खबर थी कि वह जिन्दा फ्रांस पहुंच गया था। तब से डॉका का पुलिस से वास्ता पड़ा हुआ था, उसी रात से, जिस रात कोमारक घर से गया था। उस के जाने और पुलिस के आने में कुछ घण्टों का फासला रहा था। कई महीने तो उसे यही चिन्ता रही थी कि वह जिन्दा भी था कि नहीं। फिर पुलिस ने उस का खत दिखाकर बेशक उसे कई हिदायतें दी थीं कि अगर फिर कभी उस का खत आया और उस ने खत का जवाब दिया तो अपनी जान की वह खुद जिम्मेदार होगी, पर डॉका की एक चिन्ता दूर हो गयी थी, और उस घड़ी वही तसल्ली उस के लिए काफी थी कि कोमारक जिन्दा था

डॉका ने कभी उस के खत का इन्तजार नहीं किया था। उसे मालूम था कि कभी कोई खत उस तक नहीं पहुँचेगा। पर वह साल बिताती जा रही थी। ये साल चुप थे, व्यर्थ थे और डॉका को लग रहा था कि इन के शब्द आगे की खिड़की में से बाहर चले गये थे और इन के अर्थ पीछेवाली खिड़की में से बाहर गिर पड़े थे—पर पर

और ढॉका 'पर' के आगे पडी हुई खाली जगह पर जैसे खुद खडी हो गयी, "कोमारव ! मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगी, तब तक इंतजार करूँगी, जब तक तुम सब ग्रन्थो पर जाकर अपनी छुरी तेज नही कर लेते।"

ढॉका को लगा—इन बेशुमार ग्रन्थों म एक ग्रन्थ उस के इंतजार के सालों की भी थी

और ढॉका ने उठकर एक आशा से कमरे की दोनो खिडकियाँ खोल दी —एक शब्दों के लौट आने के लिए और एक अर्थों के पलट आने के लिए। पता नही कब—पर कभी

8963

एक शहर की मौत

अपनी बात करने से पहले पामपई की बात करूँगी। पामपेई नेपल्ज़ के पास इटली का एक प्राचीन शहर था। इस से भी पहले यह समुद्री किनारे का शहर ईसापूर्व आठवी शताब्दी मे यूनान के समुद्री जहाजो का व दरगाह हुआ करता था। 310 ई पू म एक रोमन जहाज यहा आया था, पर पामपइ न उसे तट से लौटा दिया था। पर आखिर यह शहर जीत लिया गया था, और 80 ई पू. म यह रोमन कालोनी बन गया था।

फिर इस न रोमन जबान रोमन कानून और रोमन वास्तुकला अपना ली। कारोबारी जगह के साथ साथ यह आरामगाह भी था। इस की आबादी बीस या बाईस हज़ार थी।

फरवरी 63 म यहा एक भयानक भूचाल आया। बहुत कुछ टूटकर ढेरी हो गया। पर इस का निर्माण फिर शुरू हो गया।

निर्माण जारी था कि 24 अगस्त 79 का यहा लावा फूट पड़ा। और हू.मा शहर आग की गरम राख के नीचे ढँप गया।

यह गरम राख मेह की तरह बरसी थी - धरती से छह फुट ऊची इस की तह जम गयी थी। और इस के लोग जहा बठे या खड थ वैसे क वैसे उस गरम राख मे दब गये थे।

और इस तरह सारा शहर गरम राख और कुदरती धूल की बारह फुट ऊँची तह के नीचे ढक गया। और कई सदियो तक ढका रहा।

सोलहवी सदी म एक नहर निकालते हुए कुछ इमारतो के निशान मिले। और नपलज के बादशाह ने मार्च 1748 मे बाकायदा खुदाई शुरू करवायी। और 1763 मे शिलाओ की लिखाई से पता लगा कि वह पामपेई के खँडहर हैं।

पहली चीज जो मिली इस के बुत थे। फिर 1860 म इस म से मरे हुए लोगो के निशान मिले। राख मे गडे जहाँ-जहा भी थ, वहाँ प्लास्टर आफ परिस

डालकर ठीक वही रूपरेखा खोजी – जैसे लोग खड हुए, बठे, या भागत उस राख म गड गय थे।

और इसी तरह खाजा कि उम शहर के घर किस तरह के हुआ करते थे, पीढे, पलग और पालन कस हुआ करत थ। हाउस आफ सिलवर वडिंग हाउस ऑफ गोल्डन क्यूपिड और कहते हैं मूर्ति कला यानी बुतकारी और वास्तु कला मे यह एक वडा अमीर शहर था

मैं भी थी पामपई की तरह

पूर प द्रह बरस मैं अपनी चुप और ल दन की धु ध म लिपटी रही। रोज सवेरे उठकर मिस सिंह का जामा पहन लनी थी, और ईलिंग के एक स्कूल म नौकरी पर चली जाती थी।

पर इन छुट्टिया म मैं रोम गयी थी। मैं न राम के गिरजे दखे, वहाँ कई औरतें मामबत्तियाँ जला रही थी, पर मुझे कोई मामबत्ती जलान का खयाल नही आया था। राम का वह चश्मा भी दखा, जिस म एक सिक्का डालकर लाग मुरादें मागत हैं। पर मैं ने जेब म हाथ डाल कर काई सिक्का नही निकाला था। फिर रोम से फ्लोरेंस गयी थी। वहाँ माइकिल ऐंजलो के चौक मे लाग कबूतरो का चुग्गा चुगा रहे थे और उन को हथली पर बिठा कर तसवीरें उतरवा रहे थे पर मुझे अपनी तसवीर उतरवाने का काई खयाल नही आया था। फिर एक दिन राम स नेपल्ज गयी थी, और वहा से आती बार रास्त म पामपई देखा था। पर पामपई के खंडहरो म स घूम कर जब बाहर के दरवाजे के पास आयी तो लाहे के दरवाजे न मेरा हाथ पकड लिया था।

इस तरह ता कभी किसी मद न भी मेरा हाथ नही पकडा था, मैं काँप गयी।

और लोहे का दरवाजा पिछली तरफ—उन खंडहरो की तरफ ताकन लगा जहा कई स्तम्भ और कई दीवारा के टुकडे खडे थ।

और उस के कहने पर मैं भी उन्हे दखने लगी

कही कोई भी ओट नही थी—कभी होती हागी—कुछ चारो तरफ से ब द कमरे रहे होंगे। और फिर उन के भी अ दर कुछ कोठरियाँ। पर अब सब कुछ चौपट खुला हुआ था। सारे रहस्य नीचे विछे हुए थ। और पता नही लगता था कि कौन सी राह किधर निकलती थी और जाती कहाँ थी। राह राहों के गले लगी हुई थी

एक लोहे के हाथ ने मेरा हाथ पकडा हुआ था—मेरा हाथ सु न सा हाने लग पडा

पहले मेरा दायाँ हाथ सु न हुआ, फिर दायी बाँह, दायाँ क धा। फिर बायाँ हाथ, बायी बाँह और बाया क धा।

मैं ने लोहे के दरवाज़े से परे होने के लिए एक ज़ोर लगाया—पर अब मेरे पैर भी सुन्न हो गये थे, लातें भी।

लगा— मैं भी पामपई शहर की बीस हज़ार लाशों की तरह एक लाश थी वहाँ से जल्दी से बाहर निकलने के लिए दायाँ पैर आगे किया हुआ था, और बायें को आगे करने के लिए उस की एडी ज़रा सी उठी हुई—और फिर वहीं की वहीं एक गरम राख में हमेशा के लिए लाश बन कर खड़ी रह गयी

मैं किस दरवाज़े में से निकली थी, और किस राह पर जाना था कुछ पता नहीं।

अब तो सब घर ढह गये थे और सभी राह रोककर एक-दूसरे से गले लग रही थी

फिर पता नहीं कितनी देर तक मेरी आँखें जलती और बुझती रही

और फिर मेरी छाती में कुछ सुबकने लगा कि इस पामपई शहर की तरह मैं भी कभी हुआ करती थी

पिछले पन्द्रह बरस मैं अपनी चुप में और लन्दन की धुन्ध में ढँपी रही हूँ। पता नहीं यह चुप और यह धुन्ध कितने फुट ऊँची थी—छह फुट ज़रूर होगी—मेरे कद से दो बालिश्त ऊँची कि मैं सारी की सारी उस के नीचे आ गयी थी

और मैं ने भी इस 'मैं' को कभी नहीं देखा था

अब देख रही हूँ मेरी छाती में एक शहर हुआ करता था, जैसे हर जवान हो रही लडकी की छाती में एक शहर होता है।

और मेरे शहर में एक सब से बडे आँगनवाला घर था—मेरे माँ बाप का घर जहाँ एक सघन छायावाला पीपल का पेड था, एक लम्बी गली थी मेरी सग सहेलियों की और गली के माथे पर एक बड का पेड था जो थके राहियों को सुख की सांस देता था और वहाँ मेरी गली के मोड से, दूर एक ऊँची अटारी दिखा करती थी, जहाँ रात को कितनी ही बत्तियाँ तारों सरीखी जलती थीं और रोज़ सुबह सवेरे जिस की दीवार में से सूरज उगता था और मैं भी जैसे हर जवान हो रही लडकी अपने शहर की ऊँची अटारी को देखती है इस अटारी को बार-बार देखा करती थी

यह मेरा छोटा सा शहर फिर बडा हो गया। मैं कालेज में पढती थी, और कॉलेज के नाटकों में खेलती थी। अगर हज़ारों नहीं तो सैकडों वह पात्र मेरे शहर में बस गये थे, जिन्हें कहानियों में से निकालकर मैं मंच पर लायी थी।

मेरा कितना बडा शहर था—कितना सुन्दर पामपई सरीखा।

यह भी समुद्र के किनारे था—मेरा दिल समुद्र की तरह बहता था। और जब दूसरे देशों की किताबें पढती थी उन के पात्र नावों में बैठकर मेरे बन्दरगाह पर आ जाते थे

और फिर एक दिन लावा फूटा, काली और बलती राख मेह की तरह बरसती रही थी, और सारा शहर उस राख के नीचे दब गया था

मैं ने —आज से पन्द्रह बरस पहले—जब उस शहर म से भाग निकलने के लिए दायाँ पैर आगे रखा था, और बायें पैर को आगे करने के लिए उसकी एडी जरा-सी उठायी थी तो वही की वही उस बलती राख मे हमेशा के लिए लाश बन गयी थी

पामपेई शहर था, और मेरे शहर का इतिहास एक सा है। शायद इसी लिए मैं पामपेई खँडहरों मे चलती पता नही किस वक्त अपने शहर के खँडहरो मे पहुँच गयी

सिफ एक फर्क है—पामपेई के किसी इनसान को अपनी लाश देखनी नसीब नही हुई थी और मैं खुद अपनी लाश को देख रही हूँ।

बाकी सब कुछ उसी तरह है। यह भी कि जैसे पामपेई के किसी भी आदमी को कफन नसीब नही हुआ था। मेरे मरे हुए शहर के भी किसी आदमी को कफन नसीब नही हुआ। सब लाशो के मुँह नगे हैं, पहचान सकती हूँ—और उस पहचान म से सब के नयन-नक्श याद कर सकती हूँ

यह मेरी लाश—लचीले से जिस्म पर एक बडा सलोना चेहरा था। सीधी माँग निकालकर ढलवें बाल सँवारे होते थे। कमर मे सफेद रेशमी शलवार और गले म अकसर हरे रग की कमीज और हरे रग का दुपट्टा होता था। कानो मे पतली तार की बालियाँ। चेहरा भोला भी था, पर उस पर ताँबे रँगी जिद भी होती थी, जिस से वह कभी बडा कोमल दिखता था, कभी बडा सख्त।

शनिवार और इतवार स्कूल ब द होना है। कभी-कभी यह दो दिन अकेली को मुहाल हो जाते थे। इसी लिए छुट्टियो मे रोम गयी थी, नही तो इकट्ठे पन्द्रह दिन घर के कमरे म रहती तो चारो दीवारो के बीच मे पाँचवी दीवार बन जाती। पर रोम से आकर मैं ल दन के अपने कमरे मे नहीं, खडहरो मे चल रही हूँ

खँडहरो में मैं अकेली नही, और कितनी ही लाशें हैं

आज शनिवार, कल इतवार, सोचा था—दो दिन इन खँडहरो मे रहूँगी, और एक एक लाश को पहचानूगी। पर रात जॉज का फोन आया। उस ने एक फिल्म के लिए दो टिकट लिये हुए थे—एक अपने लिए, एक मेरे लिए। और मुझ से 'ना' न की गयी। शाम को उस के साथ फिल्म देखने चली गयी।

'डी कमरन —मशहूर इतालवी फिल्म थी। इस मे एक जवान हो रही लडकी को एक लडका अ छा लगता है। लडका लडकी को सलाह देता है कि आज रात वह कमरे म सोने के बजाय अपने घर की छत पर सो जाय, वह आधी

रात घर के पिछवाड़े छत पर आ जायेगा। लड़की अपनी माँ से शाम के वक्त कहती है कि आज रात वह छत पर अपना बिस्तर बिछायेगी और बुलबुल का गीत सुनेगी। माँ मान जाती है, बाप भी। और फिर वह लड़की उस रात छत पर जाकर सो जाती है। सुबह-अँधेरे लड़की का बाप जब जागता है, सोचता है कि छत पर जाकर लड़की को देखूं, कहीं उस ठण्ड न लग गयी हो। और वह जब छत पर जाता है—वहाँ उसकी बेटी के पास एक लड़का सोया होता है। दोनों के गले में कोई कपड़ा नहीं होता। वह घबराकर वापस आ जाता है, और बच्ची की माँ को जगाता है, कहता, तेरी बेटी आज कोठे पर सोयी थी क्योंकि उस बुलबुल का गीत सुनना था। जाकर देख ' उसने बुलबुल पकड़ ली है '

जाज मेरे साथ की सीट पर बैठा हुआ था फिल्म देखते हुए उसने मेरा हाथ अपनी टाँग पर रख लिया और कहने लगा, "यह बुलबुल तेरी है, ले ले।"

और फिल्म के बाद वह मुझे मेरे घर छोड़ने के लिए आया, रात भर पास रह गया। और रात फिल्म की उस लड़की की तरह मैंने बुलबुल पकड़ी थी।

इस तरह की रात मैंने जाज के साथ पहली बार गुज़ारी है, पर बस पहली बार नहीं। ऐसी रातें कभी कभी गुज़ार लेती हूँ—किसी के साथ भी।

पहली बार—बहुत घबराकर ऐसी रात गुज़ारी थी। एक दिन मेरे जिस्म का रोम रोम इस तरह बज उठा था जैसे मेरे जिस्म का एक ही अंग मेरे अंग-अंग में समा गया हो—और मेरे एक एक रोम का मुँह रहम की तरह खुल गया हो

उस दिन एक अजीब सबब बना था, नहीं तो मेरे संस्कार मेरे गिर्द इस तरह कसे हुए थे कि मैं गरम पानी की जगह रात को ठण्डे पानी से नहाकर जिस्म को बर्फ की डली बना लेती और रजाई में बेसुध सो जाती। पर उस दिन मैं अपनी एक दोस्त औरत को मिलने चली गयी। यह मेरी अँगरेज़ दोस्त कमअर बड़ी उमर की औरत है। उस दिन उसने मुझे एक चीज़ दिखायी—एक मरदाना अंग, जो उसी हफ्ते वह बाज़ार से खरीदकर लायी थी। उसमें बैटरी के ना सेल पड़े हुए थे। उसने बताया कि वह बैटरी के ज़ोर से चलता है और उसके लफ्ज़ जैसे उस दिन उस पर तरस खा रहे थे क्या करूँ, अब इस उमर में कोई मेरे पास नहीं फटकता। तलाक लिये सात बरस हो गये हैं। पहले तो कभी दो चार दिनों के लिए कोई जुड़ जाता था, पर अब ज्यों ज्यों उमर ढल रही है ' और मुझे लगा, अगर मैंने अपनी जवानी अपने संस्कारों को दे दी, तो आनेवाली उमर में मुझे भी एक दिन वलेअर की तरह बाज़ार जाना पड़ेगा, और बैटरीवाला यह रबड़ का टुकड़ा मेरी किस्मत बन जायगा

और उस शाम मैंने अपने एक थोड़े से वाकिफ आदमी को खाना खाने बुलाया था। अपने मरण दिन को अपना जन्म दिन बताया था। फिर जल्दी से

खाना बनाया था। उस के लिए 'स्कॉच' खरीद कर लायी थी, और कमरे को ताज़े फूलों से सजाया था। अकेली औरत के पास अकेले मर्द ने मुश्किल से घण्टा भर किताबों और फिल्मों की बातें की थीं, फिर उस ने लालसा से मेरा हाथ पकड़ लिया था। मेरा हाथ बेजान भी हो गया था, पर व्याकुल सा भी। और मेरे हाथ की तरह मेरा अंग-अंग

उस दिन की तरह आज भी पछतावा नहीं। सिर्फ रात जब जॉर्ज मेरे पास सोया पड़ा था, दिल में आया कि आज इसे अपने साथ अपने मरे हुए शहर में ले जाऊँ। जिस तरह लोग पामपेई के खंडहरों को देखने जाते हैं, मैं जॉर्ज को साथ ले जाऊँ और उसे अपने शहर के खंडहर दिखाऊँ।

फिर पता नहीं क्यों, मैं ने जॉर्ज को कुछ नहीं बताया। सुबह उठकर वह चाय का प्याला पीकर चला गया है, और मैं अकेली अपने शहर के खंडहरों में लौट आयी हूँ

यह मेरी लाश

और ये ऊँची ऊँची दीवारें उस अटारी की हैं, जिस में धीरे रहा करता था यह दीवार के पास उस की लाश उस के सारे नक्श मेरी चाय में उभर आये हैं – चौड़े कन्धों पर तना हुआ सिर चेहरे का रंग गेहुँआ, पर आँखें बड़ी वाली गहरी और तराशी हुईं। वह आँखों से मेरी जान को खींच लिया करता था

उस की इस अटारी में मैं कई बार रात सपनों में गयी थी, और अपने मेहन्दी रचे हाथों से उस की चारपाई पर उस का बिछौना किया था

उस के कौन करारा से भरी हुई मैं उस को उस की गली के मोड़ पर मिल कर, जब अपने बाप के खुले आँगनवाले घर में आया करती थी तो घर की दीवारें मेरे जिस्म को भींच लिया करती थीं। मेरे बाप की गुस्सैल नजर से पीपल के पत्ते झर जाते थे और मैं घर में झुलस जाती थी

और एक दिन मेरा अछूता कुआरा जिस्म छिन गया। घर पर आयी तो माँ ने अंगारा जैसी आँखों से देखा, चूल्हे में से एक लकड़ी खींचकर कहा 'तुझे उस की इतनी आग लगी हुई है, तो यह बलती लकड़ी अपने अन्दर डाल ले "

सपनों में और सहेलियों से मर्दों की बातें सुनी हुई थीं, महक सरीखी बातें, पर माँ की बात सुनकर ऐसा लगा जैसे एक बलती लकड़ी मेरी टाँगों में रख दी गयी हो

मैं कितने दिन तक अपने कमरे में बन्द पड़ी रोती रही। और एक दिन माँ किसी साधु को पकड़कर ले आयी, और उस का दिया हुआ तावीज घोलकर मुझे जबरन पिला दिया। सारी रात मैं चोरी चोरी से उलटियाँ करती रही, पर सुबह जब वह मुझे मेरी सगाई का छुहारा खिलाने लगी, पता लगा कि

किसी दुहाजू के साथ वह मेरा ब्याह करने लगी थी। वीरेन्द्र हमारे मजहब का नही था, और यह दुहाजू हमारे मजहब का था। मैं ने छुहारे को मुह मे से थूक दिया और मां के हाथ से बांह छुडाकर वीरेन्द्र के घर की ओर दौड पडी

और अचानक धरती मे से लावा निकल पडा—चारों तरफ काली और जलती राख उडने लगी—वीरेन्द्र ने पिछले हफ्ते किसी लडकी से ब्याह कर लिया था

और उस जलते शहर म से निकलने के लिए मैं ने दायां पैर उठाया हुआ था, और बांया पैर आगे रखने के लिए एडी उठायी हुई थी कि मैं वैसी की वसी उस गरम राख मे एक लाश बन गयी

और यह है मेरे शहर के खंडहरो मे मेरी लाश

मलिका

सूय की किरणें झुकी और उन्होने होले से गुलाब की एक टहनी को छुआ। एक मद की नजरें झुकी और उन्होने होले से रानी के होठो को छुआ। टहनी पर एक फूल खिल उठा। होठो पर एक मुस्कान खिल आयी। उस मद ने गुलाब के फूल को भी सूघा और रानी के होठो को भी। रानी ने पहले गुलाब का फूल तोडा और उस मद के कोट म टाँग दिया, फिर अपने होठो की मुस्कान छुई और उस मद के होठो पर रख दी।

रानी की कोमल जवान बाँहो को उस मद ने अपनी शक्तिशाली जवान बाँहो म कसा और रानी के कान मे उसके एक एक अग के लिए व सभी उपमाए दुहरायी, जो सदियो से एक जवान आदमी की आवाज जवान औरत के कानों म दुहराती आ रही है।

रोम राम से उठती कँपकँपी से रानी की नीद उचट गयी। बीती घडी को पकडने के लिए उसने फिर आँखें मूदी, पर अब उसमे एक चेतनता थी कि यह सच नही था, एक सपना था।—और रानी ने अपनी चारपाई से धीरे से उठकर सामने की अलमारी म पडा हुआ एक खत निकाला। कमरे की एक खिडकी खोली, सुबह की हलकी रोशनी मे खत पढ़ा और फिर दपण के सामने खडी होकर अपने आप को विश्वास दिलाने लगी कि आज रात का सपना सच भी हो सकता था।

रानी न दपण के सामने खडी होकर अपने एक एक अग को देखा और रात सपन म सुनी हुई सभी उपमाएँ उसे याद हो आयी। सरू के बूट जसा कद, चन्दन की गेली जैसी बाँहे, फलियो जैसी उँगलियाँ, आम की फाँक जसी आँखें, गुलाब की पत्तियो जसे होठ

और जसे हर औरत का एक मद के मुह से ये उपमाए सुनकर लगने लगता है कि ये सभी उपमाएँ केवल उसी के अगो क लिए बनायी गयी थी, रानी को भी प्रतीत हुआ कि य सारी उपमाएँ उसी के अगो के लिए बनी थी, या उसके अग ही

इन उपमाओ के लिए बन थे।

रानी न कमरे का दरवाज़ा खोला। बाहर के बगीचे मे से गुलाब का एक फूल तोडा और होठो म एक मुसकान भरकर सामने लम्बी राहो की ओर देखने लगी—जसे उसे खत लिखनवाला अभी इन राहो पर तीखे-तीखे कदम रखता उसके पास आ जायेगा और उसके हाथ म पकडे हुए फूल को और उसके होठो पर खिली हुई मुस्कान को सूघ लेगा।

रानी कुछ देर सामने की राह की ओर देखती रही, फिर उस एक हल्की सी आवाज आयी थी, 'रानी रानी " पर यह आवाज सामनवाली राह की ओर से नही आयी थी, पीछे स रानी की बडी बहन के कमरे म से आयी थी। रानी ने एक हलका मा नि श्वास लिया और बहन के कमरे की ओर जाती हुई उसने उत्तर दिया, "हाँ मल्लिका ! आ रही हू।"

भिडकाय हुए दरवाजे का खालकर जब वह बहन क कमरे मे गयी उसकी बहन ने जल्दी से कहा, "दरवाज़ा भिडका दो रानी ! बडी तीखी हवा आ रही है।"

"पर आज तो हवा बडी अच्छी लग रही है।' रानी ने एक बार कहा, पर कमरे का दरवाज़ा भिडका दिया।

"हवा मेरी हड्डियो को चीरती है मुझसे जरा भी नही झेली जाती।" मल्लिका ने अपन ऊपर ओढे हुए कम्बल के कोने को कसकर दबाया और कहा।

रात नीद कसी आयी ?" चारपाई के पाये पर बैठते हुए रानी ने धीरे से पूछा।

आज रात क्या कोई खास नीद आनी थी रोज से ? उसी तरह ही उखडी-उखडी, जसे रोज आती है।"

रानी कुछ देर चुप रही, फिर सहसा उसके मुह स निकला, "कभी तुम्ह सपन भी तो आत होंगे मल्लिका ? रानी शायद इतना मल्लिका के सपनो क बार मे नही सोच रही थी जितना अपन रात के सपने के बारे म, और सपनो की बात छेडकर वह अपनी बहन का अपना रातवाला सपना सुनाना चाहती थी।

"सपने ? सपने ही तो सारी उमर देखती रही हूँ, क्या सोते मे, क्या जागते मे।"

'य सपने सच भी होते हैं या नही ? कहत हैं, सवेरे का सपना जरूर सच हो जाता है।'

"यह सुबह बडी अच्छी है, जो तुम्हारे और मेरे जैसी औरत को भुलावा देन के लिए रोज़ आ जाती है।"

"सपने सच्चे नही होते ?'

"सपने सच नही होत, केवल घायल होत हैं।'

"मलिका !"

"चल छोड इन सपनों की बात को। इन की बातें करते करते तो मेरी ज़बान भी ज़ख्मी हो गयी है।"

"उठो मलिका, बाहर बगीचे म चलें। देखो तो बाहर कैसा मौसम है।"

"कैसा मौसम है?"

"बहार का।"

"पगली !"

'नही मलिका ! सचमुच बहार का मौसम है।"

'इस दुनिया म बहार का कोई मौसम नहीं होता रानी ! यह केवल वीरानी होती है जो कभी कभी बहार का स्वांग भरती है।"

रानी का हाथ घबराकर अपनी छाती पर चला गया। अभी जो खत रानी ने अलमारी स निकालकर सुबह की हलकी रोशनी म पढ़ा था, वह इस समय रानी की चोली मे रखा हुआ था।

"क्या बात है रानी?'

"यह खत "

"बहुत अच्छा लग रहा है?"

"बहुत अच्छा "

"जिन्दगी के इकरारो स भरा हुआ?'

"हाँ, जिन्दगी के इकरारो से भरा हुआ।"

"ये शब्द तूने पहले कभी नही सुने थे?"

"पर मलिका "

'य सब शब्द डिक्शनरी म होत हैं।"

'पर जब ये ह कोई खत म लिखता है "

"तब बल्कि इन के कोई अर्थ नहीं होते, जबकि डिक्शनरी मे इस के अर्थ भी होते हैं।"

"मलिका !'

"मेर सिरहाने एक चाबी पडी हुई है, यह चाबी ले ले और मेरी सामने की अलमारी खोलकर देख ल, जहाँ एक नही, बहुत से खत पड़े हुए हैं। तुम्हारे इस एक खत जैसे कई खत '

"आज तुम भले ही न मानो, पर मैं तुम्हें एक डॉक्टर के पास जरूर ले जाऊँगी। दखो तो तुम्हारी दशा दिनोदिन कसी होती जा रही है।"

रानी न ध्यान से मलिका के मुख की ओर देखा, और उसे व सब उपमाएँ याद आ गयी जो उस न रात सपने मे सुनी थी। और रानी का मलिका का वह रूप भी स्मरण हो आया जो मलिका के मुख पर झेला नही जाता था।
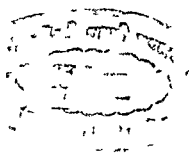
यह सच था कि मलिका बहुत सुन्दर होती थी, रानी से कही सुन्दर। क्योंकि उस के तन के रूप मे उस के मन का रूप भी मिला हुआ था। रानी भी जानती थी, इसलिए रानी मलिका के मुख की ओर देखते ही कांपने लग गयी, जसे आज विछौने पर मलिका नही बीमार पडी हुई थी, औरत के हुस्न को दी जानेवाली इस दुनिया की हर उपमा बीमार पडी हुई थी।

रानी ने चाय बनायी। मलिका को पिलायी। खुद पी और फिर हठपूर्वक मलिका को शहर के सरकारी हस्पताल मे ले गयी।

हस्पताल मे बेहद भीड थी। रानी पहले कभी हस्पताल मे नही आयी थी। उसे लगा कि आज जसे सारी दुनिया एकबारगी बीमार पड गयी है।

डॉक्टर श्रीचन्द हस्पताल का सब से बडा डॉक्टर था। रानी ने उस के कमरे का पता पूछा और मलिका को कमरे के बाहर एक कोने मे बिठाकर डाक्टर से मिलने की बारी की राह देखने लगी।

दोपहर हो आयी। मलिका के पीले रग पर एक और पीलापन फिर गया और दीवार का सहारा लेते हुए मलिका ने रानी को धीरे-से कहा, "क्यो मुझे बेगाने दर पर लाकर मारती है? मरना ही है तो अपनी चारपाई पर पडी-पडी मरूगी, अपने दरवाजे के आगे"

"बस, अगली बारी हमारी है। अब तो सारे रोगी भुगत गये हैं।"

आखिर मलिका की बारी आयी। रानी ने उसे अपनी बाँह का सहारा दिया और डाक्टर के कमरे मे ले गयी।

डाक्टर ने मेज पर रखे हुए हस्पताल के फार्म की ओर देखा और हाथ मे कलम पकडते हुए पूछने लगा, "क्या नाम है मरीज का?"

"मलिका।"

"मलिका?" डाक्टर ने मरीज के बिखरे हुए कपडो और बिखरे हुए रूप की ओर एक बार देखा और थोडा सा मुसकराकर कागज पर लिखा 'मलिका'।

मलिका के माथे पर एक पतली सी त्योरी पडी और फिर उस ने हँसकर कहा "यह कोई अजीब बात नही। मेरे पास एक बहुत बडी सल्तनत है, इसीलिए मेरा नाम मलिका है।"

डाक्टर शायद सल्तनत का नाम पूछने लगा था, पर उस ने मलिका की आँखो की ओर देखा—आँखो की नजर बडी सँभली हुई और तीखी थी। डाक्टर ने केवल इतना कहा, "क्या तकलीफ है?"

"एक तो मुझे भूख बहुत लगती है, किसी भी चीज से नही मिटती और एक मुझे प्यास बहुत लगती है"

"इस को गैरकुदरती भूख कहते हैं।"

मालूम नही इस को गैरकुदरती भूख कहते हैं या कुदरती भूख। कई बार

शीशियों पर गलत लेबल भी तो लग जाते हैं।"

डॉक्टर थोड़ा चौंका, पर फिर उस ने सम्भलकर मलिका को कमरे के दायें कोने में रखे हुए उस तख्तपोश पर लेटने के लिए कहा जहाँ वह रोगियों को जाँचता था।

मलिका लेट गयी। डॉक्टर ने मेज़ पर पड़ी घण्टी बजायी और बाहर दरवाज़े की ओर देखने लगा।

कुछ मिनट बीते। डॉक्टर ने फिर घण्टी बजायी। पर बाहर के दरवाज़े से कोई अन्दर न आया।

"न मालूम सिस्टर कहाँ चली गयी है?" अन्त में डाक्टर ने कहा और मेज़ पर रखी हुई घण्टी को एक बार फिर दबाया। चपरासी अन्दर आया। डाक्टर ने कुछ खीजकर चपरासी को कहा कि वह जल्दी नर्स को ढूँढकर लाये।

"अभी नर्स का तो कोई काम नहीं डाक्टर!" मलिका ने धीरे से कहा।

"पर नर्स के आये बिना मैं आप के पास आकर आप को जाँच नहीं सकता। कोई मर्द डॉक्टर किसी मरीज़ औरत के शरीर को हाथ नहीं लगा सकता, जब तक पास में कोई नर्स न हो।" डॉक्टर ने बताया।

'यह गवाही देने के लिए कि एक सेहतमन्द डाक्टर ने एक बीमार औरत के शरीर को हाथ लगाया है तो किसी बुरी नीयत से नहीं?" मलिका हँस पड़ी। मलिका बीमार थी, पर उस की हँसी बीमार नहीं थी।

"हाँ, इसीलिए।"

"यानी एक मर्द का हाथ जब एक औरत को छूता है तो उस का स्वाभाविक कारण एक ही हो सकता है—चाहे वह हाथ डॉक्टर का हो, और वह शरीर रोगी का "

'यह हमारे हस्पताल का नियम है, हस्पताल का कानून।

'हमारी दुनिया में इतनी गेहूँ की फसल नहीं होती, या किसी भी अनाज की, जितनी नियमों और कानूनों की फसल होती है। क्या नहीं डॉक्टर?'

डॉक्टर ने चौंककर मरीज़ औरत की ओर देखा। शायद कुछ कहता। पर कमरे में नर्स आ गयी थी। डॉक्टर ने रोगी को कुछ कहने के स्थान पर नर्स को कहा, 'एक मरीज़ को देखना है।'

नर्स मलिका के पास ठहर गयी और डॉक्टर ने उस की नब्ज़ देखते हुए पूछा 'शरीर के किसी भाग में दर्द भी होता है?'

'हर नाड़ी में मलिका ने बताया।

डॉक्टर ने स्टेथस्कोप लगाकर उस से कहा, 'लम्बे लम्बे साँस लीजिए।

"मैं हमेशा ही लम्बे साँस लेती हूँ।"

"साँस लेने में मुश्किल पड़ती है?'

"हर साँस लेने मे ।"

फिर डॉक्टर ने मलिका के जिगर को देखा । "जिगर बढ़ा हुआ नही ।"

"अगर बढ़ा हुआ नही तो घटा हुआ जरूर होगा ।" मलिका ने धीरे से कहा।

डॉक्टर ने एक गहरी नजर से मलिका को देखा और फिर नर्स को कहा, "खून की जाँच करनी पड़ेगी । इस के बाद ही मैं कुछ कह सकूगा ।"

डाक्टर अपनी कुर्सी पर बैठ कर सामने रखे हुए हस्पताल के सरकारी कागजो म रिक्त खानो को भरने के लिए मलिका से पूछने लगा

आयु ? '

"यही जब इन्सान जीवन की हर वस्तु के बारे मे सोचना शुरू करता है और फिर सोचता ही चला जाता है । तीस बत्तीस साल "

आप के मालिक का नाम ? '

"मैं घडी या साइकल हूँ कि मेरा कोई मालिक हो । मैं औरत हूँ ।"

"मेरा मतलब है आप के पति का नाम ?"

मैं बेकार हू नौकरी नही करती ।"

मैं नौकरी क बारे म नही पूछ रहा ।"

मेरा मतलब है, मैं किसी की बीवी नही लगी हुई ।"

"बीवी नही लगी हुई ? '

'मेरा मतलब है, हर कोई किसी न किसी काम पर लगा होता है, जैसे आप डॉक्टर नियुक्त हैं यह पास खड़ी हुई लड़की नर्स लगी हुई है । आप के दरवाजे के बाहर खडा आदमी चपरासी लगा हुआ है । इसी तरह जब लोग विवाह करते हैं मर्द खाविन्द लग जाते हैं और औरतें बीवियाँ लग जाती है ।"

डाक्टर ने हाथ मे पकडी हुई कलम को इस तरह छिटका जैसे उसकी कलम म स्याही रुक गयी हो ।

' क्यो डॉक्टर, ठीक नही ? कई पेशो मे लोग तरक्की भी कर जाते हैं । जो आज सेकण्ड लेफ्टिनाण्ट नियुक्त होता है, वह कल करनल बन जाता है, ब्रिगेडियर बन जाता है जनरल बन जाता है । पर इस विवाह के पेशे मे कभी किसी की तरक्की नही होती । बीवियाँ सारी उमर बीविया ही लगी रहती है । ख विन्द सारी उमर खाविन्द ही लगे रहते हैं ।"

"इन की तरक्की हो भी तो क्या ?" डॉक्टर न अभी तक मरीज औरत से उस की सेहत के सिवा कोई बात नहीं की थी, पर यह प्रश्न उस से पूछा ही गया।

'इन की तरक्की भी हो सकती है पर मैं ने होती कभी देखी नही ।

' पर क्या हो सकती है ? '

यही कि आज जो खावि द लगा हुआ है वह कल को महबूब बन जाये । कल को जो महबूब बने परसो को खुदा बन जाये—यह रिश्ता जो केवल एक प्रथा के

महारे ठहरा होता है, चलते चलते दिन का सहारा ओट ले—आत्मा का सहारा न ले। "

डाक्टर ने कहा कुछ नहीं, केवल मेज के खाने से एक सिगरेट निकालकर पीने लगा।

नर्स ने साथ के कमरे से खून की जाँच करनेवाले डाक्टर को बुलाया और डॉक्टर ने मलिका की उगली से खून की कुछ बूँदें लेकर शीशे की एक नली में भर ली।

डॉक्टर श्रीचन्द ने हस्पताल के फार्म पर कुछ लिखा और यह फार्म नर्स को थमाते हुए बोला, 'मरीज को बीस नम्बर वार्ड में ले जाओ। आठ नम्बर 'बेड' खाली है, वह दे दो।"

रानी ने मलिका को बाँह का सहारा देकर उठाया और डॉक्टर ने चेतावनी दी, 'मरीज के पास कोई रुपया-पैसा या गहना नहीं होना चाहिए।"

मलिका ने अपने दुपट्टे के छोर से कुछ बाँधा हुआ था। उसकी ओर देखती हुई डॉक्टर से कहने लगी, मेरे पास कुछ कीमती सिक्के हैं—इन का क्या करूँ?"

इन को आप हस्पताल में अपने पास नहीं रख सकती।" डाक्टर ने बताया।

"रख तो मैं दुनिया में भी नहीं सकती थी, पर जैसे तैसे सँभालती आयी हूँ।' मलिका ने इतनी धीमी आवाज में कहा, जिसे उसने खुद भी कठिनता से सुना और उस ने दुपट्टे के छोर से बँधी हुई एक छोटी-सी लाल रंग की पोटली खोली और रानी को थमाते हुए कहने लगी, 'बड़े ही कीमती सिक्के हैं– सँभालकर रखना।"

मलिका को जब बीस नम्बरवाले वार्ड में ले गये तो उस लोहे के पलंग पर लिटाते हुए पहली नर्स ने वार्ड की दूसरी नर्स को उसे सौंपते हुए कहा, 'मरीज नम्बर आठ।' मलिका मुसकरा उठी और रानी को होले से कहने लगी, 'यह नम्बरों की बात मुझे बड़ी अच्छी लगी है।"

"क्यों?'

'क्योंकि यहाँ किसी भी मरीज का कोई नाम नहीं होता। मरीज नम्बर सात, मरीज नम्बर आठ, मरीज नम्बर नौ। ये नाम तो बने थे मनुष्य की शख्सियत बताने के लिए, पर किसी मनुष्य की कोई शख्सियत नहीं होती। इस लिए यह नामों की बात झूठी होती है। ये नम्बरों की बात फिर भी सच्ची है'

रानी ने पीड़ा को पीकर मलिका के कंधे को चूमा और फिर छलछलाई आँखों से वार्ड से बाहर चली आयी।

इस वार्ड में छः मरीज थे। मलिका अपने साथ की पाँच मरीज औरतों का

देखती, धीमी आवाज़ मे उन्हें उन का हाल पूछने लगी। एक बिलकुल पीली पड चुकी युवती को छोड कर, शेष चारो औरतें गरीबी और बुढ़ापे से पैदा होनेवाले रोगो से कराह रही थी। पानी का घूट एक पल अन्दर जाता और दूसरे पल बाहर निकल आता था — उन की आशाओ की तरह।

डॉक्टर जब शाम का चक्कर लगाने आया तो मलिका से हाल पूछते हुए बोला, "रात को नर्स आप को नीद की गोली दे देगी।"

"कोई विशेष आवश्यकता नही। मैं थोडा बहुत सो ही लूगी, रोज़ की तरह।"

"यहाँ शायद आप को रोज़ की तरह भी नीद नही आयेगी, क्योंकि अक्सर मरीज़ रात को दिन से अधिक कराहते हैं। इन मे से एक को तो कैंसर है, दूसरी के घावो म पानी भरा हुआ है, और वह आप के साथ की चारपाई पर पडी औरत "

"कोई बात नही डॉक्टर! मुझे ये चीखें और कराहना सुनने की आदत पडी हुई है। हमारी दुनिया मे वह कौन सा स्थान है, जहाँ रात को लोग सुख की नीद सोते है? किसी का हाथ घायल किसी का पैर घायल, किसी का सपना घायल " और मलिका ने खिडकी की ओर हाथ उठाते हुए कहा "वहाँ दूर, हमारे देश की सरहद पर जाने कितने लोग घावो से तडप रहे हैं "

डाक्टर मलिका के पीले और नम मुख की ओर जाने कितनी देर देखता रहा। फिर हाथ म पकडे हुए एक कागज की ओर देखते हुए कहने लगा, "आप के खून की जाच का नतीजा आ गया है। पर "

"क्या दोष निकला है मेरे खून मे?"

"लाल कीटाणु सफेद कीटाणु—सब ठीक हैं। किसी जानी पहचानी बीमारी के कीटाणु भी उस मे नही मिलते। पर एक विचित्र प्रकार के कीटाणु मिल हैं जि हे हम जान नही पा रहे कि कौन से कीटाणु हैं "

मलिका मुसकरायी। मलिका की आवाज़ भले ही दिनोदिन बढती तकलीफ से धीमी होती जा रही थी, पर उस की कोमलता मे अन्तर नही आया था। उसी धीमी और कोमल आवाज़ मे वह कहने लगी "आप जितने दिन चाहे इन कीटाणुआ को परख लें और अगर फिर भी आप कुछ जान न पायें तो मैं बताऊँगी कि ये कीटाणु कौन से हैं।"

डॉक्टर ने गहरी आँखो से मलिका को देखा और फिर जब बोला उस की आवाज़ मे अचम्भा था, "आप जानती हैं ये कौन स कीटाणु हैं?"

"हाँ।"

"हम सब डॉक्टर आज इन्हें परखते जाँचते थक गये हैं। सोच रहे थे कि आप के खून की कुछ बूदें किसी और देश के डाक्टरो को भेजें। हम से कई दूसरे देशों

की साइस अधिक उन्नत है ।"

"भेज कर देख लीजिए। पर शायद वे भी न जान सकें।"

"बड़ी अजीब बात है !"

"हाँ, अजीब तो है ही "

"पर आप ने यह कैसे कहा कि आप जानती हैं ?"

"क्योंकि मैं सचमुच जानती हूँ।"

"फिर आप स्वय हमे बता दीजिए।"

"मैं बता देती हूँ, पर आप विश्वास नही करेंगे।"

"आप उस का इलाज भी जानती हैं ?"

"हाँ।"

'फिर आप वह इलाज करती क्यो नही ?"

"मैं अपना ऑपरेशन आप कैसे कर सकती हूँ ? यह तो आप लोग ही कर सकते हैं !'

"फिर जो हम आप का बताया हुआ इलाज कर दें, आप ठीक हो जायें—तो हमें ये सब मानना ही पड़ेगा।"

"मैं बताने को तैयार हूँ।"

"ये कौन से कीटाणु हैं ?"

"आप ने पार्वती की एक कहानी सुनी है या नही ? एक पौराणिक बात चली आती है "

"पार्वती की कहानी ?"

"कहते हैं, एक बार शिवजी कही बाहर गये हुए थे, उन्होंने बहुत विलम्ब कर दिया। पीछे अकेली पार्वती का दिल नही लगता था, इसलिए उस ने अपने शरीर की मैल उतारकर एक बच्चा घड़ लिया "

डॉक्टर के मुख पर हँसी की और खीझ की एक लहर दौड़ गयी और उस ने अपने-आप को कहा, "मैं इस पगली स्त्री से व्यर्थ मे माथापच्ची कर रहा हूँ, मालूम होता है इस का "

"मैं ने कहा था न कि आप को मुझ पर विश्वास नही आयेगा।"

"यह कोई विश्वास करने की बात है ?"

'अच्छा, फिर रहने दीजिए इस बात को। आप स्वय कीटाणुओं की पहचान खोज लीजिए अगर खोज सकते हैं तो "

डॉक्टर के माथे पर एक हैरानी पुत गयी। वह सोचने लगा, 'इस औरत के होश हवास कायम भी दिखते हैं और नही भी।' ऊँची आवाज़ मे उस ने केवल इतना कहा, "अच्छा, मैं सारी बात सुनूगा। आगे बताइये।'

"जिस तरह पार्वती ने अपने शरीर की मैल से एक पुत्र बना लिया था, इसी

तरह सारी औरत जाति ने अपने दिल के खून को, पसीने को और आँसुओं को मिला कर मुझे जन्म दिया था। इसीलिए मेरे खून म आप का वे अजीब कीटाणु मिले हैं—जिन्ह आप पहचान नही पाते।"

डाक्टर ने अपन माथे पर आया हुआ पसीना पोंछा और फिर पूछन लगा, "आप की इस बीमारी का नाम क्या है ?'

"सोचन की बीमारी। हर वस्तु के बारे म सोचने की बीमारी।"

"इस का इलाज ?"

"आप जानत हैं कि हर इन्सान के पेट मे दाईं ओर एक पतली सी नाडी होती है। कइ बार खुराक का कुछ हिस्सा उस म इकट्ठा हो जाता है, जो पडा पडा सडन लगता है। आदमी दिनादिन पीला और कमज़ोर पडता जाता है और अगर ऑपरेशन द्वारा उस नाडी को काटा न जाये तो वह किसी दिन खुद ही फट जाती है। फिर उस का विष सारे शरीर म फैल जाता है और आदमी मर जाता है।'

"हाँ।'

"इसी तरह इन्सान क सिर म एक नाडी होती है जिस मे विचारा का कुछ हिस्सा इकट्ठा हो जाता है, फिर पडा पडा सडन लगता है। किसी दिन फट भी जाना है और फिर आदमी उस के ज़हर से मर जाता है।

"इसका सबूत क्या है ?

"एक्सरे करके देख लीजिए। यह मैं नही जानती कि अभी आप की 'साइन्स' न इतनी उन्नति की है अथवा नही कि इस नाडी का चित्र लिया जा सके। अगर आप मेरी बात मानें '

आप क्या कहना चाहती हैं ?

"कि आप मेरे सिर का ऑपरेशन करके देख लीजिए। आप को यह नाडी अवश्य मिल जायेगी

डॉक्टर कुछ देर चुपचाप मलिका के मुख की ओर देखता रहा, फिर बिना कुछ कहे वाड से बाहर चला गया।

दूसरे दिन सवेरे लगान ज ो मलिका की दशा कल से भी बिगडी हु मलि के लिए मलिका के सिरहाने पर कह

"डॉक्टर लीजिए

आँ नवाले क म ी नाडी

को कुछ कहने के लिए केवल इतना कहा, "आज एकमरे करके देखत हैं।'

"अभी आप की माइस ने इतनी उनति कहाँ की है कि " मलिका की आवाज़ टूटन लगा।

डॉक्टर श्रीचन्द ने साथ के कमरे म जाकर कुछ और डाक्टरों को टेलीफोन किया कि व वार्ड नम्बर बीस म आ जायें। और आप वह जब लौटकर मलिका के पास आया, उस न हाथ म इजेक्शन लगाने का सामान पकड़ा हुआ था।

"यह क्या डॉक्टर ?"

"हाथ इधर करो, मैं एक इजेक्शन लगाऊँगा।"

"किस बात का इजेक्शन डॉक्टर ?"

'दिल की ताकत का।"

भले ही मलिका का एक एक अग मुरझा गया था, पर उस की मुसकान अब भी नही मुरझायी थी। मलिका न उसी मुसकान स कहा, 'दिल की ताकत का ?'

हाँ।"

'वह तो डॉक्टर, पहले ही ज्यादा है। जरूरत से ज्यादा। उसी की मारी तो मैं मर रही हूँ।"

इजेक्शन की सुई को गम पानी स निकालते हुए डॉक्टर का हाथ काँप गया।

प्रात नौ बजे से लेकर ग्यारह तक का समय मुलाकातो के लिए था। इस समय दस बजे थे, रानी अपनी बहन का हाल पूछने के लिए आ गयी।

"तू आ गयी रानी ?'

"हाँ, मलिका।"

"मैं तेरे बारे मे ही सोच रही थी "

"मैं आ गयी हूँ। तेरा हाल कैसा है ?

"इधर हो न।'

'बाल।'

'तू ने वह मेरी लाल पोटली कहाँ रखी है ?"

"मैं खूब सँभालकर रख आयी हूँ, तुम फिकर मत करो।"

"उस म बड़े कीमती सिक्के पड़े हुए हैं। तू ने खोलकर देखी थी ?"

"नही मलिका, मैं ने नही खोली। मैं तुम्हारी आज्ञा बिना कैसे खोल सकती हूँ ! तुम जब ठीक हो जाओगी, मुझे खुद खालकर दिखाना। तुम मुझे इस समय यह बताओ कि मैं तुम्हे खाने के लिए क्या दू ? मैं कुछ फल लायी हूँ।"

"आज मुझ से कुछ नही खाया जाता। दुनिया का कोई भी फल '

मलिका की आँखें निश्चेष्ट होकर एक पल के लिए मुद गयी। फिर किसी अन्दर की शक्ति से उचटकर खुल गयी और वह रानी की ओर देखते हुए कहने लगी, "मरे जाने का समय आ गया है रानी ! मेरे पास आ, और पास मेरे सिर
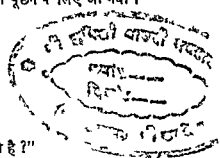
, की नाड़ी शायद घट गयी "
"मैं तेरे पास हूँ मलिका !"
"वे सिक्के "
"वे कभी न गुम होंगे मलिका ! तू इस समय उन की फिक्र मत कर।"
"तुम्हें एक बात बताती हूँ।"
"बता।"
"वे सिक्के शायद तुम्हारे किसी काम न आयें पर "
"पर तू तो कहती थी कि वे बड़े कीमती हैं ?"
बड़े ही कीमती हैं '
"मैं उन्हें कभी नहीं खाऊँगी मलिका !"
'पर वे इस दुनिया में चलते नहीं।"
रानी के साथ डाक्टर भी मलिका के सिरहाने पर झुका। मलिका अपनी टूटती आवाज़ को जोड़कर कहने लगी
'उन में एक सिक्का है मुहब्बत का—एक 'विश्वास' का—और एक 'अमन' का—बड़े कीमती सिक्के '
आगे मलिका की आवाज़ किसी को सुनायी न दी। रानी ने घबराकर मलिका के माथे पर हाथ धरा और फिर डॉक्टर की ओर देखा। डॉक्टर कुछ देर मलिका की नब्ज़ देखता रहा। फिर उस ने कम्बल का कोना उठाकर मलिका के मुख पर डाल दिया। रानी के मन में जो सब से पहला खयाल आया, वह यह था कि आज मलिका नहीं मरी थी, आज औरत के हुस्न को दी जानेवाली इस दुनिया की हर उपमा मर गयी थी।

आत्मकथा

मेरा ऊपर का धड़ साबुत है, पर मेरी टाँगें चूहा ने काट ली हैं, इसलिए मैं जहाँ पड़ा हूँ, वहाँ से हिल नहीं सकता।

मेरी दायीं ओर खरबूजों के कुछ छिलके पड़े हुए हैं, बायीं ओर बासी रोटी का एक टुकड़ा है और मेरे आगे-पीछे किसी ने जूठे बर्तन साफ कर के राख बिखेर दी है।

अभी अभी भूख की मारी हुई एक गाय इधर से गुजरी थी। उस ने अपनी जिह्वा से मुझे सिर से पैर तक चाटा और फिर मुझे एक बेकार चीज समझ-कर छोड़ दिया। खरबूजों के छिलके उसे बड़े काम के लगे। काफी छिलके उस ने एकबारगी मुह में समेट लिये।

फिर एक मरियल सा कुत्ता आया और अपनी पूँछ हिलाते हुए मुझे सिर से पैरों तक सूँघने लगा। उसे भी मैं बिलकुल व्यर्थ की चीज लगा और वह मेरे पास पड़ी हुई रोटी के टुकड़े को चबाने लगा।

फिर मुँडेर पर बैठा हुआ एक कौवा मेरी तरफ इस तरह उड़कर आया जैसे किसी गोरी ने अपने प्यारे की प्रतीक्षा करते हुए उस के लिए चूरी डाल दी हो। पर मुझे चोंच मारते ही कौए का भ्रम जाता रहा और वह मुझे छोड़ कर मेरे इद गिर्द बिखरी हुई राख में से चनों को खोजने लगा। इस तरह मैं जहाँ पड़ा हुआ था, वहीं पड़ा हुआ हूँ।

मरते समय या तो लोग दान पुण्य करते हैं, या वसीयत करते हैं, पर मैं क्या करूँ, और साथ ही मैं ने जिन्दगी में कोई पाप भी नहीं किया कि मरते समय जल्दी से कोई पुण्य कर लूँ और न ही मेरी कोई सन्तान है जिसके नाम पर मैं वसीयत करूँ—और साथ ही मैं ने जिन्दगी में लोगों की मेहनत को चुराकर कोई खजाना भी नहीं भरा कि मरते समय किसी भाई भतीजे को उस की रखवाली पर बिठा जाऊँ।

हाँ कई लोग मरते समय अपनी आत्मकथा लिखते हैं, वह मैं लिख सकता

हूँ। भले ही मैं जानता हूँ कि मैं दुनिया का कोई महापुरुष नहीं हू, मैं तो एक मामूली सा नक्शा हूँ, एक छोटे मे घर का नक्शा, पर यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं गाधी की तरह आदशवादी हूँ, गोर्की की तरह यथाथवादी, और रूसो की तरह स्पष्टवादी। इसलिए मैं सोचता हूँ कि मुझ मरने स पहल अपनी आत्मकथा लिखनी चाहिए।

मेरे मालिक ने मुझे इस स्थान पर फेंकते समय अपनी वह कापी भी साथ ही फेंक दी है, जिस पर वह मुहब्बत के गीत लिखा करता था और जिस म अब भी कई पृष्ठ खाली ह, और उस न अपनी कलम भी फेंक दी है जिस म अब भी काफी स्याही भरी हुई है। सो मैं इसी कलम स, इसी कापी क खाली पृष्ठो पर अपनी आत्मकथा लिखता हूँ

एक बार एक अत्य त सुन्दर मद ने एक अत्यन्त सुन्दर औरत का देखा था और उस का दिल अपन हाथ मे एक पसिल लेकर कुछ लकीरें खीचने लग गया था, बस वही लकीरें मेरी लकीरें थी। एक छोटे से घर के नक्शे की लकीरें। वह रोज रात को सपनो म इन लकीरो का सँवारता रहता था कि एक दिन उसे वर्दी पहनकर उस स्थान पर जाना पडा जहा दिन रात बन्दूको की आवाज आती रहती थी।

लोगो की चीत्कारो से मेरे कान फटते थे। फिर भी मैं ने अपन मालिक के जेहन मे एक कोना ढूढ लिया था जहाँ मैं चुपचाप पडा रहता था।

एक दिन मेरे मालिक की खूबसूरत छाती मे एक गोली आ धँसी और वह तडपते हुए मुझे कहने लगा 'तुम जल्दी यहाँ स चले जाओ। इस बारूद क धुए मे तुम्हारा साँस घुट जायगा। तुम वहा चले जाओ जहा कोई किसान हाथो से बीज बिखेरते हुए जिन्दगी के सपने उगाता है—और वहा जहा कोई मजदूर सिर पर टोकरी उठाय जिन्दगी के सपनो का निमाण करता है।'

मैं अपने मालिक की आखिरी इच्छा को पूरी करन के लिए युद्ध क मैदान से भाग आया और एक छोटे स गाव म एक किसान के पास चला गया। किसान न मेरे साथ हँसकर दुआ सलाम भी न की। अपन पैरो मे टूटी हुई जूती डालते हुए कहन लगा, सिर पर उधार चढाकर तो मैं न बीज खरीदा है, मुझ स तो लगान भी नही चुकाया जाता—मुझ तुम्हारा क्या करना है? मेरी लडकी खजूर जितनी बडी हो गयी है। अगर मैं किसी तरह उसी का भार उतार पाया तो मेरे लिए बहुत बडी बात होगी। तुम भाई किसी और आदमी क पास जाओ।'

थका टूटा मैं एक सुन्दर शहर म चला गया। मैं एक बडी सी मिल क मजदूर क पास पहुच गया। मजदूर ने मेरे साथ सलाम भी न की और अपने फटे हुए कुर्ते स हाथ पोछते हुए कहन लगा 'हमारी मिल म छटनी होनेवाली

है, और मैं तो यह भी नही समझ पा रहा कि मैं कल दाल चावल कहाँ से लाऊँगा ! मैं तुम्हें क्या करूँगा ? मेरा छोटा बच्चा कई दिनो स बीमार पडा है —अगर मैं उस के लिए कहीं से दवा भी ला पाया तो बडी बात होगी तुम भाई किसी और आदमी के पास जाओ "

मैं खेतों म से निकला हुआ और मिलों म से गुजरता हुआ साँस लेन के लिए एक नदी क किनारे जा बैठा। इतनी देर मे मैं देखता हूँ कि जरा हटकर एक वृक्ष की छाया म एक बुजुग आदमी आसमान की ओर हाथ उठाकर कह रहा था, "अल्ला पाक ! शुक्र है तुम्हारा कि मेरा बेटा जवान हो गया। मेरे हाथो का सहारा बन गया। उस की हक की कमाई को बरकत देना " मुझे लगा कि मैं जिस आदमी की खोज म था, मुझे मिल गया। मैं जल्दी स उस बुजुग के पास चला गया, वह मुस्कराया और कहने लगा, "यही बस यही मेरी ख्वाहिश है कि एक कमरे म मेरा बेटा और उस की बहू बसते हो और मैं छोटे से दालान म बैठा पोते को खिला रहा होऊँ " बुजुग ने अपने दिल का दरवाजा खोला और मैं जल्दी से अन्दर चला गया।

यह बुजुग बहुत जुगती था। उस का बेटा जब महीने के बाद वतन लाकर उस की तली पर रखता, वह आधे पैसे गुथली म डाल लेता और आधे पैसो म गहस्थी चलाता। मुझे भी आशा बँध गयी कि थोडे से महीनो मे या थोडे से वर्षों मे मेरी जन सँवर जायेगी। वह बुजुग कहीं सस्ती सी जमीन का एक टुकडा भी खोजने लगा और अपने बेटे के लिए किसी अच्छी-सी लडकी का रिश्ता भी पूछने लगा।

फिर जाने क्या हुआ। शहर भर मे चाकू और छुरियाँ चलने लगे। पुलिस के आदमी जब उस बूढे को बचाने आये तो कहने लगे, 'अगर तुम्हें अपनी जान प्यारी है तो यहाँ से एक काफिला जा रहा है, हम तुम्हे काफिले म छोड आते हैं।

वह बुजुग अभी हैरान होकर सिपाहियो की ओर देख ही रहा था कि मैं ने उतावला होकर कहा, 'मेरा क्या बनेगा ? आप शायद जानते नहीं कि इस बिचारे बूढ न मेरे लिए थोडी सी जमीन भी ढूढ रखी है। बस थोडे-से महीनो म " पुलिसवाले हँसने लगे और कहने लगे, "पगले ! अगर तुम अपना भला चाहते हो तो किसी हिन्दू के दिमाग मे जा बैठो। यह बूढा तो मुसलमान है "

मुझे पुलिस की बात समझ म आयी और मैं ने अपनी बात को भी स्पष्ट समझाने के लिए कहा 'बडा ईमानदार बूढा है। इस का बेटा भी खून पसीना एक करके कमाता है " अब पुलिसवालों ने मेरी बात भी न सुनी और उस बुजग और उस के बेटे को हाथ से पकडकर काफिले में छोड आये।

बुजुग ने मुझे सलाह दी, "सच कहते हैं ये पुलिसवाले, जिस जगह मेरा बाप जन्मा, पला और जवान हुआ, जहाँ मैं जन्मा, पला और जवान हुआ, जहाँ मेरा बेटा जन्मा, पला और जवान हुआ अगर वह भूमि ही मुझसे छिन गयी तो मुझे तुम्हारा क्या करना है ? तू किसी हिन्दू के दिमाग म जा बैठ।"

उस बुजुग की ढलती उमर मे मुझे उस के दिल से निकल जाना बहुत बुरा लगा और मैं उस के दिल के एक कोने मे बैठकर उस काफिले के साथ चल दिया। अभी बहुत दूर नही गये थे कि उस काफिले पर हमला हुआ और उस बुजुग का जवान बेटा मार दिया गया। बेहाल होते हुए वह मुझ से कहने लगा, "अब म तुझे भला क्या करूँगा ? जो धरती मेरे बेटे के खून की प्यासी हो गयी, उस धरती पर मुझे कोई घर नही चाहिए।' और उस ने बलपूवक मेरा हाथ पकडकर मुझे दूर फेंक दिया।

जिस ओर यह काफिला जा रहा था, उस ओर से एक काफिला आ भी रहा था। मुझे उदास और निराश होते देखकर उस बुजुग न मेरा हाथ पकडा और कहने लगा, 'जाओ मैं अल्ला के नाम पर तुम्ह उन के हवाले करता हूँ। वह देखो, सामने हिन्दुओ का काफिला आ रहा है – हमारी तरह ही उजडा और उखडा हुआ। तुम किसी अच्छे से हिन्दू के मन म जाकर बस जाओ। जाओ मेरे अजीज !"

मैं उस बुजुग की बात न टाल सका, और मैं इस काफिले को छोडकर उस काफिले म चला गया। एक मद अपने इद गिर्द के लोगो को दिलासा दे रहा था, 'हमारी हिम्मत नही जानी चाहिए। हमारी जान सलामत, हमारा जहान सलामत ! क्या हुआ हमारे सिरो पर छत नही, हमारे हाथो म मेहनत बसती है ।" मैं झट से उस मद के पास गया और उस के हाथो को चूम लिया, जिन हाथो मे स मेहनत की खुशबू आ रही थी।

सूय छिपा ही था कि सारे काफिले मे कुरलाहट मच गयी। हमलावर आये और उस काफिले की कई औरतो को उठाकर ले गये। लोगो को दिलासे देने वाला मेरा मालिक अपना सिर पकडकर मुझसे कहने लगा, "बन्धु ! तुम जाओ, जो भी राह तुम्हे ओट ले। तुम मेरे भाग म नही हो। जिस धरती पर मेरी औरत छिन गयी उस धरती पर मेरा घर नही बस सकता " और उस न मुझे एक मरे हुए बच्चे की तरह अपने हाथो से एक ओर फेंक दिया।

मैं घूमता भटकता रहा। मैं उस आदमी की कोठरी म गया जिस से उस का मालिक मकान इसलिए गाली गलौज करता रहता था कि वह कोठरी का किराया नही बढा सकता था मैं उस आदमी की कोठरी मे भी गया जो प्रभात के समय जब एक गीत लिखने लगता था तो ऊपर की मजिल पर रहती एक औरत जोर जोर से मसाला पीसने लग जाती थी मैं उस आदमी की कोठरी म

भी गया जिस का पड़ोसी रोज रात को शराब पीकर आता था और उस की जवान बेटी को बडी बेशम आंखो से घूरता था और वह आदमी कोठरी न बदलने के लिए मजबूर था, क्योकि इतने कम किराये पर और कही कोठरी नही मिल सकती थी। और मैं उस आदमी के कमरे म भी गया जिसकी औरत निचली छत से पानी की बाल्टियां भरकर ऊपर लाती थी और जिस का तीन महीने का हमल गिर गया था पर इन सब लोगो में से किसी ने मेरे साथ आंख न मिलायी।

इन कोठरियो के झुरमुट मे ही एक और कोठरी भी थी जहां दिन रात पुस्तकें पढ़ते रहनेवाला एक बांका नौजवान रहता था। मुझे पता चला कि मां ने अपने अग अग का गहना बेचकर इसको पढाया और अब इसे कोई न कोई रोजगार मिलने ही वाला है। और साथ ही मुझे मालूम हुआ कि इस नौजवान को अपने कालेज मे पढती एक लडकी से मुहब्बत है। जसे मैंने कई एक कोठरीवालो का हाल देखा था, इस नौजवान ने भी यह सब देखा था, और उस ने अपने मन म ठान लिया था कि वह किसी ऐसी कोठरी मे नही रहेगा जिसका मालिक रोज गाली गलौज करता हो। और वह उस कोठरी की छत के नीचे नही रहेगा जहां वह बीवी को बांहों मे कसकर गीत गुनगुनाने लगे तो ऊपर की छत पर कोई जोर-जोर से मसाला पीसन लगे। और वह अपनी बीवी को किसी ऐसी कोठरी म भी नही रखेगा जिसका पडोसी शराब पीकर आये और उसे बेशम आंखो से घूरता रहे। और वह तीसरी मजिल पर नही रहेगा जहां पानी चढाते हुए उस की बीवी का हमल गिर जाये।

इसलिए जब मैं इस नौजवान के सामने हुआ तो उस ने मुझे पलको पर उठा लिया और अपनी मा को कहने लगा, "बस अम्मा! अब हमारे दिन फिर जायेंगे। पिताजी ने हमारे लिये जमीन का छोटा सा टुकडा खरीदा था, अब मैं वहां एक छोटा-सा घर बनाऊंगा। मेरा रोजगार तो लग ही जायेगा और आठ हजार हम सरकार से ऋण ले लेंगे, अब तो हमारी अपनी सरकार है"

मैंने यह सब सुना और एक थके राही की तरह उस नौजवान के दिल की ठण्डी छाया मे बठ गया।

एक दिन इस नौजवान ने एक नक्शानवीस को बुलाया और अपने दिल म खिंची हुई मेरी सारी लकीरों को उसेसमझा दिया और उसे कहा कि—वह जल्दी से एक छोटे से घर का नक्शा बना लाये।

एक अर्जी उस ने सरकार को दे दी कि उसे मकान बनाने के लिए ऋण चाहिए।

और दजनो अर्जियां उस ने कई सरकारी दफ्तरों मे दे दीं कि उसे जल्दी से जल्दी रोजगार दिया जाये।

मैंने पहली बार किसी पसिल का मुँह चूमा और पहली बार किसी कागज का आलिंगन किया। नक्शानवीस ने मुझे अत्यन्त सुन्दर नीले कागजों में लपेट लिया और मेरे मालिक को कहने लगा, "तीस रुपया नक्शा बनवायी, तीस रुपये कमेटीवालों के और तीस रुपये नक्शा पास कराने के"

मेरे मालिक ने नक्शेवाले को पैसे दे दिये, कमेटीवालों की फीस भर दी, पर उसने नक्शा पास कराने का कुछ न दिया और कहा, 'मैं एक स्वतन्त्र देश का शरीफ नागरिक हूँ। अपने देश में घर बनाना मेरा अधिकार है और अगर मेरे घर का नक्शा कमेटी के नियमानुसार ठीक है तो यह अवश्य पास होना चाहिए।" नक्शानवीस ने बहुत समझाया, पर मेरे मालिक के हठ को अपने सिद्धान्तों का मान था। खैर, मैं एक फाइल में लगकर कमेटी के दफ्तर में दाखिल हो गया।

कई महीने गुज़र गये। कमेटी के दफ्तर में खड़े मेरी टाँगें अकड़ गयीं। एक दिन एक अफसर ने दूसरे अफसर के कान में कहा कि—'इस फाइल को दबा रखो। जिसे नक्शा पास करवाना होगा अपनी मुट्ठी ढीली करेगा।" और मुझे जीते जी ही एक टूटी हुई मेज की कबर में दबा दिया गया।

ज्यों ज्यों मेरा साँस घुटने लगा, मैं सोचने लगा मुझे तो फावड़ों और बेलचों से खेलना था। सुर्ख ईंटें सलेटी सीमेंट और फिर मेरा कद और बुत बढ़ता जाता, मेरी रेखाएँ उभरती जातीं, मजदूर औरतों के लाल पीले दुपट्टे हवा में उड़ते, चाँदी की चूड़ियाँ मेरे कानों में खनकतीं, काँच की चूड़ियाँ मेरे चारों ओर भाँवरें डालतीं और मजदूरों के शरीर में से मेहनत के पसीने की महक आती और फिर फिर मेरा मालिक अपनी प्रेमिका की कमर में हाथ लपेटकर मेरी ओर संकेत करता 'हमारा घर मेरी जान! हमारा अपना घर।' और फिर मेरा मालिक अपनी बूढ़ी माँ को अपने हाथ का सहारा देकर मेरी ओर लाता, "अम्मा! तूने मुझे मुसीबतें झेलकर पाला था देख, मैंने तुम्हारे लिये घर बना लिया है।" और फिर मेरे मालिक की आँखों में एक नन्हा सा बालक खेलने लगता

पर मैं तो जीते जागते ही एक टूटी हुई मेज की कबर में पड़ा हुआ था। और फिर एक दिन मुझे ऐसा लगा जैसे कोई धीरे धीरे मेरी कबर को खोद रहा हो—मैंने कान लगाकर सुना। मैंने अपना सारा ध्यान एकाग्र किया दिल में आशाएँ बँधने लगीं पर हाय! ये तो चूहे थे, जो मेरे पाँवों को कुतर रहे थे। मेरी एड़ियों को कुतर रहे थे, मेरे घुटनों को कुतर रहे थे—मेरी आशाओं को कुतर रहे थे।

और फिर कयामत का दिन आ गया। मैं और मेरे जैसे और कितने ही कबरों से निकाले गये। कमेटी का एक आफिसर इजराइल फरिश्ते की तरह

हमारे सामने खड़ा हो गया और उस ने अपने मुशी को हुक्म दिया कि ये सब नक्शे इन के मालिकों को लौटा दो। ये नक्शे पास नहीं हो सकते, क्योंकि इन्हे चूहे कुतर गये हैं।

मैं रीगते रींगते अपने मालिक के पास पहुँच गया। नक्शानवीस ने मेरे मालिक से बड़े तजरबेकार की सी गुरु गम्भीर आवाज म कहा, 'मैंने कहा था न ! चाँदी के पहियों के बिना ये गाडियाँ नही चल सकती। आप चाहे सिद्धान्तो के कितने ही इजन इन के आगे जोड दीजिए"

मेरे मालिक की आँखें भर आयी और मैंने मिन्नत मे कहा, "चलो, अगर मेरे भाग्य मे इस धरती पर पर रखना नही लिखा हुआ तो मुझे पहले की तरह अपने दिल मे ही बिठा लो ! अपने दिमाग म ही रख लो !"

'अब तो मैं वहाँ भी नही रख सकता" मेरे मालिक ने एक लम्बा साँस लिया और कहने लगा "क्योंकि वहाँ भी बहुत से चूहे पैदा हो गय हैं—तुम्हारा नीचे का धड पहले ही कुतरा जा चुका है, वहाँ ऊपर का धड भी कुतरा जायेगा।"

"तुम्हारे दिल और दिमाग मे चूहे"

'हाँ, मेरे दोस्त ! जिस तरह ये कमेटीवाले ऐसे चहे पालते हैं जो घरो के नक्शे कुतर जाते हैं इसी तरह य समाजवाले भी ऐसे चूहे पालत हैं जो सपनो के नक्शे कुतर जाते हैं।'

"तुम्हारे ऋण की अर्जी का क्या बना ?"

"सरकार ने जाँच पडताल की थी कि मेरे पास पहले से कोई मेरा अपना घर तो नही। मेरी माँ के पास कोई अपना घर तो नही। मेरे पिता के पास कोई अपना घर तो नही। हिन्दू परिवार क्योंकि सयुक्त परिवार समझा जाता है, इसलिए मेरे किसी भाई-बन्धुओ के पास कोई अपना घर तो नही। और साथ ही मेरे दादे परदादे का कोई विरासत मे मिला घर तो नही। और चाहे मैंने सरकार को विश्वास दिला दिया था कि जब मे बन्दर नस्ल मे से इन्सान पैदा हुआ है, मेरे वश म कभी किसी के पास अपना घर नही था फिर भी उन्होने न जाने मेरी अर्जी को किस तरह की अफीम खिला दी वह किसी मेज के खाने म सो रही"

"और तुम्हारे रोजगार की अर्जी ?'

"वह इस तरह बन गयी है जसे कोई कुवारी लडकी वर ढढते ढूढते ही बूढी हो जाये।"

'और तुम्हारी मुहब्बत की अर्जी ?"

'उस लडकी का बाप कहता है कि जिस के पास घर नही, रोजगार नही, उसे मुहब्बत करने का कोई अधिकार नही।"

और मेरे मालिक ने मुझे बडी इज्जत से एक घूरे पर रख दिया—और

स्वय अपनी जमीन का दौरा करने के लिए चल पडा, जिसे बेचकर उसे चूल्हे म आग जलती रखने के लिए कुछ लकडियाँ खरीदनी थी।

"मैं ?" मैंने घबराकर अपने जाते हुए मालिक को आवाज दी।

मेरे मालिक ने एक मिनट ठिठककर मेरी ओर देखा और उसन बडी शांति से उत्तर दिया, "अगर तुम्हें अपनी इतनी ही चिंता थी तो तुम्ह किसी सेठ-व्यापारी के मन मे जा बसना था, फिर तू एक छोटा सा घर तो क्या, महल तक बन जाता "

'तुम मुझे गलत समझ रहे हो मेरे मालिक! मैं तो सिफ उस आदमी के छोटे स घर का नक्शा हूँ जिस के दसो नाखूनो म, कहते हैं, बरकत होती है।" मैंन कहा।

और मेरा मालिक अपने दसो नाखूनो को बार-बार देखता गली म से बाहर चला गया।

न जाने कौन रग रे

समय हमेशा आग नही चलता, कभी यह पीछे भी चलने लगता है। जैसे चलते हुए के हाथ से कोई चीज गिर पडी हो, बडी दूर निकल जाने के बाद उसे उस चीज की याद आयी हो और फिर उसे खोजने के लिए वह पीछे चल दिया हो।

मरी माँ की नाक का मोती समय की मुट्ठी स गिर पडा। बीस साल बीत गये। बीस साल बाद समय को अचानक उस की याद आयी। वह चौंककर ठिठक गया, और फिर उस मोती की तलाश मे पीछे लौट पडा।

बीस साल पीछे लौटे हुए समय की सहायता से मैं आज अपनी माँ की नाक का मोती देख रही हूँ। मैंने अपनी माँ को अपनी आँखो स कभी नही देखा, क्योंकि मैं अभी पूरे चालीस दिनो की भी नही थी जब मेरी माँ चल बसी थी। पर आज बीस साल पीछे चलकर आय समय की आँखो से मैं देख सकती हूँ कि—पडोसी के घर विवाह रचा है। विवाहुला लडकी की सहेलियाँ मँडहे के दिन गीत गान के लिए जमा हुई हैं। हम मध्यप्रदशियो मे यह मँडहे का दिन बडा सजीला होता है। विवाह के मण्डप क चारो ओर लडकियाँ घेरा डालकर नाचनी हैं। इन नाचती हुई लडकियो म जो सबसे कटीली है— उस न नाक मे सुच्चा मोती पहना है। तीखे और कनकई नाक पर मोती बडा दिप रहा है। घुघराय हुए बाल जब नाच की ताल मे घूमती कमर स हुलराकर माथे पर आ गिरते हैं तो कोई एक घुघर ज्यादा ही उछल कर नाक के माती को हाथ से छू जाता है। और होंठो मे जब गीत काँपता है तो उसकी लचक स नाक का मोती झिलमिला उठता है। मोती का रग दिखता है, पर गीत का रग नही दिखता, न ही गानेवाले के मन का रग दिखायी दता है, और इसी अनदिखन म परशान होकर वह लडकी कह रही है

'कलसा तो बडा सुन्दर,
न जाने कौन रग रे।"

और इस पक्ति को लगभग बीस बार दुहराकर वह आग कहती है

"न जाने कुम्हरा के गढहे
न जाने माटी रग रे
दुलहन तो बडी सुन्दर
न जाने कौन रग रे।
न जाने मईया की कुखिया
न जाने बाबा रग रे
रूप दिया करतार
सुन हो हम आपा रग रे। "

और न दिखनेवाले रग की परेशानी को वह करतार पर और कुदरत पर छोडकर अपना मन हौला कर लेती है पर मन शायद यू हल्के नहीं हुआ करते। मन तोते का बाना पहन लेता है और उस देश मे उड जाने के लिए व्यग्र हो उठता है जो देश अमरूदो का देश हो। दिन म पके अमरूदो को चुचियाता वह अपना समय काट लेता है—पर रात मे फिर विकल हो उठता है। वह आधी रात म बैठकर चोली के व धन को कुतरने लगता है। यही परेशानी गीत बन जाती है

"चल रे सुगना अमरूदवा के देसवा मे।
दिन म तो कुटके सुगना पकले अमरूदवा
अधीया रतियन कुटके चोली केर बँधनुवा।
चल से सुगना "

और फिर पता नही गा गाकर और नाच नाचकर वह लडकी थककर रुक जाती है या तोते की लाल चोच से घबराकर वह तोतेवाला गीत गाना बन्द कर देती है या मुँडेर पर से देखते हुए लोगो की नजरो से लजा जाती है इसके बाद बारात आती है। वे लडकियो के साथ मिलकर बारात देखने चली जाती है। बारातियो मे दूल्हे क कुछ दोस्त ऐसे भी हैं जो किसी बडे शहर से आये लगते है। उनकी चाल ढाल बाकी बारातियो से न्यारी है। और उन न्यारे बारातियो मे से एक बाराती एकटक उस लडकी के मुख की तरफ देखे चला जाता है जिस लडकी की नाक मे सुच्चा मोती दमक रहा है। लडकी को लगता है कि यही आदमी मुँडेर पर भी खडा था। जाने दोनों घरों से उसका कोई दुहरा नाता था जो कि अब वह बारात में भी चला आया था। लडकी लाज से दुहरी हुई जाती है और उसकी नाक का मोती जैसे नाक म सिकुडता जाता है।—इसके बाद बारात रोटी खाती है। कुछ बाराती बारातघर मे लौट जाते हैं। पर दूल्हा, उसके नजदीक के कुछ नाती और उसके यारे दोस्तो मे से सिफ एक दोस्त वहा रह जाता है। मण्डप मे बठने का समय हो आता है। सामग्री का धुआँ जसे जसे ऊपर उठता है लडकियो का गीत ऊँचा हो जाता है

"पहली भँवर बेटी अब हूँ हमारी—बाबल की बेटी
दूजी भँवर बेटी अब हू हमारा—भईया की बेटी
तीजी भँवर बेटी

तीसरी भँवर बिटिया मामे की, चौथी भँवर बेटी ताऊ की, पाँचवी भँवर बेटी चाचे की, छठी भँवर बेटी भाइयो की अपनी माँ के जाओ की—पर सातवी भँवर म बेटी पराई हो जाती है।—गानवाली लडकिया म सबसे छबीली वही लडकी है जिसकी नाक मे सुच्चा मोती है, और सबस लचीली आवाज उमी लडकी की है जिसकी नाक म सुच्चा मोती काँप रहा है। दूल्हे का वह प्यारा दोस्त आँख नही झपकता, एकटक उसे देखे जाता है। नाग गीत म वह लडकी उस पराई लगती रहती है। पर आखिरी पंक्ति गाती हुई वह लडकी उसे अपनी हो गयी लगती है। सुबह सूरज उग आन पर वह लडकी क माँ बाप को सन्देशा भिजवाता है और उस लडकी का माँग लता है।—माँ बाप उसका अता पता पूछा हैं और फिर अपनी तसल्ली कर लन पर उस लडकी की सगाई दे देन है - वह लडकी कलावती - सुना है कि मेरी माँ थी।

अगली बात मैंने अपनी नानी क मुख से कई बार सुनी कि मेरी माँ अपन विवाह मे भी गीत गाती थी। और कोई गीत नही—सिफ एक ही पंक्ति—"न जाने कौन रग रे!" यह पंक्ति वह ढोलक पर नही गाती थी—यू ही गाय जाती थी। आँगन मे बैठकर नही गाती थी—घर की दीवारो से सटकर गाती थी। सहेलियो के साथ मिलकर नही गाती थी, अकली शीशे के सामन खडी होकर गाती थी। हवा मे हाथ हुलराकर नहीं गाती थी—हाथ से आँख का आँसू पोंछकर गाती थी। और इस गीत क विलाप स उन के नाक का मोती दिप-दिपाता नही था, जल जलकर बुझता था।

और मेरी नानी न मुझे बताया था कि विवाह के पहन फेरे मे ही मेरी माँ का रूप नखुना गया था। दूसरे फेरे मे मुझे कोख म ले लौटी। कोख म मुझे ले आयी, और हड्डिया म ताप। बस। फिर वह कही नही गयी। मुझ ज म देने के बाद उसका पूरा चालीसा भी नही कटा। खाट से एक दिन उसे तब उतारा गया जब मेरा जन्म हुआ था। फिर चालीस के अन्दर दूसरी बार वह उस दिन उतारी गयी जब उसका साँस उखड रहा था।

मैं जब जरा सँभली तो नानी को ही माँ कहकर बुलाने लगी थी। पाँच साल बाद मुझे मालूम हुआ था कि माँ और होती है और नानी और। तब मुझे नानी ने बताया कि मेरा बाप एक बार मेरी माँ की मौत पर आया था और फिर कभी नही आया। वह कही से मेरी एक दूसरी माँ ले आया था। पर दूसरी माँ अपनी माँ नही होती, इसलिए उसने कभी मुझे अपन पास नही बुलाया था।

और सोलह साल बाद मेरी नानी ने मुझे एक भेद की बात बतायी थी।

मैं तब कॉलेज में पढ़ती थी। हमारे कस्बे में कॉलेज खुल चुका था। एक दिन मेरे कॉलेज का एक सहपाठी मुझे मिलने के लिए आया। वह मेरे कमरे में बैठा था कि मेरे नानाजी घर आ गये। मेरी नानी ने मुझे बताया कि मेरे नानाजी को यह पसन्द नहीं होगा कि मेरे कॉलेज का कोई लड़का मुझे मिलने के लिए घर आये। इसलिए मैंने उस से कुछ बातें करके उसे जल्दी से भेज दिया। मेरे नानाजी आगे के आँगन में बैठे हुए थे, इसलिए मैंने अपने जमाती को आगे के दरवाज़े से नहीं—पिछले दरवाज़े से लौटा दिया।—उस रात नानी ने मेरे पास बैठकर मुझे बताया कि मेरी माँ का एक यूसुफ नाम का लड़का बहुत अच्छा लगता था। और मेरी नानी ने सोच में गोता खाकर मुझे यह भी बताया कि खुदा ने उसे शक्ल भी यूसुफ की ही दी थी, और हलीमी भी। "पर न जाने मिलती थी न धर्म—मैं किस दरवाज़े से उसे अन्दर लाती। एक बार मैंने उस पिछले दरवाज़े से अन्दर आते हुए देखा तो मैंने बच्ची को अकेले में बैठाकर समझा दिया कि औरत का पाप फूल की तरह होता है जो पानी में डूबता नहीं, बल्कि तरकर मुँह से बोलता है। मर्दों का क्या है – उनके पाप तो पत्थरों की तरह पानी में डूब जाते हैं, किसी को कानोकान खबर नहीं लगती।—मैंने बेटी को बाँधकर उसका विवाह कर दिया। पर एक साल में ही बिचारी चल दी। जो सेहरा बाँधकर आगे के दरवाज़े से घर आया था, मरी हुई की लाश देखने के लिए बस एक बार फिर आया और चला गया। मरी हुई का चेहरा देखने के लिए एक बार वह भी आया बेचारा। पिछला दरवाज़ा खटखटाने लगा। मैं क्या करती? जात नहीं मिलती थी धर्म नहीं मिलता था, पर किस दिल से मैं उसे रोक देती। अन्दर आकर मरी हुई का चेहरा देख गया। और फिर उन्हीं पैरों उसी रास्ते से लौट गया। मेरी बेटी की *किस्मत! जो आगे के दरवाज़े से आया था, वह* भी चला गया और जो पीछे के दरवाज़े से आया था, वह भी चला गया। "

और इस तरह मुझे अपनी माँ का रोग मालूम हो गया था। मेरी नानी जो बात मुझे समझाना चाहती थी मैंने वह भी समझ ली। मुझे अपनी माँ वाले रोग से बचना था, इसलिए मैंने कभी किसी को पिछला दरवाज़ा न खोला। मुझे मालूम हो गया कि पिछले दरवाज़े से जो दिल एक बार चला जाता है, वह दिल फिर लौटकर छाती में नहीं आता

मुझ पर भी वही जवानी आयी थी जो कभी मेरी माँ पर थी। अपनी नानी से मैंने भी वह गीत सीखा था जो कभी मेरी माँ ने सीखा था—चल रे सुगना अम रूदवा के देसवा में—और शीशे में अपना चेहरा देखकर मैं भी वही गीत गाती थी जिसे मेरी मां गाया करती थी – "न जाने कौन रंग रे।" पर मैंने घर का पिछला दरवाज़ा कभी किसी के लिए न खोला। और अगले दरवाज़े पर नज़र टिकाकर उसकी इन्तज़ार करने लगी जिसका चेहरा देखकर मुझे किसी यूसुफ

का चेहरा याद न करना पड़े

फिर मुझे सत्तरहवाँ साल लगा, फिर अठारहवाँ और फिर उन्नीसवाँ। मेरे नानाजी को घाटा पड़ गया। मेरे लिए वे जिन अच्छे रिश्तों की तलाश कर रहे थे, उनकी वह उम्मीद छोड बैठे। एक दिन सोच में डूबे हुए उन्होंने मेरे बाप को खत लिखा कि मेरी उमर विवाह के योग्य हो आयी थी जिससे उन्हें मेरे लिए फिक्र करना चाहिए था।

खत के जवाब में मैंने जिसे देखा वह मेरा बाप था। बेटी ने अपनी होश में पहली बार अपने बाप को देखा और बाप ने पहली बार बेटी को। आँखों में कभी पहचान पड़ जाती थी, कभी निकल जाती थी। मैं समझ नहीं पा रही थी कि अपने बाप से क्या बातें करूँ, और शायद मेरे बाप को भी यह समझ नहीं आ रहा था कि वह मुझ से क्या बात करे। उस रात वह मेरे नानाजी के घर रहा। रात में बड़ी देर तक उन से बातें करता रहा, सुबह मेरी नानी ने मुझे बताया कि मेरा बाप कुछ दिनों के लिए मुझे अपने घर ले जाना चाहता था। मुझे यह सब अजीब लग रहा था, पर मैं जाने के लिए मान गयी। मेरी इच्छा किसी आत्मीयता से नहीं बँधी हुई थी, पर एक रिश्ते से बँधी हुई थी। दोपहर के समय जब मैंने अपने कपड़े निकाले तो मेरी नानी ने अपना लकड़ी का सन्दूक खोलकर, उसमें से सुच्चे मोती की तीली निकालकर मेरी नाक में पहना दी। यह वही सुच्चा मोती था जिसे मेरी माँ अपने नाक में पहना करती थी

मुझे वह पल अच्छी तरह याद है जब मेरी नाक में सुच्चा मोती पहनाकर मेरी नानी ने मेरे चेहरे की तरफ देखा तो दोनों हाथों से अपना मुँह ढँककर वह रोने लगी थी। फिर जाने अपना रोना उसे अशकुना लगा कि वह मेरे सिर को अपनी छाती से लगाकर मेरे माथे को चूमने लगी। चूमते चूमते वह कह रही थी "मूल से ब्याज प्यारा।" मैं जानती थी कि मेरी नानी का मूल खो गया था। मैं तो ब्याज थी—बेटी की बेटी। उस खोये हुए मूल का दर्द भी था, और रहते ब्याज पर प्यार भी आ रहा था।

मेरे चेहरे में से उस समय जाने किस तरह सब को मेरी माँ का चेहरा दिखायी दे रहा था। स्टेशन पर जाते समय मेरे नानाजी ने मुझे सिर पर प्यार दिया तो उन के मुख से हड़बड़ाकर निकल गया, 'मुझे तो आज यह बिलसिया बिलकुल कलावती दिखायी दे रही है—साईं के ये क्या रंग होते हैं।"

गाड़ी में मुझे जनाने डिब्बे में बिठाकर मेरे पिताजी ने अपना बग मर्दाने डिब्बे में रख लिया। मैं जब अकेली बैठी तो मुझे लगा कि मैंने अपने बाप की शक्ल अच्छी तरह नहीं देखी थी। दूसरे दिन सुबह जब दिल्ली उतरूँगी तो पता नहीं गाड़ी में से उतरकर उसे पहचान भी सकूँगी या नहीं।—और शायद यही विचार मेरे बाप को भी आया हो, क्योंकि अगले स्टेशन पर वह मेरे डिब्बे में

आया और मुझे इस तरह देखने लगा जैसे वह भी मेरी शक्ल को अच्छी तरह देख रहा हो ताकि दूसरे दिन सुबह वह दिल्ली गाडी से उतरने पर मुझे अच्छी तरह पहचान ले।

रात उतर आयी थी। अभी काफी सफर बाकी था कि आगरा स्टेशन आया। स्टेशन पर मेरा बाप मेरे डिब्बे में आया और मुझसे बोला, 'अगर तुम कहो तो यहीं उतर जायें। तुमने ताज कभी नहीं देखा" मेरे मन का बाँध टूट गया। दिल में आया कि—अपने बाप की छाती से सिर पटककर कहूँ, 'माँ ने मुझे मरकर छोड दिया, पर तुमने तो जीते जी ही छोड दिया था। बीस साल बाद आज तुम्हें ख्याल आया है कि मैंने अभी आगरे का ताज नहीं देखा दिल्ली का लाल किला नहीं देखा मुझे अब कुछ नहीं देखना ' किसी बाप से मैंने जिदें करके नहीं देखा था, पर जब समय आया था, तो जिदें करने की उमर बीत चुकी थी। अब मैं उन्नीस साल की कॉलेज में पढी लिखी लडकी थी। कहना मानकर 'अच्छा' कहा और गाडी से नीचे उतर आयी।

एक होटल में सामान रखा। रोटी खायी। रात बडी गहरी चुकी थी। सोचा कि सुबह होते ही ताज देखेंगे—इस समय नहीं। और मैं अपने पिता के सपने जैसे मेल को आँखों में झपककर सो गयी।

आगे मालूम नहीं मेरी किस्मत या मेरे नाक में पहने हुए मोती की किस्मत—मुझे अपनी छाती में अपना साँस घुटता हुआ महसूस हुआ और घबराकर मेरी आँख खुल गयी। किसी का मुख मेरे मुख पर झुका हुआ था, किसी की बाँहें मेरी बाँहों पर पडी हुई थीं। मैं चीख उठी, "बाबूजी!"

अपने बाप को पहचानकर मैंने यह आवाज नहीं दी थी। जो आदमी मेरी चारपाई पर आ गया था, उससे मुझे बचाने के लिए मैंने अपने बाप को आवाज दी थी। पर

बाबूजी ने अपनी तली से मेरे होंठ भींच दिये। मेरी चीख मेरे होंठों में ही भिंचकर रह गयी। मैं काँप रही थी, पर मैंने देखा मेरा बाप भी काँप रहा था। मेरी बाहों में मालूम नहीं कहाँ से जोर आ गया। मैंने अपने बाप की बाँहों को पीछे धकेल दिया और चारपाई से उतरकर खडी हो गयी।

मालूम नहीं हो रहा था, क्या करूँ। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द था। मैंने दरवाजा जल्दी से खोल दिया और मैं दहलीज में खडी हो गयी। समझ नहीं पा रही थी कि इस समय कहाँ जाऊँ। कितनी ही देर दरवाजे में खडी रही। और फिर मैंने देखा कि मेरा बाप अपनी चारपाई पर पडा रो रहा था। मैं कितनी देर उसी तरह खडी रही। एक पैर दहलीज के अन्दर था, एक बाहर। अन्दर का पैर बाहर नहीं जाता था और बाहर का पैर अन्दर नहीं आता था।

और फिर मेरे कानों को लगा कि मेरा बाप मेरी माँ का नाम लेकर कुछ

यह रहा था। और फिर मुझे लगा कि मेरा नाम लेकर भी कुछ कह रहा था। मैंने कमरे के खुले दरवाजों को भिड़का दिया और अपने पिता की चारपाई के पास घुटनों के बल बैठ गयी। मेरी टाँगें काँप रही थीं और मुझ से खड़ा नहीं रहा जाता था।

जो लफ्ज मेरे पिता के रोने में मिले हुए थे, वे अब मुझे अच्छी तरह सुनायी दे रहे थे। मेरा बाप कभी मेरी माँ का नाम लेकर उस से माफी माँग रहा था और कभी मेरा नाम लेकर। न जाने कैसा रोना मेरे दिल में भी घिर आया। चारपाई के पाये से सिर टकराकर मैं रोने लगी तो न मैं अपने बाप को चुप करा सकी और न अपने आप को।

जाने रात ढल रही थी, सुबह हो रही थी, या सिर्फ चाँद का उजाला कमरे में फैल रहा था, मेरा बाप चौंककर चारपाई में उठ बैठा, "मैं दिन की रोशनी में तुम्हें अपना चेहरा नहीं दिखा सकता बेटी! मैं अभी यहाँ से चला जाऊँगा। तुम पढ़ी लिखी लड़की हो। सुबह किसी गाड़ी से वापस अपनी नानी के पास चली जाना।"

मैं ने अपने बाप के टूटे टूटे बोल सुने और फिर देखा कि उसने अपनी जेब से कुछ नोट निकालकर चारपाई पर रख दिये "होटल का बिल दे देना गाड़ी का टिकट ले लेना "

मैं चारपाई के पाये पर सिर रखकर रो रही थी। मालूम नहीं कब मैं अपने पिता की टाँगों के पास होकर उसके घुटनों से सिर लगाकर रोने लगी थी।

'तुम अगर माफ कर सको मुझे माफ कर देना! ' मेरे बाप ने कहा और मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सिर पर हाथ रखने के लिए उसने अपना हाथ बढ़ाया था– पर मेरे सिर को छुआया नहीं था।

'बाबूजी!" मेरे मुख से बिलखकर निकला।

"तुम्हारी माँ मर गयी—समझ लेना बाप भी मर गया –" मेरे बाप ने एक बार कहा और फिर उस ने मुझ से अपने घुटनों को छुडाकर परे हो जाना चाहा।

मैं ने घुटनों को ज़ोर से अपनी बाँहों में कस लिया। पर मुख से कुछ कहना न हुआ। बड़ी देर बाद मेरे बाप ने कहा

'तू नहीं समझ सकती मैं समझाऊँ भी किस तरह—किसे समझाऊँ? एक सच था, पर सारा झूठ बन गया है।"

'मैं समझूँगी बाबूजी!"

'मैं ने जब तुम्हारी माँ को देखा था बीस साल हो चले हैं—पता नहीं बीस साल कहाँ चले गये—मैं ने कल जब तुम्हें देखा—तो मुझे लगा कि मैं उसी को देख रहा था "

"मैं समझ रही हूँ बाबूजी "

समय हमेशा आगे नहीं चलता। कई बार पीछे भी चल पड़ता है। जैसे चलते हुए के हाथ से कोई चीज़ गिर पडी हो। बडी दूर निकल जाने के बाद उसे उस चीज की याद आयी हो और फिर उसे खोजने के लिए वह पीछे लौट आया हो—मेरी माँ की नाक का मोती समय के हाथ से गिरा पडा था। बीस साल हो चले थे। आज मेरा बाप समय के साथ मिलकर उस मोती को खोज रहा था

मेरे बाप को बीस साल पीछे की बातें कल की तरह याद थी। मैं सुनती रही जसे वह एक एक बात मुझे आखो से दिखाता जा रहा हो। जो कुछ समझ सकती थी समझा। जो नही समझ सकती थी—उसे अपनी छाती मे रखकर नानी के घर आ गयी हूँ, "सौतेली मा के पास जाने का दिल नही हुआ।" नानी को कह दिया है। पर सोच रही हूँ कि मा गाया करती थी कलसा तो बडा सुन्दर न जाने कौन रग रे" मा को अपने मन का रग मालूम न हुआ, वह इस रग से परेशान होकर मर गयी। बाबूजी जीवित है, पर अपने मन का रग उन्हे भी पता नही चलता जिस ईश्वर ने इस रग को बनाया है, वही उन्हे माफ करे। मैं क्या कह सकती हूँ

जरी का कफन

वह दोनों एक बार तब भी मिली थी जब वह जिन्दा थी

तब एक की उम्र बीस बरस थी, दूसरी की चालीस बरस। बात सिर्फ इतनी थी कि जिस की उम्र बीस बरस थी उस ने उस दूसरी की बहू बनने का निश्चय कर लिया था। पर जिस की चालीस बरस उम्र थी, उस ने उस दूसरी की सास बनने से कतई ना कर दी थी।

ब्याह की रस्म हुई थी, पर उस के लिए जिस की उम्र बीस बरस थी। जिस की चालीस बरस थी उस के लिए नहीं। सो यह रस्म उसे हमेशा दिखाती रही, जिस ने इसे आँखों से देखा था। पर यह रस्म उसे कभी ना दिखी जिस ने इसे आँखों से देखने से इन्कार कर दिया था।

"तू जीते-जी मेरे घर की दहलीज नहीं लाँघ सकती" एक फरमान की तरह उस ने कहा था जिसकी उम्र चालीस बरस थी।

"तू मुझे मरी हुई समझ ले पर घर की दहलीज लाँघ लेने दे।" यह उस ने मिन्नत की थी, जिस की उम्र उस वक्त बीस बरस थी।

'मैं जीते-जी तेरा मुह नहीं देखूंगी, न जीती का, ना मरी का," और उस ने पैरों के पास झुके हुए माथे को पैरों से परे कर दिया था, और घर की दहलीज जोर-जोर से हँसने लगी थी

इस दहलीज की हँसी मे—पैसे की हँसी भी मिली हुई थी और एक खानदान की जिद की हँसी भी। सो यह हँसी भी इतनी ऊँची थी कि जिस की उम्र तब बीस बरस की थी। उस ने दोनो पर हाथ रख लिये थे।

कानों पर से हाथ हटाकर उस ने कई बार उस की तरफ देखा था जिस के पीछे यह घर था और घर की दहलीज थी। पर वह तब भी चुप था, फिर भी चुप रहा। सिर्फ दहलीज तब भी हँसती थी, फिर भी हँसती रही।

और फिर यह दहलीज और भी हँसी—जब एक बारात इस दहलीज से बाहर गयी, और एक डोली इस दहलीज के अन्दर आयी। और उस की उम्र तब

बीस बरस थी, और जो परे एक स्कूल के क्वार्टर में बैठकर इस दहलीज को देखती थी, उस ने इस की हँसी से डरकर कानों पर हाथ रख लिये।

वक्त था बीतता रहा। और फिर जिस की उम्र चालीस बरस थी, उस की साठ बरस हो गयी, और जिस की उम्र बीस बरस थी—उस की चालीस हो गयी। दहलीज की हँसी भी शायद बूढ़ी हो गयी थी, वह अन्दर देखती तो भी खाँसने लगती, बाहर देखती तो भी खाँसती।

और फिर वह मर गयी जिस ने दूसरी को हुक्म दिया था कि तू जीते जी मेरे घर की दहलीज को नहीं लाँघ सकती। और हुक्म देनेवाली अभी दहलीज के अन्दर थी चाहे एक लाश थी, गिर्द सम्बन्धियों की भीड़ थी, केवड़े की महक थी, और ज़री का कफ़न था—कि उस के हुक्म की उदूली हो गयी

वह दहलीज के अन्दर आ गयी जिसे आने का हुक्म नहीं था। और उस के पैरों के पास खड़ी हो गयी, जिस ने हुक्म दिया था। एक का माथा दूसरी के पैरों से छुआ और ज़री का कफ़न घबरा कर सफ़ेद धोती को देखने लगा

"यह कौन है? चुप कर यह भी उस की बहू थी कहाँ रहती थी? पता नहीं" रिश्तेदारों में खुसर-पुसर हुई पर ज़री का कफ़न सफ़ेद धोती का कुछ कह नहीं सकता था।

सफ़ेद धोती एक पल आयी, दूसरे पल चली गयी। सिर्फ़ जाती हुई को बूढ़ी दहलीज ने रोका, और पूछा, तूने उस का हुक्म मोड़ दिया'

"नहीं।" सफ़ेद धोती ने जवाब दिया, "उस ने कहा था तू जीते जी दहलीज नहीं लाँघ सकती, मैं जीते जी तेरा मुँह नहीं देखूँगी। मैं तभी मर गयी थी वह आज मरी है। यह तो एक लाश दूसरी लाश से मिलने आयी थी?"

फिर सफ़ेद धोती दहलीज के बाहर चली गयी और कुछ देर बाद ज़री का कफ़न भी दहलीज के बाहर चला गया।

बूढ़ी दहलीज कितनी देर माथे पर हाथ रखकर बैठी रही।

अँधेरे का कमण्डल

रात रोज आती है जोगी की फेरी की तरह हर दरवाजे पर अलख जगाती है, सपनो की भीख मांगती है, कोई दे तो वाह वाह, नही दे तो वह खडी नही होती, चली जाती है

पर एक बार, चार-पाँच बरस हुए, वह आयी थी तो हाथ म पकडे हुए अँधेरे का कमण्डल वही भूल गयी थी। वहां उस कमरे मे, जहाँ विद्या माँ बनने की पीडा से जूझ रही थी

तब से वह अँधेरे का कमण्डल वही पडा हुआ है। बाहर जब धूप चढती है, उस का सेंक कमरे मे भी आता है, कमरे की ठिठुरन टूट जाती है और वह अँधेरा भी गर्माकर उस कमरे म ऊँघने लगता है

कई बार विद्या का मन किया था कि अगली रात जब जोगी की फेरी की तरह आयेगी वह अँधेरे का कमण्डल लौटा देगी। कमण्डल मे डालने के लिए उस के पास सपनो की भीख कोई नही, पर वह अपनी बेटी की तोतली बातो म से एक मुट्ठी भर कर उस कमण्डल म डाल देगी, और वह कमण्डल लौटा देगी। पर ऐसा नही हुआ। हर नयी रात के हाथ म नया कमण्डल होता है, पुराने कमण्डल को पकडने के लिए कभी भी उस का हाथ खाली नही होता

आज रात नही चार पाच बरस पहले की एक रात नहीं आज रात

एक औरत जनन की पीडा से तडप रही थी, एक चारपाई के [illegible] जस पीडा को सहला रही थी

विद्या को लगा—वह चारपाई पर कराह रही थी, और वह [illegible] के पैताने के पास थी वह मिस राय थी डाक्टर राय

और फिर विद्या को लगा—उस के जिस्म म [illegible], वह चुपचाप चारपाई के पैताने की ओर बैठी हुई थी, [illegible] पीडा से कराह रही थी, वह मिस राय थी

एक कमरा जैसे एक चक्कर सा खाकर उलटा हो गया हो

नहीं, कमरा उसी तरह था, चारपाई भी वहीं थी, उसी तरह, सिर्फ जो कोई चारपाई पर दर्द से तड़प रही थी, वह उठकर चारपाई के पास खड़ी हो गयी, और जो कोई चारपाई के पास खड़ी हुई थी, वह दर्द से तड़पकर चारपाई पर पड़ गयी

एक बच्चे की हुआँक

बिलकुल इसी तरह विद्या ने यह हुआँक सुनी थी, फिर चाहकर बच्चे के मुँह की तरफ देखा था—हर बच्चे का मुंह पता नहीं पहले दिन एक सा ही होता है —नम नम मास का एक गुच्छा हाथों म से फिसल फिसल पड़ता

फिर विद्या की आँखों ने जल्दी से मास के उस गुच्छे को टटोला—हर औरत की आँखें ऐसे ही मास के गुच्छे को टटोलती हैं—यह देखने के लिए कि यह लड़का है या लड़की ?

लड़का !

नहीं, अभी तो वह लड़की थी

बीते हुए बरस, पास ही कहीं बैठे हुए थे, वह धीरे से हँस पड़े।

अँधेरे का कमण्डल भी धीरे से हँस पड़ा

विद्या विचारों के वस मे थी, पर उस के हाथ पर विचारों के बस म नहीं थे। वह जैसे सामने दिखती जरूरत के बस मे थे। मिस राय को इस वक्त उस की जरूरत थी, इसलिए विद्या हाजिर थी—

विद्या को जब ऐसी जरूरत पड़ी थी, तब मिस राय उस के पास थी—चाहे सास मा, या बहन और भाभी की तरह नहीं, एक डॉक्टर की तरह। और अब मिस राय की जरूरत के वक्त विद्या उस के पास थी—एक डाक्टर की तरह नहीं एक सास मा की तरह, एक बहन भाभी की तरह या सिर्फ ऐसे—जैसे इन्सान इन्सान की दवा होता है।

दोनों मे एक रिश्ता था—पर ऐसा रिश्ता जिसे कोई आखों से देखना न चाहे, कानों से सुनना न चाहे। पहली हिम्मत मिस राय की थी आखें मूदकर उस रिश्ते पर से लाँघ गयी थी, और सड़क पर खड़ी निराश्रित सी विद्या को उस का हाथ पकड़ कर अपने पास ले आयी थी। उसे घर का आसरा दिया था, खाने को रोटी, पहनने को कपड़ा और उस की गोद मे ली हुई बेटी को खेलने के लिए खिलौने और पढ़ने के लिए किताबें दी थी। फिर दूसरी हिम्मत विद्या ने की थी, घर मे झाडू देते हुए उस ने वह रिश्ता भी बुहारकर कूड़े म फेंक दिया था—जिसे कोई आँखों से देखना न चाहे, कानों से सुनना न चाहे

सो अब दोनों मे कोई रिश्ता नहीं था। दर्द से छुटकारा पाकर मिस राय ने पालने मे पड़े हुए बच्चे को देखा, फिर कमरे म चीजों को सँभालती समेटती

विद्या की ओर। फिर हँस-सी पड़ी —"विद्या ! तुझ यह दिन याद है, जब इस कमरे मे "

"मीतो जन्मी थी।"

"तब तूने इस कमरे का तेरह दिन का किराया दिया था "

दोनो की साँसें दोनो के होंठो के पास अड सी गयी

विद्या ने गम पानी की बोतल मिस राय के पैरो के पास रखी, फिर कम्बल को दोनों तरफ से मोडकर ऊपर मिस राय के कन्धों तक किया और फिर हँस सी दी— 'मैं ने तो सिर्फ तेरह दिन का किराया दिया था, आप ने तो सारी उम्र का "

कमरे का एक दरवाजा जिस राय के कमरे मे खुलता था, वहाँ मीतो सो रही थी। शायद किसी खडखडाहट से जाग गयी थी, या वैसे ही माँ की चारपाई खाली देखकर वह मुंदे दरवाजे को खोलकर इस कमरे मे आ गयी थी।

' मीतो ! इधर आ तुझे तेरा भाई दिखाऊँ " विद्या ने सिसकती सी मीतो का पल्ले से मुह पोछा और उसे पालने के पास ले गयी।

मिस राय चौंक गयी, उसे लगा जैसे मीतो की आँखें पालने के बच्चे के साथ अपना रिश्ता ढूढ रही हो

विद्या ने कैसे सहज स्वभाव से कह दिया था—"मीतो ! आ तुझे तेरा भाई दिखाऊँ " मिस राय का जी किया वह विद्या को मना कर दे कि आगे कभी वह मीतो को यह न कहे।

मीतो का भाई मिस राय ने पालने की तरफ देखा, तो उसे लगा, पालने मे पडा हुआ बच्चा उसका अपना बच्चा नही था—वह मीतो का भाई था, विद्या ने सच कहा था—वह मीतो का भाई था।

तब—यह मीतो इस पालने मे पडी हुई थी उस ने खुद मीतो को पालने मे से उठा कर उसके बाप की झोली मे डाल दिया था। कहा था—यह लो अपनी बेटी

आज—अगर वह पास होता, इसी तरह वह पालने म से इस लडके को उठाती, उस की झोली में डालती, कहती—यह लो अपना बेटा—वह यहाँ नही — पर जहाँ भी है—मीतो उस की बेटी है, यह लडका उसका बेटा है

उस के माथे पर पसीना आ गया

' विद्या "

"जी।"

"तू क्या सोच रही है ?"

' कुछ नही "

"इस लडके की शक्ल "

हो "

मिस राय को सबकुछ याद था—पर बेतरतीब सा। वह बहुत दिन उस के पास ही रह गया था, तब मिस राय को कहना पड़ा था कि उस ने उस के साथ ब्याह कर लिया था यह नर्सिंग होम फिर एक घर-सा बन गया था – फिर वह सारे केस अस्पताल में लेती थी - निजी तौर पर अपने पास नहीं दो बरस ढाई बरस वह कोई थीसिस लिखता रहा था

वह किताबों के वरकों में ही खुलता और सिमटता रहा या कभी घड़ी पल उस के जिस्म के मांस म

मिस राय का अग अग कच्चे पसीने से भीग गया – "स्टेशन पर खड़ा मुसाफिर जैसे अचानक जेब म हाथ डाले तो जेब में कुछ भी न हो एक सुबह नहीं था वह "

"विद्या ?'

"जी !"

"वह मीतो को खिलाया करता था ?"

"नहीं।"

'मीतो उस की बेटी थी ?"

"मेरे लिए, पर उस के लिए नहीं।"

"उसे बेटी बेटा कुछ नहीं चाहिए था ?"

"कुछ नहीं।"

मिस राय को परदेसी मोहरवाला वह खत याद आया, बस दो लाइनें "कभी वापिस लौटूंगा कि नहीं कुछ नहीं कह सकता। मेरा इ तजार न करना। ओह आह " मिस राय को ख्याल का एक गोता सा आया—'वह शायद विद्या से नहीं, मीतो क मुह म दौड़ा था फिर मीतो के भाई के मुँह से "

आप क्यों सोचती है इतना " विद्या न एक नम्रता म कहा।

'तू नहीं सोचती थी, जब वह तुझे छोडकर गया था।" मिस राय हँस सी भी पड़ी और रो भी दी

"सोचती थी पर उसे नहीं, एक मद क मुह को सोचती थी "

'ओह "

सिर की छत को सोचती थी, थाली की रोटी को सोचती थी '

मिस राय को उस दिन वाली विद्या याद आयी—जो मीतो के बाप की खबर सुनकर, एक दिन मिस राय के दरवाजे पर उसे ढूँढने आयी थी उसे नहीं सिर की छत का और थाली की रोटी को ढूढन आयी थी

"विद्या ?"

'जी।"

"निरी पूरी आप की।"

"और मीतो की?"

"सारी मेरी।"

मिस राय को फिर हँसी आ गयी—यह विद्या बडी कम बोलती थी, सिफ यह नही कि ~हनी कुछ नही थी, लगता था—सोचती भी नही। सोचन से भी जैसे स्वत~त्र हो गयी थी कैसे सहज मन से वह रही थी—लडके की शक्ल आप पर और लडकी की शक्ल मुझ पर

विद्या ने लडके को शहद चटाया, और फिर कम्बल मे लपटते हुए कहा—"बहुत ना सोचो, सो जाओ।'

मिस राय ने चाहा, जैसे विद्या ने कहा है वह सो जाये। सोने से एसे ख्याल नही आयेंगे—हमेशा आते है पर आज की तरह नही—यह क्या हो गया—किस तरह हो गया? शहर मे कितनी ही डाक्टर थी, पर यह कोई विद्या मरे पास क्या नही आयी थी? मरीज आते ह, चले जाते हैं पर यह विद्या

'यह भी तो मरीजो की तरह आयी थी, मरीजो की तरह चली गयी थी फिर?"

'इस का खाविंद भी ऐसे ही आया था जैसे हर औरत के साथ उस का मद आता है फिर? वह फिर भी आता रहा—कभी बच्ची की दवाई लेने कभी उस की मा की "

मिस राय ने तौलिये के पल्ले से माथा पोछा गदन और क धे भी कुछ गीले से हो गये थे, उ ह भी पोछा फिर तौलिये को सिरहाने के पास रखते हुए मिस राय को तौलिये मे से एक घरेलू औरत की ग ध आयी—पसीना बच्चा दूध

'वह शायद इसी ग ध से दूर जाना चाहता था इसीलिए विद्या क पास से चला गया था फिर एक दिन अचानक लौटा " पसीने की बूदों की तरह मिस राय का माथा ख्यालो से भी भीग गया—' वह हमेशा रेशम सरीखी कोमल बाते करता था पर वह रेशम के तार हाथो से टूटते नही थे मैं न भी इस रेशम के जाल को तोडना चाहा था पर मरे पैर, सब राहो सहित उस म लिपट गये "

मिस राय को अपने पैरो पर एक तरस सा आया—"यह पैर उस रेशम के जाल मे चले गये, पर राह तो बाहर रह जाते "

मिस राय ने थककर आँखें मूद ली—पर आखें और भी अ तस को झाँकने लगी—

"यह कैसा रिश्ता था—बिस्तर की तरह बिछा लिया, बिस्तरे की तरह समेट लिया, और फिर किसी रेलवे स्टेशन पर जैसे बिस्तरा ही खो गया

हो "

मिस राय को सबकुछ याद था—पर बतरतीब सा। वह बहुत दिन उस के पास ही रह गया था, तब मिस राय को कहना पड़ा था कि उस ने उस के साथ ब्याह कर लिया था वह नर्सिंग होम फिर एक घर-सा बन गया था – फिर वह सारे केस अस्पताल में लेती थी निजी तौर पर अपने पास नहीं दो बरस ढाई बरस वह कोई थीसिस लिखता रहा था

वह किताबों के वरकों में ही घुलता और सिमटता रहा या कभी पड़ी-पल उस के जिस्म के मांस में

मिस राय का अंग अंग कच्चे पसीने से भीग गया – "स्टेशन पर खड़ा मुसाफिर जैसे अचानक जब में हाथ डाले तो जेब में कुछ भी न हो एक सुबह नहीं था वह

'विद्या ?

'जी !

"वह मीतो को खिलाया करता था ?'

'नहीं।

'मीता उस की बेटी थी ?'

'मेरे लिए पर उस के लिए नहीं।"

'उसे बेटी बेटा कुछ नहीं चाहिए था ?'

"कुछ नहीं।"

मिस राय को परन्मी मोहरवाला वह ख़त याद आया, बस दो लाइनें "कभी वापिस लौटूंगा कि नहीं कुछ नहीं कह सकता। मेरा इन्तज़ार न करना। ओह आह मिस राय का ख़याल का एक गोता सा आया— 'वह शायद विद्या से नहीं, मीता के मुंह में दौड़ा था फिर मीतो के भाई के मुंह से "

आप क्या सोचती हैं इतना विद्या ने एक नम्रता से कहा।

तू नहीं सोचती थी, जब वह तुझे छोड़कर गया था ?" मिस राय हँस-सी भी पड़ी और रो भी दी

सोचती थी पर उस नहीं, एक मर्द के मुंह का सोचती थी "

'ओह "

'सिर की छत का सोचती थी थाली की रोटी को सोचती थी "

मिस राय को उस दिन वाली विद्या याद आयी—जो मीतो के बाप की खबर सुनकर, एक दिन मिस राय के दरवाज़े पर उसे ढूंढने आयी थी उसे नहीं सिर की छत का और थाली की रोटी को ढूंढ़ने आयी थी

'विद्या ?'

'जी।

"तेरा मद तू सोचती होगी मैं ने छीना था "
"नहीं आपने तो मेरा मद लौटाया है "
"वह किस तरह ?"
' सिर की छत आप ने दी और थाली की रोटी भी "
'पर वह मैं ने अपना गुनाह हलका करने के लिए "
' गुनाह तो उस का था और किसी औरत ने नहीं लौटाना था, आप ने लौटाया "
मिस राय का 'अह' फिसल कर परे जा खड़ा हुआ—उस के बिस्तरे से परे एक पालने के पास— इस लड़के का क्या करूँगी ?"
"मैं इसे पालूँगी एक औरत जैसे पालती है '
' और मैं ?'
'आप घर का मद "
रात दरवाजे के आगे से जोगी की फेरी की तरह गुज़र गयी थी। मिस राय शायद कुछ सो गयी थी, अब दिन उगनेवाला था। पर अँधेरे का कमण्डल उसी तरह कमरे में पड़ा हुआ था।
मीतो फिर अपने कमरे में से उठकर सिसकती सी इस कमरे में आ गयी थी। पालने का बच्चा शायद भूख से बिलख पड़ा था, विद्या स्टोव पर उस के लिए दूध गर्म करने लगी तो मिस राय को लगा—जैसे अँधेरे के कमण्डल में से दो बच्चे निकलकर इस कमरे में रो रहे हों ।

कल और आज

"हैरा !" मेरे मुह से निकला, तो मैं कितनी देर तक उसके नाम की विचित्रता मे खोया रहा।

"यह मेरा नाम मैंने खुद ही चुना है।" हैरा मेरी हैरानी पर हँस-सी पडी। फिर कहने लगी, "हैरा एक ग्रीक गाडेस का नाम था।"

लगा मैं भी हुन सा पडा था, कहा, "तू एक जीती जागती औरत की जगह, एक दिन इन किताबो के वर्को मे एक वर्का हो जायेगी "

"शायद " हैरा खिलखिलाकर हँस पडी, "वर्कों म से निकली हूँ, वर्कों म समा जाऊँगी। जिस तरह धरती मे से निकली हर चीज धरती म समा जाती है।"

'तो फिर जिन्दगी किस चीज का नाम है हैरा ?"

"धरती मे से निकलने, और फिर धरती म गिराने के बीच का समय।"

'यह बीच का समय '

"बहुत खूबसूरत है। बहुत भयानक है। है ना ! लगता है इस समय की तकदीर को हजारों बरस पहले धरती और अम्बर ने कल्पित कर लिया हो। पर अम्बर ने उसकी भयानकता को सोचा, और धरती ने उसकी खूबसूरती को "

'किस तरह ?"

यूरेनस अम्बर था, गाया धरती। उनके घर जब भी बच्चा जन्म लेता, यूरेनस उसको जिन्दगी की भयानकता से डरता, उसे फिर गाया की कोख म दबा देता। पर गाया की कल्पना बडी रँगीली थी, वह चाहती थी उसके बेटे बेटियाँ उसकी आँखो के आगे खेलें। इसलिए उस ने एक दिन अपनी कोख म छुप हुए अपने एक बेटे क्रोनस को उकसाया कि वह कायरो की तरह वहाँ न छुपा रहे, बाहर आकर अपने बाप से बदला ले। गाया ने उसे एक दराँती दी जिस से उस ने अपने बाप को हरा कर अपना राज्य कायम किया। धरती और अम्बर उसी दिन एक दूसरे से जुदा हुए थे '

"भयानक "

"लोग कहते हैं कोरिथनज से पहले धरती पर 'गिल्ट कलचर' नहीं थी, पर मैं सोचती हूँ कि जिस दिन गाया ने अपने बेटे को उसके बाप के खिलाफ उकसाया था, गुनाही सभ्यता उसी दिन शुरू हो गयी थी। मुझे पता है, फिर करोनस ने क्या किया?"

"क्या?"

'संस्कार भी शायद वहाँ से ही अस्तित्व में आ गये थे। करोनस को पता था कि उस ने बेटा होकर अपने बाप पर हाथ उठाया था, इसलिए उस के मन में यह संस्कार बैठ गया कि हर बेटा अपने बाप पर जरूर हाथ उठायेगा। इसलिए उसके घर भी जितने बेटे बेटियाँ जन्मे, उस ने भी वह सब धरती में छुपा दिये।"

'सो गुनाह का अहसास भी मनुष्य के साथ पैदा हो गया, और संस्कार भी। पर करोनस की औरत कौन थी? अम्बर की तो धरती थी "

'करोनस की बहन रहीया, जो उस के साथ ही धरती की कोख में दबी हुई थी, और वह भी उसकी स्वतन्त्रता हुई थी "

"पर तब मनुष्य की 'गिल्ट कलचर' में बहन से साथ ब्याह करने का गुनाह शायद नहीं था?"

नहीं, यह गुनाह, बहुत बरसों के बाद, गुनाहों की सूची में शामिल हुआ। भारतीय मिथहास में भी यम जुड़वा थे, बहन भाई, उन से ही दुनिया का अगला वंश बना। इजिपशियन मिथहास में भी आतुम पहला देवता था, जो अपनी इच्छा शक्ति से पैदा हुआ उस के मुँह में से उस का बेटा और उस का बेटी जन्मे, जिन के संयोग से धरती और आसमान भी बहन भाई थे, जिनके संयोग से चार बेटे जन्मे '

हाँ, तू बता रही थी कि करोनस ने अपने सब बेटे बेटियाँ धरती में दबा दिये

'पर मर्द मर्द है औरत औरत है, रहीया भी आखिर गाया की तरह उतावली हो गयी कि उसके बेटे बेटियाँ भी अगर ऐसे ही खत्म हो गये तो क्या बनेगा! आगे वह पाँच बच्चे धरती में दबा बैठी थी इसलिए जब उसे छठे बच्चे की आस हुई तो उसने क्रीट टापू पर जाकर एक गुफा में उस बच्चे को जन्म दिया, और उसके बाप को इस बेटे के बजाय एक पत्थर देकर कहने लगी कि इस बार उसकी कोख से पत्थर जन्मा है "

'सो वह बच्चा जीता रहा '

'वही बेटा होकर बाप से लड़ा और बाप को कैद करके खुद तख्त का मालिक बना।'

पर उसका वंश कैसे बढ़ा? वह अकेला था और धरती पर कोई औरत

नही थी ?"

हैरा मुसकरायी, "उस को माँ ने बताया कि उ न के पाँच भाई बहन धरती मे दबे हैं। सो उस न उन को ढढा। इन म ही उस की बहन हेरा थी, जिस के साथ उस ने ब्याह किया।'

"सो अम्बर दुनिया का पहला मद था, और धरती पहली औरत। ग्रीक बोली म यूरनस और गाया।"

'हाँ, हिब्रू मे धरती को अथमा कहते हैं इसीलिए धरती क पहले बेट का नाम आदम हुआ।'

"आदम और हव्वा।"

"हव्वा, खुदा के मुह मे से आती साँस। एशियायी विश्वास है कि यह अम्बर मे कत्ल हुए एक देवता के शरीर से गिरा हुआ खून था, पर यह हिब्रू विश्वास नही।"

शायद प्रारम्भिक लिवास एक ही हो पर वा ा के साथ-साथ जुदा हो गय हों "

'मुझे एक खयाल आया है,' हरा कुछ सोचती रही। फिर एक किताब उठाकर उस के सफे पलटती हुई कहने लगी, "इडियन माईथालोजी मे प्रारम्भिक देवता मित्र और वरुण थे। वरुण का सम्बन्ध अम्बर के साथ था, मित्र का धरती के साथ। ग्रीक माईथालाजी म खेती-बाडी की देवी दिमेतर है। 'दा लफ्ज धरती के लिए होता था, गाया की तरह। दा मेतर का अथ धरती माँ बनता है। शायद हिदुस्तान का देवता मित्र और यूनान का दिमेतर—मूल म एक ही रूप हैं "

'प्रारम्भ म मनुष्यो की एक सी जरूरतें थी एक सी हैरानियाँ इसलिए खयाल भी जरूर एक जसे होंगे "

"सब देवी-देवता उन के हैरान रयालो के चिह्न है, जसे ग्रीक देवी दिमतर की बेटी, धरती की हरियाली का चिह्न है। यह जब ब्याही गयी ।"

'इसका ब्याह किसके साथ हुआ था ?"

"अपने चाचा हेडस के साथ, ग्रीक मिथहास म चाचा के साथ ब्याह का आम जिक्र मिलता है। यह हेडस धरती म गहरी जगह पर रहता था। इसलिए ब्याह के बाद दिमेतर की बेटी को भी वही ले गया। माँ को बेटी कही नजर न आयी, इसीलिए उस ने बेटी को ढूढना शुरू किया। आखिर हेडस ने दिमेतर का उस की बेटी वापिस कर दी, पर उसे एक ऐसा बीज खिला दिया, कि जिस के पीछे उसे हर बरस का तीसरा हिस्सा फिर वही उस के पास रहने के लिए आना पडता था। बरस क दो हिस्स वह अपनी माँ क पास रहती थी। यह जाहिर है कि खेती जब बीजी जाती है तो कितन दिनों तक धरती मे अलोप हो जाती है। धीरे धीरे बीज पनपता है तो वह बाहर आती है। इस की पूजा तभी ग्रीक लोग

मक्की के सिट्टे से करते हैं ।"

"सो इसका धरती की तह मे जाकर अपने मद के पास रहना, और फिर वाहर अपनी माँ के पास रहने के लिए आना, खेती बाडी का पूरा अमल है । पर वह ड्रेडस ?"

"वह हमेशा धरती की तह म रहता है । इसलिए उसे सोने और चाँदी का देवता कहा जाता है —दोनो धातुएँ धरती के अन्दर होती हैं ।"

हैरा ! धरती अम्बर के फटने का मिथहास ग्रीक मिथहास है पर हिंदुस्तान के मिथहास मे इस सब कुछ का आरम्भिक रूप क्या था ?"

"एक सुनहरी अडा, आग का चिन्ह जो एक हज़ार बरस पानी पर तैरता रहा । यह अडा जब कुछ वक्त बाद टूट गया तो इस मे स पुरुष निकला । इसी ने अपने दो टुकडे कर के एक का नाम मर्द रखा, एक का औरत । साबुत अडा ग्रीक मिथहास की तरह धरती अम्बर के जुडे होने का चिन्ह था, और जो बीच मे से टूटकर, एक हिस्सा धरती बन गया, एक आसमान ।"

"सो पहले पुरुष पैदा हुआ था, चाहे बाद मे उस न अपने ही आधे टुकडे का नाम औरत रख दिया ।' मैं हँस पडा । मरे भीतर का मद हँस पडा । हैरा भी मुसकरायी । "पैदाइश तो एक ही समय हुई थी, इकट्ठी, सिफ उस के एक की जगह दो नाम बाद मे रखे गये । इसे इस तरह भी कहते हैं कि उगते सूरज मे से एक जोडा पैदा हुआ—यम, और उस की जुडवा बहन यमी । यही मनुष्य जाति के आदि मा और बाप थे ।"

"हैरा और उस के भाई की तरह ?"

"उस से भी पहले उन दोनो के माँ बाप रहीया और करोनस की तरह ।"

"सो मद और औरत जुडवाँ थे ?"

'अफरीकन मिथहास म भी दुनिया का पहला मद और दुनिया की पहली औरत जुडवा थे । औरत का नाम मावसी और मद का नाम लिया । माव चन्द्रमा था लिसा सूरज । अफरीकन मिथ का एक विश्वास यह भी है कि धरती ने अपने हाथो से कुम्हारिन की तरह मिट्टी के पुतले बनाये, खुदा ने अपने साँस मे से उन म सास भरा, और वह जीते जागते इन्सान बन गये ।"

मुझे लगा— मेरे जिस्म मे मेरा खून रेंग रहा था । मेरे सास मेरे होंठो म गम हो रहे थे, मैंने जल्दी से पूछा, 'हैरा ! मनुष्य ने जितने देवी देवताओ की कल्पना की सुख और आराम की तलाश मे से । पर साप ? उस से तो शायद मनुष्य को डर और मौत के सिवाय कुछ भी नही मिल सकता था । उस की पूजा क्यो ?"

"भारतीय विश्वास है कि शेषनाग पाताल का राजा है, इस के एक हज़ार सिर हैं । सात पाताल इस के सिर के आधार पर ही खडे हैं । अफरीकन विश्वास

है कि धरती अथाह पानी मे बह जाती, अगर उस के गिद एक साँप न पूछ को मुह मे पकडकर, और धरती के गिद घेरा बनाकर उस को थामा न होता। ग्रीक माईथालोजी में प्रो ग्रीक एक मिथ है कि एथना एक माँ देवी थी, यह सदा कुआरी रही। जिस तरह इस का अपना जन्म एक देवता के माथे मे से हुआ था, इसी तरह एक साँप इसका बेटा इसकी कोख मे से जन्मा।"

"यह जरूर गुनाही सभ्यता स पहन की बात होगी ?" मेरे जिस्म का राम रोम कान पडा। हैरा अपने ध्यान म बहे गयी, "साँप हर जगह जा सकता है—धरती की तह मे भी, दूर जगलों मे भी, पहाडों की शिखर पर भी, और नदी, नाले, दरिया और समुद्रा मे भी ।"

"और मनुष्य के अगों मे भी " मैं न चौंककर कहा।

हैरा जरा सा मुसकरायी, फिर कहन लगी, 'इसलिए इसकी शक्ति का शक्ति का सबसे बडा चिह्न समझ लेना स्वाभाविक बात लगती है। इसकी राह मे ना धरती रुकावट बनती है, ना पवत, ना समुद्र ।"

"और ना समय, ना उम्र " मैं अपने अन्दर रेंगते खून से अपने अग अग मे चढते एक खुमार मे कुछ मदहोश सा हो गया। हैरा को अपनी बाँहों मे कस लेने के लिए मैंने तडपकर अपनी बाँहें पसार दी—

पर हैरा जल्दी से पीछे हो गयी, और एक किताब की एक जिल्द का उठाकर उसके अन्दर चली गयी चार हजार वष पहले

मिथहास के अनन्त वर्कों म एक वर्का

हैरा की खुली आँखें—मेरी तरफ़ देखे जाती हैं

मैं अपने प्यासे होठो से उसके होंठो को देखता हू—खुदाया। उस के होठो मे साँस क्यों नही आता तू कहाँ चला गया ? अपने साँस मे से उसके अन्दर साँस क्यो नही भरता ?

सामने—कागज का एक वर्का मेरे जिस्म की तरह काँप रहा है यह शायद धरती मे से निकलने और फिर धरती मे समाने के बीच का समय है खूबसूरत भयानक

गौ का मालिक

उस के जिस्म का रग भूरा था थन एकदम काले नही थे, पर काली झलक मारते थे। इसलिए गाववालो न उस का नाम 'कपिला गौ' रखा था।

कपिला ने जितनी बार अपनी टूटी टागो पर भार डालकर उठने की कोशिश की, उतनी ही बार जोर से अर्राकर वह जमीन पर गिर गयी थी। अब उस मे और हिम्मत नही थी। हाफते हुए उस ने घास की सीलन को चाटन के लिए जीभ निकाली पर घास मे पानी की तरावट की जगह गरम, नमकीन लहू सा लगा।

उस ने रात को अपने साथ घास चरने के लिए आयी हुई बाकी नौ चितकबरी गायो को अपनी पथराई आखो से ढढने की कोशिश की, पर आस पास उसे दूर से बहुत दूर से केवल कुछ आवाजें सुनायी दी

एक कडकती आवाज थी, 'गऊ माता पर यह जुल्म ! ये हत्या करनेवाले पापी, हत्यारे !"

दूसरी चीखती आवाज थी, "जिस देश मे इस तरह पाप होता है, जहाँ कोई धम कम नही रहा, वह देश डूब जायगा "

और फिर पता नही कितनी आवाजें थी जिन्होने उगते हुए सूरज की रोशनी पर जैसे हमला बोल दिया हो

आवाजें पास भी हुई दूर भी, और फिर खामोशी छा गयी।

कपिला का जिस्म सुन्न होता जा रहा था, और खुर उस के गिर्द बह रहे खून मे डूब रहे थे। उसे लगा—जसे कुछ लोग फौजी वर्दियो म उस के पास घूम रहे हैं

वे लोग जिधर देख रहे थे कपिला न भी पथराती आखो से उधर देखा—दूर एक हवाई जहाज पडा हुआ था !

कोई कह रहा था, 'सर, मेरी दूसरी डाक नाइट फ्लाइग एक्सरसाइज थी, बिना लैंडिग लाइटस के 'टेक आफ' करने की ट्रेनिंग थी "

'फिर ?" किसी ने पूछा।

वह कह रहा था, "सर, मैं ने टेक ऑव करने से पहले के वाइटल एक्शस किये, और जहाज़ को रनवे पर लाइन-अप कर लिया। ब्रेकों पर छह हजार आर पी एम तक पावर खोली, और ब्रेक छोड दिये। और इजन पावर 'टेक आव' आर पी एम तक खोल दी। बाहर देखा तो रनवे-लाइटस के बिना कुछ नही दिख रहा था।"

'फिर ?" किसी ने पूछा।

"सर! हवाई जहाज रोल करता गया। स्पीड बढ़ रही थी। मिडल माकर पर स्पीड एक सौ पैंतीस नॉटस पर पहुँच गयी। मैं ने कण्ट्रोल स्टिक को अपनी तरफ़ खीचा। मं उस वक्त इसट्रुमेण्ट की तरफ देख रहा था। हवाई जहाज़ का नोज़ व्हील ऊपर को उठा, अचानक बहुत ज़ोर से झटके महसूस हुए।

'मैंन इजन एकदम बन्द कर दिय, और ब्रेक लगा दिय। इस तरह लगा जैस कोई जोर-जोर से हवाई जहाज को झकझोर रहा हो।

'मुझे खयाल आया कि कही जहाज का टायर न फट गया हो! जहाज रनवे से एक तरफ उतरकर दरख्तो की तरफ या गढ़ो म जा गिरा था। पर मैं रनवे की लाइट दोनों तरफ देख सकता था। इतन मे जहाज का दायाँ पहिया टूट गया और जहाज एकदम दायी तरफ मुडकर रनवे के नीचे उतर गया। रगड के कारण जहाज पर से चिनगारियाँ निकल रही थी।"

"उस वक्त नवीगेटर कहाँ था ?" कोई पूछ रहा था।

किसी ने उत्तर दिया था, "सर, मैं इस का नेवीगेटर हूँ। 'टेक ऑव' के समय मैं क्रैश सीट पर बैठा था। जहाज रुक गया तो मैं ने एन्टरेंस डोर को खालने की कोशिश की, पर वह डोर जाम हो चुका था। फिर मैं न देखा, जहाज का नोज-सैक्शन टूट चुका था, वहा एक बडा छेद हो गया था। मैं उसी छेद म स बाहर निकल गया।'

'तुम बाहर किस तरह निकले ?'

"सर, मेरे पास एक ही तरीका था कि मैं बाहर निकलने के लिए अपनी सीट-कैनोपी को जैटीसन करता। कैनोपी को खोलने के लिए मैं न बटन दबाया, वह कुछ ऊपर हुई, पर फिर अपनी जगह आ गयी। हवाई जहाज खडा था, इसलिए नीचे हवा का बहाव नही था। मैं जहाज मे कद था। हाथो से मैं ने कनापी को उठाने की कोशिश की, पर उठायी नही गयी। फिर मैं ने खडे होकर सिर के जोर से कैनोपी को उठान का प्रयत्न किया। वह ऊपर हुई तो हाथो के जोर से मैं ने उसे आगे करके बाहर छलाँग मार दी। बाहर आकर देखा कि हवाई जहाज के दाहिने विंग का एक हिस्सा टूटकर एक तरफ पडा हुआ था। रनवे के इद गिद खून-ही-खून था और गायें मरी पडी थी। हमे डर था कि शायद जहाज को आग लग जायेगी, इसलिए हम यहाँ से दौडकर दूर जा खडे हो गये।"

फिर आवाज आयी, "पर ये गउएँ यहाँ एयर फील्ड मे आयी किस तरह ?"

"सर, हम कुछ पता नही।"

"यह तफ्तीश होती रहेगी, पर इस वक्त तुम्ह बाहर खतरा है। तुम दोनो अपनी सीमा से बाहर न जाना। गाँव म हमारे खिलाफ जलूस निकल रहे हैं। मुजाहर हो रहे हैं।"

कपिला की जान टूट रही थी। पर अभी निकली न थी। आँखें कभी पल भर को खुलती, फिर मुद जाती।

रोशनी अँधेरे मे बदल रही थी। उसे लगा जसे उस के समीप कई लोग जमा हो गये हैं। कई आवाजें उस के कानो म पडी

"इन मरी हुई गउओ के मालिक कौन हैं ?"

कपिला को लगा—फिर एक खामोशी छा गयी है। कोई कुछ नहीं कह रहा है

"तुम लोग, जिन की भी गउएँ हैं, अपने-अपन नाम लिखा दो। तुम्हें तुम्हारी मरी हुई गउओ का मुआवजा दिया जायेगा।"

फिर बडी आवाजें आयी, जैसे सारे लोग एक साथ बोल रहे हों ।

"एक गऊ मेरी थी, हुरजू ! गोरी गऊ ! मेरा नाम धीरा है।"

"एक गऊ मेरी थी, हुरजू ! 'तीनथनी' नाम रखा है।"

' एक मेरी थी, हुजूर, 'लुडी' गऊ "

बहुत सी आवाजें थी, बहुत-से नाम, और फिर कोई कडकती आवाज आयी, "तुम ने बीस नाम लिखवा दिये हैं, पर गायें सिफ दस हैं। सब झूठ बोल रह हो।"

कपिला ने बुझती आखो को खोलकर अपने और अपने साथ की गायो के मालिको को पहचानने की कोशिश की। कुछ चेहरे पहचाने हुए भी लगे, पर कुछ एकदम अजनबी थे, पता नही कहाँ से आ गये थे कपिला ने अपने मालिक मोहना का चेहरा पहचाना। उसे अपने बछडे की बडी याद आयी और उस ने गले के सारे जोर से रँभाकर कुछ कहना चाहा, पर गले मे से आवाज न निकल सकी।

कडकती आवाज मे कोई कह रहा था "तुम इसीलिए अपने को गउओ का मालिक बता रहे हो कि तुम्ह मुआवजा मिलेगा। पर तुम मरी हुई गउओ के झूठे मालिक हो।"

फिर पता नही सब कहा चले गये। सारी आवाजें अँधर मे डूब गयी। पता नहीं कि यह रात का अँधेरा था या कपिला की आँखो मे फैला मौत का अँधरा

पता नही कब, कितनी देर बाद फिर कुछ आवाजें उभरी "बोल, चौकीदार ! ये गायें यहाँ एयर फील्ड मे किस तरह आयी ? पता लगा है कि घास चरने के

लिए ये यहाँ रोज रात को आती थी। इन के मालिक तुझे हर महीने रिश्वत देते थे तुझ पर रिश्वत का केस "

कपिला के होश हवाश गुम हो रहे थे। कोई बात कानो मे पडती थी, कोई नही। जिस्म से मक्खियाँ उडाने के लिए उस ने पूछ को हिलाना चाहा, पर पूँछ अब हिलती न थी

फिर एक आवाज आयी, "वे सब—शेरा, रखा और बीस लोग—कहाँ चले गये ? अब कोई किसी गाय का मालिक नही बनता, सब कह रहे हैं—हुजूर, ये गायें हमारी नही थी सिफ इसलिए कि उन्हे पता लग गया है कि हमारा जो पैंतीस लाख का हवाई जहाज तबाह हो गया है, उस का हरजाना गायो के मालिको को देना पडेगा "

कपिला ने अपने मालिक मोहना का स्मरण किया, पर वह आस-पास कही नहीं था

कपिला को याद आया—एक बार मोहना बीमार पडा था, राजी नही हो रहा था, तब एक सयाने ने उसे बताया था कि मगलवार को आटे का एक पेडा वह अपनी गऊ को अपने हाथ से खिलाया करे

कपिला के मरे मरे अगो को भी भूख सी लग आयी—आटे का पेडा ! मगलवार क्या आज मगलवार नही ? मोहना क्या मोहना उस का मालिक नही ? उस का कोई मालिक नही ?

कपिला की पथराती आँखो को एक हिलती सी चीज का झाँवला पडा—शायद मोहना आ गया ! अपनी मरती गऊ के जिस्म पर एक बार हाथ फेरने के लिए आ गया ?

उस ने फैली हुई आँखो से पहचानने की कोशिश की—उस के जिस्म पर कुछ छू रहा था—बहुत कोमल स्निग्ध मोहना के हाथो से भी कोमल और उस ने आंखो से गिरती पानी की आखिरी बूद से पहचाना—उस का बछडा पता नही कैसे वहाँ आ पहुँचा था, और अपनी जीभ से मरती हुई माँ का जिस्म चाट रहा था

तहखाना

हवा कुछ तेज सी हो गयी—
शायद इसलिए कि हवा में तुम्हारा सांस मिला हुआ था—
और, हवा के सीने मे खडे वक्षो के पत्ते धडकने लगे।

मैं हड्डियो और मास की एक इमारत कितनी ही देर चुप खडी रही।
फिर जैसे अपने आप ही अपने शरीर के बाहर आ गयी।
मैं ने बाहर के रास्ते की तरफ देखा
तुम उस बाहर के रास्ते पर जा रहे थे—
रास्ते पर कई लोग गुजरते हैं—पर इस तरह नही—
तुम तो उस रास्ते पर इस तरह चल रहे थे इस तरह खडे हो जाते थे—
मानो तुम्हारे पाव उस रास्ते से बाते कर रहे हो।
तुम ने पता नही मुझ से क्या कहा—
कि रास्ते की मिट्टी का रग गुलाबी-सा हो गया।
और फिर मैं कितने ही दिन उस रास्ते की तरफ देखती रही।

और फिर मैं ने एक दिन देखा—
तुम बाहर के दरवाजेवाले पेड के पास खडे हो—
उस पेड का खयाल है—कि उस दिन उस मे पहली बार 'बौर' पडा था—
और मैं कई दिन तक उस पेड के 'बौर' को देखती रही।
एक दिन बहुत तपती दोपहर थी —
तुम आये और बाहर के दरवाजे के पास इस तरह खडे हो गये—
मानो तुम उस दरवाजे से पानी के किसी कुएँ का रास्ता पूछ रहे हो।
दरवाजे ने चौंककर एक बार तुम्हारी तरफ देखा, फिर मेरी तरफ—
दरवाजे के भीतर घर की दहलीज थी—

तुम न दहलीज की तरफ देखा, वह सोयी जाग पडी।
और फिर मैं ने अन्दर जाकर घडे मे से पानी का एक कटोरा भरा
और तुम ने चुपचाप अन्दर आकर पानी का वह कटोरा पी लिया।

पता नही तुम कहाँ से आते थे और कहाँ चले जाते थे
सिफ इतना जानती थी कि मेरा घर तुम्हारे रास्ते मे पडता है।
और तुम जब भी वहाँ से गुजरते हो तुम्हे प्यास लगती है
और मैं पानी का कटोरा भरकर तुम्हारे सामने रख देती हू।

"मेरा नाम यूरेनस है!" एक दिन तुम ने पानी पीते हुए बताया था।

"मेरा नाम गाया!" मैं ने तुम्हारे हाथ से खाली कटोरा पकडते हुए कहा था।

और मुझे लगा था—
तुम्हारे आने के समय सदा कुछ पानी के कटोरे की तरह भरा होता था।
और तुम्हारे जाने के बाद वह सदा खाली कटोरे की तरह हो जाता था।
और उस से भी अधिक मेरे सूखे हुए गले की तरह हो जाता था—

मैं तिमजिली इमारत हूँ—
तुम ने सिफ एक मजिल देखी थी, दूसरी नहीं।
और एक दिन जब तुम आये—
पानी पीने के बाद तुम दूसरी मजिल की सीढियो की ओर देखने लगे।

तुम्हे शायद प्यास के साथ कुछ भूख भी थी और शायद तुम ने यह भी जान लिया था कि तन की तप्ति जैसी चीज दूसरी मजिल पर थी। तुमने सीढियों की ओर देखा तो मैं भी सीढियों की ओर देखने लगी।

और सीढियाँ चढते हुए जब तुम ने अपना हाथ दीवार पर रखा तो मेरी कोख म मे एक सिहरन सी उत्पन्न होकर अगो मे विलीन हो गयी।

सीढियाँ चढकर सामने—बेलों से ढका हुआ छज्जेदार बरामदा और उस के पास सोने का कमरा।

तुम बेलों से ढके छज्जेदार बरामदे मे खडे थे और मैं कोने मे आग सुलगाने लग गयी थी। फिर ठण्डी रोटी को गम करने लगी थी कि तुमपर नजर पडी—हे भगवान! यह क्या तुम्हारे चेहरे की ओर से सेंक आ रहा था शायद तुम्हारे चेहरे पर आग की लपटो के साये पड रहे थे। लकडियो मे से कुछ चिन-

गारियाँ उडकर मेरे पाँवो के पास आ पडी थीं। पाँव चौंक उठे थे। पर फिर मैं ने चिनगारियो को पाँवों के तलवो से मसल दिया था।

गम रोटी तुम्हारे आगे रखते हुए मेरा हाथ काँप रहा था।

और मैं ने देखा रोटी का निवाला तोडते हुए तुम्हारे हाथ की उँगलियाँ काँप रही थी।

मैं ने अपना कम्पन अपने शरीर मे दबा लिया। तुम मेरी ओर कितनी देर तक ताकते रहे, मानो मेरे शरीर मे उस छिपाये हुए कम्पन को खोज रहे हो।

शरीर के कम्पन को शायद आँख से नही खोजा जा सकता। तुम ने मुझे बाँहो मे लेकर गले से लगा लिया और अपने शरीर के कम्पन से मेरे शरीर के कम्पन को ढूढ लिया।

कोने म आग अभी भी जल रही थी और उस की लपटो के साये हमारे चेहरो पर पड रहे थे।

तिमजिली इमारत के नीचे एक तहखाना है जो किसी को दिखायी नहीं देता पर है, और उस दिन जब तुम चले गये, रात को मैंने अपनी आयु का बीसवा वष अपने शरीर से उतारकर उस तहखाने मे रख दिया। सोचती थी तुम जब चाहोगे तुम्हे निकालकर दिखाऊँगी—तुम्हारी अमानत।

आवाज की एक लकीर थी जो सीधी छाती मे से उठकर मेरे गले से गुज- रती थी और फिर मेरे होठो के पास आकर छोटी छोटी गोलाइयो मे बदल जाती थी—यू रे न स।

और मेरी यह आवाज मेरे होठो से निकलकर मेरे कानो में चली जाती थी और फिर कितनी ही देर मेरे कानो मे पडी रहती थी।

मेरे अन्दर एक जगह छाती मे, बायी ओर लगता था कि एक आग जलती है और उस के सेंक से इस आवाज की गोलाइयाँ फिर ढल जाती हैं। और फिर *ये मेरी नस नस से गुजरकर मेरी छाती मे चली आती हैं। और यह एक लकीर* सी फिर छाती मे से उठकर मेरे गले म से गुजरती है। और फिर होठों के पास आकर छोटी छोटी गोलाइयो म बदल जाती है— यू रे न स।

दिन और रात शायद इसी आवाज की तरह घूमते हैं—वे भी एक दायरे मे घूमते रहे, और यह आवाज भी।

और एक दिन तुम आये—बहुत दिन बाद- पर आये। और उस दिन तुम्हारे पाँव म न पहली मजिलवाला सकोच था न दूसरी मजिलवाला- तुम सीधे तीसरी मजिल पर आ गये, जहाँ मेरी सकडो किताबें—इन्तजार के दिनो की भाँति— बन्द ठण्डी और खामोश पडी हुई थी।

तुम कितनी ही दर चुप खडे रहे। लगा—जैसे किताबा मे एक किताब और बढ गयी थी। और फिर मैं न आग बढ़कर तुम्हारे हाथ को ऐसे छुआ मानो

कोई आहिस्ता से किताब की प्रति को उठाकर उस के पहले पष्ठ को देखता हो।

तुम हँस दिये और किताब के सारे पन्ने तुम ने अपनी आँखो म भर लिय और सारी इबारत होठो मे। और तुम ने मेरे हाठो को इस तरह चूमा मानो मुझे तुम्हारे होठो की सारी इबारत अपने होठो से पढनी हो।

तुम जसे सहज कदम तीसरी मजिल पर आये थे उसी तरह सहज कदम मेरा हाथ पकडे नीचे दूसरी मजिल पर आ गये। बेलोवाले छज्जेदार बरामदे मे से गुजरकर मेरे कमरे मे और फिर कितनी ही देर तक मखमल के विछौने को अपनी चौडी मर्दानी हथेलियो से दुलारते रहे।

पीछे बहुत लम्बे रीते दिन थे और आगे न जाने क्या था, पर उस वर्तमान म से एक क्षण उठा, जिस ने एक बाँह बीते हुए समय पर फैला दी, और दूसरी दूर तक आनेवाले समय पर और आगे पीछे जहा तक दष्टि जाती थी वह क्षण फैल गया था

उस से घडी पहले मास की एक दीवार तुम्हारे गिर्द थी और मास की एक दीवार मेरे गिद—और मास मिट्टी की दीवारें भी, पता नही कसे गिर गयीं और तुम मुझ से ऐसे मिले जैसे एक नदी का पानी दूसरी नदी के पानी से मिलता है—और उस घडी न जाने कितने हस उस पानी मे तैरते रहे।

नदियाँ जब सूख जाती हैं, फिर मिट्टी बन जाती हैं। लगा, तुम पास थे तो मैं नदी थी तुम चले गये तो मैं फिर धरती थी, मिट्टी थी, मास मिट्टी की एक औरत थी।

उस दिन और फिर हर रात को मुझे लगता रहा कि मेरी कोख मे से किसी के रोने की आवाज आती है।

फिर तुम एक अर्से तक आना ही भूल गये और एक रात—जब कितनी देर तक मेरी कोख से रोने की आवाज आती रही, तब मैं न अपनी कोख को उस तहखाने म जाकर रख दिया जहाँ कभी मैं ने अपन बीसवें बरस को रखा था।

कभी कभी मैं मोमबत्ती जलाकर उस तहखाने मे जाती थी। कितनी देर अपने बीसवें बरस की ओर देखती थी और कितनी देर अपनी कोख मे से किसी के रोने की आवाज सुनती थी, और सोचती थी कि अब जब तुम आओगे मैं तुम्हारा हाथ पकडकर तुम्हे इस तहखाने मैं ले आऊँगी।

फिर बरसो बाद—तुम एक बार आये, पर इस बार तुम अकेले नही थे—बाहर दरवाजे के पास खडे तुम्हारे कितने ही काम काज तुम्हारे साथ आये थे—तुम ने एक पल अन्दर आकर हडबडाकर पानी का कटोरा पिया और मैं ने जब हाथ पकडकर तहखाने की ओर इशारा किया तो तुम मेरे हाथ मे फिर कभी आने का इकरार पकडाकर चले गये।

तुम्हारे इकरार को मैं ने फूल की तरह नही पकडा था, अपनी मुट्ठ ने भीच लिया था, और वह कई बरस तक मेरी मुट्ठी मे खिला रहा।

पर मास की हथेली आखिर मास की होती है, यह मिट्टी की तरह हमेशा जवान नही रहती। इसपर समय की सिलवटें पड जाती है। और जब यह बजर होने लगती है ता इस मे उगा हुआ हर पत्ता मुरझा जाता है। तुम्हारे इकरार का फूल भी मुरझा गया और एक दिन मैं ने कापती हुई हथली से उस मुरझाये हुए फूल को ले जाकर तहखान के अँधेरे मे रख दिया।

तीसरी मजिल पर बहुत किताबें हैं—दुनिया भर के इतिहास की। पर उन मे एक किताब की कमी है। उन म मेरे तहखाने के इतिहास की कोई किताब नही

जिस ने दुनिया का इतिहास पढा है उसे पता है कि आज से हजारो साल पहले यूरेनस नाम का एक पुरुष था और गाया नाम की एक स्त्री, और गाया की कोख से जो भी बच्चा ज म लेता था यूरेनस उसे धरती की तह के नीचे दबा देता था और गाया को धरती म से हमेशा बच्चो के रोने की आवाज आती थी।

पर आज के इतिहास का किसी को पता नही चलेगा कि बीसवी शताब्दी मे भी एक गाया थी—उस न एक यूरेनस से प्यार किया था और अपनी उस कोख का एक तहखान मे रख दिया था जिस म से सदा एक बच्चे के रोने की आवाज आती थी

किसी को पता नही कि रोना केवल जनमे हुए बालक के गले से ही नही निकलता, अज मे बालक के गले से भी रोने की आवाज आती है।

पिघलती चट्टान

रात का चौथा पहर था। शायद अभी चौथा भी नहीं था, क्योंकि स्वयंभू पर्वत के शिखर पर बने हुए मन्दिर में पूजा करनेवाले लोग चौथे पहर इस रास्ते पर चलने लगते थे, लेकिन अभी इस पगडण्डी पर राजश्री के सिवा कोई नहीं था।

पथरीली चट्टानों को चीरती हुई यह पगडण्डी और इस पगडण्डी से बातें करते हुए राजश्री के पैर

राजश्री को लगा जैसे इस पगडण्डी की और उसके पैरों की बातें बहुत लम्बी थीं, बहुत पुरानी। शायद दो सौ बरस पुरानी

पर्वत के शिखर पर बने हुए मन्दिर की चौंध जब राजश्री की आँखों पर पड़ी, उसने आँखें झपककर मन्दिर की चौंध की तरफ से अपना मुँह परे कर लिया और मन्दिर के पिछवाड़े की तरफ बसीगा नदी के तरफ पर्वत से नीचे उतरती हुई पगडण्डी पर हो ली

अब भी पैरों के नीचे स्वयंभू पर्वत की पगडण्डी थी - पर चढ़ाई की तरफ जानेवाली नहीं, उतराई की तरफ उतरनेवाली

और अचानक राजश्री के पैर एक चट्टान के पास रुक गये, जैसे उस चट्टान को थामकर खड़े हो गये हों

'मैं कहाँ जा रही हूँ ?' राजश्री का दिल जोर से धड़का। यह बात उसने शायद अपने दिल से ही पूछी थी। दिल ने एक बार बसीगा नदी के उस रास्ते की तरफ देखा जो नदी के उस भयानक मोड़ की तरफ जाता था जहाँ पानी का प्रवाह हमेशा एक भँवर बना रहता था—और फिर हँसकर कहने लगा, 'वहीं ही, जहाँ दो सौ साल हुए तुम्हारे वंश की एक कुमारी रत्नराज लक्ष्मी गयी थी'

राजश्री ने कुछ घबराकर आस-पास की चट्टानों की तरफ देखा। ऊपर नीचे सब तरफ चट्टानें थीं—पत्थर की चट्टानें, और वहाँ इस रास्ते के सिवा कोई और रास्ता नहीं था।

उसकी आँखों में एक हसरत सी भर आयी—पैरों के लिए सिर्फ एक ही

रास्ता   कोई और रास्ता क्यो नही ?   इस पवत पर सिफ एक ही रास्ता क्यो बना ? '

राजश्री की पतली गोरी बांह जैसे एक चट्टान को हजारो बरस की नीद से जगाकर कुछ पूछ रही हो। पर वह चट्टान उस की बांहो को गले से लगाकर भी इस तरह चुप थी जसे उस के पास कोई उत्तर न हो।

"रक्सी !" पथरीले पवत म से एक नरम सी आवाज आयी।

राजश्री ने फूल की एक डण्डी की तरह कांपकर देखा—उस से थोडी दूर 'वहीं' खडा हुआ था जिस को वह पूरे चालीस दिन से रोज इस पवत की परिक्रमा म देखती थी।

"रक्सी ! मुझे दो बात करने की तो इजाजत दे दो !" वह, जो परे खडा हुआ था, वही खडा रहा, सिफ उस की आवाज धीरे से चलती हुई राजश्री के पास आयी।

राजश्री की सफेद धोती का रग जैसे रात के चौथे पहर मे भी गुलाबी सा हो गया पर उस ने धोती के सफेद रग की तरह उदास और ठण्डी आवाज म जवाब दिया—"मेरा नाम रक्सी नही।"

"मुझ नही जानना तुम्हारा नाम क्या है। मैं ने सिफ यहा की रकसी पी है और मुझे लगता है - तुम इस धरती की रकसी से भी बढकर कोई चीज हो "

"रकमी सिफ चावलो की शराब होती है।'

"पर अगर कोई धरती की मिट्टी की शराब भी हो सकती है, तो वह तुम "

"मैं "

'तुम्ह देखा, और मैं इस धरती से लौट नही सका "

तुम " राजश्री की आवाज रात के चौथे पहर की हवा की तरह और कोमल हो गयी और ठण्डी भी कहने लगी, "तुम जिस देश से आय हो वहाँ लौट जाओ नही तो "

"नही तो ?"

" परदेसी !"

'मेरा नाम कुमार है।"

अच्छा, राजकुमार !"

मैं राजकुमार नही हूँ सिफ एक साधारण कुमार हूँ।"

"पर इतिहास ' राजश्री कुछ कहत कहते रुक गयी, पर फिर सवेरे की पवन सरीखी कहने लगी, 'तुम्ह पता है मैं कौन हूँ ?'

कुमार ने किसी फूल की पहली खिलती हुई पत्ती की तरह कहा, "इस मिट्टी

की बेटी   इस मिट्टी की शराब !"

राजश्री ने अपनी पीठ को चट्टान का सहारा दे रखा था, पर उसे लगा—इस घड़ी हर सहारे को छोड़ना था। सीधे खड़े होकर, वह तन सी गयी और बोली, "मैं कुमारी हूँ। तुम्हे पता है हमारे देश मे कुमारी क्या होती है ?'

"नही।"

"नीचे—काठमाण्डू की वादी मे जाकर किसी से पूछो।"

"और किसी से नही, जो पूछना है सिफ तुम से।'

"मैं शाक्यवशी हूँ, बोधियो न वन्दनीय वश से, सदियो से।'

"फिर ?"

"मेरे वश म जिस लडकी के रूप म बत्तीस लक्षण हो   "

"वह मैं देख रहा हूँ—तुम मेरे स्वप्नो से भी सुन्दर   "

"पर मरे वश मे ऐसी लडकी जब सात वष की होती है, कुमारी चुनी जाती है।"

"क्या मतलब ?"

"तुम्हें शायद मेरी धरती का इतिहास नही मालूम। यहाँ का राजा सिफ राज का प्रतिनिधि होता था—राज असल म कुमारी का होता था। वह कुमारी घर मे रहती थी और राजा उस की पूजा करके राज काज सँभालता था।"

"पर वह पुरातन समय की बात होगी   "

"हाँ, पर एक तरह से अब भी है। अब भी मरे वश की लडकी उस समय तक कुमारी रहती है जब तक वह जवान नही होती।"

'फिर ?'

"वह जब जवान हो जाती है, कुमारी नही रहती। उस की जगह और कुमारी चुनी जाती है, और देश का राजा अब भी उस की पूजा करता है। कुमारी उस के माथे पर तिलक लगाती है   "

"पर तुम   अब   "

"अब मैं कुमारी नहीं हूँ, पर कुमारी थी।"

'मेरी मुहब्बत को तुम्हारे अतीत से कोई वास्ता नही है   तुम जो भी थी   '

"पर तुम्हें पता नही   एक बात बताऊँ ?   मैं आज इतनी रात के समय इस मन्दिर म पूजा करन आयी थी, पर नही कर सकी   '

"क्यो ?'

'मैं अपने शाक्य वश के बुद्ध से अपना आप मांगन आयी थी, मेरा अपना आप   " राजश्री ने चट्टान की तरफ देखा और कहा, 'कुमारी एक चट्टान होती है जो पिघलती नही, पर मैं   कई दिनो से लग रहा था, जैसे पिघल रही हूँ

तुम्हे देखकर रोज तुम्हे इस पर्वत की परिक्रमा मे देखती थी " राजश्री कुछ इस तरह उदास हो गयी जैसे सवेरा होने से पहले रात और गहरी हो जाती है। कहने लगी, "अपना आप अपने हाथो मे से छूटता जा रहा है पर मंदिर के पास आकर भी मंदिर के अन्दर नही गयी – सोचती हूँ अपने आप को हाथ मे पकड़े रखकर भी क्या करूँगी ?"

कुमार के पैर उस के दिल की तरह धड़क उठे। वह कुछ आगे बढ़कर राजश्री के पास खड़ा हो गया। फूल में से आती हुई महक की तरह धीरे से कहने लगा, "कुमारी !"

'कुमारी को मारी उम्र कुमारी रहना पड़ता है " राजश्री ने अपनी दोनो हथेलियो से अपने मुँह को एकाएक इस तरह ढक लिया जैसे पुष्प की गंध मे साम लेने से डरती हो। बानी 'यह कुमारी राज का कानून नही है—पर कोई आदमी किसी कुमारी से ब्याह नही करता—करे तो मर जाता है।"

'मुझे मरना मजूर है " कुमार ने दोनों हथेलियाँ राजश्री की दोनो हथेलियो पर, मानो फूलो की तरह अर्पण कर दी।

राजश्री ने काँपकर अपने मुँह के ऊपर से अपने हाथ हटा लिये। कहने लगी, "इस धरती पर पहले शक्ति-राज होता था। श्वेतकाली इस पृथ्वी की रानी थी जब इसपर हमला हुआ था। ज्योतिषियों ने कहा कि श्वेतकाली की बेटी कुमारी के हाथो अगर दुश्मन का जवान लड़का कत्ल हो तब इस धरती की विजय होगी। पर कुमारी ने जब उस हमलावर को देखा – उस को उस को " राजश्री ने पहाड़ी हवा की तरह काँपकर कुमार के मुँह की तरफ देखा, फिर एक चट्टान के पहलू मे होकर कहने लगी, 'मुहब्बत और दुश्मनी में लकीर नही खिंच पा रही थी, पर श्वेतकाली ने अपनी बेटी को हुक्म दिया कि वह उसे कत्ल करे। उस ने कत्ल किया। हमलावर हार गये। कुमारी को देश की रानी बनाया गया और उस का तख्त जहाँ सजाया गया वहाँ तख्त के नीचे उस आदमी के दोनो हाथ दोनो पैर, उस का खड्ग रखे गये जिस से उस ने प्यार किया था "

कुमार ने धीरे से राजश्री के पैरो के पास जमीन पर बैठते हुए अपने दोनों हाथ जमीन पर बिछा दिये और बोला 'अगर हर कुमारी की यही शर्त है तो '

राजश्री ने झुककर कुमार के दोनो हाथ छुए और अपने हाथो से सहारा देकर उन्हे ऊपर उठाया। कहने लगी, 'पर औरत की मुहब्बत राज के सिंहासन से भी बड़ी होती है। उस कुमारी ने राज किया, पर ब्याह नही किया। जिसे कत्ल किया था उसे ही याद करती रही। तब से ही कुमारीघर बना और तब से ही यह यकीन कि कोई कुमारी जिस के साथ भी ब्याह करेगी वह जीता नहीं

रहेगा "

'पर कुमारी ! एक समय का सच हर समय का सच नही होता "

'पता नही " राजश्री न पवत क पिछवाडे बसीगा नदी की तरफ नीचे जाते रास्ते की तरफ देखा। कहने लगी, 'मेरे वश म मेरी तरह एक रत्नराज लक्ष्मी हुई थी मेरी तरह ही कुमारी चुनी गयी हाथो म राजा के भेजे हुए कगन उस न पहने गले म लाल रग की चोली, और लाल रग का लहँगा, माथे पर सिन्दूर का लेप, और फिर जब मेरी ही तरह जवान हो गयी, उस को कुमारीघर स वापस उस की मा के घर भेज दिया गया—वह कई बरस इस स्वयभू पवन पर घूमती रही, और फिर एक दिन इस पवन क पिछवाडेवाली नदी म डूब गयी "

'क्या ?' कुमार न थिरकती हुई उँगलियो स राजश्री के क धे को छुआ।

"शायद शायद उस भी कोई कुमार अच्छा लगा था " राजश्री न कहा और थोडा सा हटकर पवत के नीचे उतर रहे रास्ते की ओर देखने लगी। फिर बोली, 'दो सौ साल स हमारे पैरो के लिए यही रास्ता बना हुआ है "

'नही नही " कुमार न आगे होकर राजश्री का हाथ पकड लिया।

राजश्री न एक नदी जैसा गहरा सास लिया, और कहने लगी, जब किसी लडकी को कुमारी बनाया जाता है, उस के माथे पर सोने चाँदी की एक आँख लगायी जाती है—तीसरी आँख ! उस हम दृष्टि कहते है। उस मे सचमुच कोई शक्ति होती है। उस से मन की ताकत कभी नही डोलती। पर अब अब इन दोनो साधारण आँखो स और कोई रास्ता दिखायी नही देता

कुमार न आगे होकर और राजश्री को बिलकुल अपने पास करके उस के माथे को चूम लिया, 'यह एक मद का सारा इकरार—तीसरी आँख !' और कुमार ने राजश्री को नदी की तरफ से हटाते हुए कहा, '*क्या इस तीसरी आँख* स भी और कोई रास्ता दिखायी नही देता ? जीने का रास्ता ?'

राजश्री न सामने एक पवत जैसे मद को देखा, फिर हथेली से उस की छाती को इस तरह छुआ जैसे जीने का रास्ता खोज रही हो। कहने लगी, "जब सात बरस की बच्ची को कुमारी चुनते हैं पहले सारी रात एक कमरे म जानवरो की खोपडियाँ रख के उस लडकी को उस कमरे म बन्द कर देते है। जो वह सारी रात न घबराये तो उस को कुमारी चुनते है पर एक समय आता है उम्र का तकाजा *जब वही कुमारी अपने आपसे घबरा जाती है*

कुमार न राजश्री को कसकर अपने गले से लगा लिया—और सवेरे का पहला उजाला हजारो चट्टानो के बीच खडी हुई एक पिघलती चट्टान को देखने लगा

अपना-अपना कर्ज

वह एक टूटी हुई बात की तरह थी।

किसी को मालूम नहीं कि वह कौन थी, कहाँ से आयी थी, कब आयी थी—शायद कुँआरी थी, शायद विधवा थी, क्योंकि मर्द के नाम पर उस की झुग्गी में कोई दो बरस का एक बच्चा था, पर वह उस का भी हो सकता था, और उस दूसरी उस में कुछ पक्की उम्र की औरत का भी।

नयी, बन रही बस्ती में, सभी नये थे। वे भी—जो वहाँ अपने घरों की नींवें खुदवा रहे थे और वे भी—जो इटें और चूना ढोकर दीवारें खड़ी कर रहे थे। सो, नीम के पेड़ों के नीचे बनी हुई उस की चाय की झुग्गी न जाने पेड़ों की आयु की थी या हाल में ही खुदी नींवों की आयु की।

लोगों को केवल यह मालूम था कि उस का नाम मूर्ति है, और उस की झुग्गी में सवेरे से लेकर शाम के पाँच बजे तक, मजदूरों की छुट्टी होने के समय तक, गरम दालचीनीवाली चाय मिलती है।

वह अक्सर मोटी मलमल की लाल धोती बाँधे रहती थी, और चूल्हे में जलती हुई लकड़ियों के पास बैठी हुई वह भी चूल्हे की आग जैसी मालूम होती थी।

वह दूसरी, उस से पक्की आयुवाली, जब धूप चढ़ती तब बच्चे को खिलाती हुई बाहर नीम के पेड़ों के नीचे बैठी हुई दिखायी देती, और जब शाम की ठण्ड उतरने लगती, तब बच्चे को आँचल में लपेटकर वह झुग्गी के भीतर जाती हुई दिखायी देती। चाय सिर्फ वह मूर्ति बनाती और बाँटती दिखायी देती थी।

राज बख्शी के घर की छतें जब पड़ चुकीं तब कुछ दिनों के लिए काम थम गया। पर बख्शी साहब इन दिनों भी नियम से आते थे और चौकीदार को भेज कर चायवाली झुग्गी से चाय मँगवाते थे तथा कुछ देर वहाँ अकेले कुर्सी पर बैठे रहते थे।

एक दिन वे कुछ देर से आये। बन रहे सब मकानों के चौकीदार अपनी-

अपनी झुग्गी में आग जलाकर कुछ पका-वका रहे थे और मूर्ति की झुग्गी में भी चाय के बरतन मांजे-धोये जा चुके थे, कि उन्होंने चौकीदार को चाय लाने के लिए भेजा।

मूर्ति ने नये सिरे से चाय का पानी रखा। चौकीदार शायद उन के लिए सिगरेट लेने चला गया था। मूर्ति ने चाय बना कर उस का इन्तज़ार किया, फिर स्वयं जाकर बख्शी साहब को चाय दे दी।

नीम के पेड़ो से झड़े हुए पत्ते जमीन पर कुछ इस तरह हिल रहे थे जैसे मिट्टी को टटोल टटोलकर अपनी जड़ें खोज रहे हो।

राज बख्शी ने चाय का प्याला हाथ मे लेते हुए मूर्ति की ओर देखा था, पर फिर आँखें परे कर ली थीं। फिर भी आँखो में से कुछ उतरकर अभी तक मूर्ति के मुँह पर हिल रहा था

वे चाय पी रहे थे। मूर्ति परे कुछ दूर पर सध्या के सिमटते हुए उजाले की तरह खड़ी रही।

"मूर्ति !" अचानक उस की आवाज ऐसे आयी जैसे हवा के एक झोंके से नीम के पड़ से बहुत सारे पत्ते झड़ पड़े हो।

"जी !" न जाने क्यो मूर्ति को लगा जसे उस की आवाज पीपल के पत्ते की तरह काँप गयी थी। शायद उन तक पहुँची भी नही थी। होठो मे ही काँप गयी थी।

'तुम यहाँ कब आयी ? किस तरह ?'

मूर्ति ने परे शून्य म देखा परे, वहाँ तक—जो आँखा की पहुँच से बाहर था, फिर कहा, "काफिले के साथ, जब सारे लोग आये थे।"

राज बख्शी ने नज़र भरकर उस की ओर देखा। गोधूलि के इस समय मे वह काँसे की मूर्ति की भाँति अचल खड़ी लगती थी।

उन्हें खयाल आया—पिछले वष इस धरती का विभाजन एक और गजनवी की तरह आया था जिस ने न जाने कितनी मूर्तियाँ तोड़ी थी, और यह एक मूर्ति न जाने किस मन्दिर म से उठाकर यहाँ एक झुग्गी मे लाकर रख दी थी

पर साथ ही राज बख्शी को डूबते हुए सूरज की लाली जसा एक तीखा-सा एहसास हुआ—लोग सदा अपने घर बार, रोजगार, और रहन सहन जसी हैसियतो से ही पहचाने जाते हैं—ये सब चीजें जब उन के पास से खो जायें, उन के चेहरे भी खो जाते हैं। पिछले बरस उन्होन कई कम्प और काफिले देखे थे—अपनी-अपनी हैसियत के बिना लोगो के अपने चेहरे भी खोये हुए थे। सब कुछ एक भट्ठी म गलकर एक जैसा हो गया जान पडता था—चेहरे भी, आवाजें भी, खयाल भी

'पर यह मूर्ति किस तरह साबुन की साबुत ' राज बख्शी को मूर्ति के घर बार या उस की हैसियत का पता नहीं था, पर एक गहरा सा एहसास था —'वह जो भी थी—वही है। उस की किसी मंदिर या महल मे रहनेवाली अगर य०ा इस झुग्गी मे भी है '

मूर्ति उसी तरह एक दूरी पर खडी हुई थी। चाय का प्याला उसी तरह राज बख्शी के हाथो मे थमा हुआ था। शायद वह खाली प्याला लेने क लिए खडी हुई थी, पर पावो के आगे बिछी हुई खामोशी को न वह तोड सकती थी, न

फिर अचनक खामोशी टूट गयी। चौकीदार के पैरो की आवाज न तोड दी। राज बख्शी ने खाली प्याला चौकीदार को थमा दिया, चौकीदार स मूर्ति ने ले लिया, और पीछे झुग्गी की ओर मुडती हुई मूर्ति को चौकीदार ने जब दो आने दिये, व चीनी की प्लेट मे इस तरह छनक जसे दो टुकडो मे टूटी हुइ खामोशी से कुछ और ककड गिर आय हो

राज बख्शी अगले दिन भी आये, उस से अगले दिन भी, उस से अगले दिन भी, पर उन्हाने स्वय झुग्गी के पास जाकर चाय मागी, पी, और दो टुकडो म टूटी हुई खामोशी फिर एक साबुत टुकडा मालूम हाने लगी।

कुछ आवाजें ऐसी होती हैं—जो खामोशी के बदन म लहू की नसा की तरह चलती हैं, और उन क कारण वह चुप बडी जीती जागती मालूम पडती है। एक दिन चाय बनात समय मूर्ति के पास खेलते हुए बच्चे की आवाज भी ऐसी ही थी।

'यह बच्चा ?"

'मेरा है।"

यह सवाल और जवाब भी लहू की हरकत की तरह थे। ठण्डी खामोशी कुछ तपते हुए रग की हो गयी।

'वह ? राज बख्शी ने अन्दर झुग्गी म बठी हुई दूसरी औरत की ओर देखा।

जवाब मे मूर्ति न पहले बच्चे से कहा, "जा, अन्दर अपनी मा के पास जा।" फिर बख्शी साहब स कहा, 'वह मेर बच्चे की माँ है।

खामोशी जैसे जार जोर स धडकन लगी।

अगले दो दिन राज बख्शी के कानो मे मूर्ति की आवाज पत्तो की शाँ शाँ की तरह चलती रही। उन्होने उस की झुग्गी से रोज चाय पी, पर फिर कुछ पूछा नहीं।

मूर्ति के शब्द सीधे थे—"यह मेरा बच्चा है, वह मेरे बच्चे की माँ है।" पर अथ सिफ पत्तो की शाँ शाँ जसे थे, पकड म नहीं आत थे।

यह नयी बन रही बस्ती शहर से आठ मील दूर थी, जिस के आस पास अभी कोई मण्डी या बाजार नही बना था। शहर से इस बस्ती तक एक बस चलती थी, पर दिन भर म शायद तीन बार। यह बस न मिलने पर आठ मील पैदल चलने के सिवा कोई चारा नही था।

इसी रास्ते पर एक दिन राज बख्शी ने मूर्ति को शहर से बस्ती की ओर आते हुए देखा। मूर्ति के दोनो हाथो मे कुछ गठरियाँ, पोटलियाँ थी। राज बख्शी ने अपनी गाडी रोक ली।

"बस दो मिनट का फरक पड गया, बस निकल गयी।" मूर्ति ने गाडी म गठरियाँ, पोटलियाँ रखते हुए कहा, "चाय की पत्ती, चीनी और और लटरम-पटरम लेने के लिए कभी कभी शहर जाना पडता है।"

राज बख्शी ने गाडी को पहले से दूसरे, और दूसरे से तीसरे गियर म डालते हुए धीरे से कहा, "बहुत मेहनत करनी पडती है ?"

सध्या समय की इठलाती हवा की भाँति मूर्ति हँस दी, बोली कुछ नही।

'मूर्ति! तुम्हारे बच्चे का बाप ?" राज बख्शी के मुह से अधूरा सा वाक्य निकला जो उन्हें कुछ गलत-सा भी लगा। फिर उसी वाक्य को कुछ ठीक करते हुए उन्होंने कहा, 'तुम्हारा आदमी वही फसादो के दिनो मे "

"हाँ, बलवाइयो ने मार दिया।"

अगली खामोशी मे फिर उस हँसनेवाले मूर्ति के शब्द राज बख्शी के कानो मे शाँ शाँ करने लगे

कुछ देर बाद वह सके, "लोग अजीब अजीब बातें करते हैं "

'मेरी ?" मूर्ति ने पूछा, पर आवाज मे फिक्र जसा कुछ नही था।

"वह दूसरी औरत ?'

"उस का नाम रुक्मणी है—वह मेरी रुकी बहन है।"

'यह बच्चा उस का है ?"

"हाँ।"

"तुम्हारा नही ?"

'मेरा भी।"

राज बख्शी हँस पडे, "ज्यादा किसका है ? '

"ज्यादा उस का है।" मूर्ति भी हँस सी पडी।

राज बख्शी एक पल की खामोशी के बाद गम्भीर से स्वर मे कहने लगे, "असल मे तुमे दोनो मे एक को औरत होना चाहिए था, एक को मद।"

"हाँ, पर तुम्हारी जगह यह खयाल रब को आना चाहिए था!" मूर्ति ने कहा तो राज बख्शी ने कुछ चौंककर मूर्ति की ओर देखा। फिर कहने लगे, "तुम्ह मालूम है, लोग क्या कहते हैं ?"

"क्या ?'

'एक दिन मेरे ठेकेदार का मुंशी किसी से कह रहा था "

"क्या ?'

'कि तुम्हें फिर से ब्याह करने में कोई एतराज नहीं अगर " राज बख्शी इस अगर' के आगे कुछ नहीं कह सके।

मूर्ति ने ही कहा, "लोग ठीक कहते हैं, मैंने ही कहा था—अगर कोई मेरे और रक्की दोनों के साथ ब्याह करे मैं कर सकती हूँ।'

"अजीब बात है।"

"नहीं, अजीब नहीं है।" मूर्ति सामने खाली सड़क की ओर देखती रही, फिर कहने लगी, 'साहब! अभी तुम ने कहा था—हम दोनों में, मुझ में और रक्की में, एक को औरत होना चाहिए था, एक को मर्द यह सच बात कही थी। मुझे रक्की जैसा मर्द चाहिए था।'

"पर इस वक्त तो तुम उस के लिए काम करती हो, कमाती हो, मर्द की तरह "

'मैं ऐसे ही ठीक हूँ।"

'पर वह बात ?"

आखिर मैं मर्द नहीं, मर्द की जगह हूँ मर्द की तरह "

राज बख्शी ने सोचा नहीं था कि वे कभी मूर्ति से बातें करके इस तरह आश्चर्य में पड़ जायेंगे। वे हँस से दिये। मानो हँसी से आश्चर्य को ढँक रहे हों।

मूर्ति ने ही कहा, "असल में मर्द न उसे मिला, न मुझे।"

उस का आदमी भी फसादों के दिनों में ?"

'वही जिसे बलवाइयों ने मार दिया ।'

मूर्ति!' राज बख्शी झड़ते हुए पत्तोंवाली टहनी की तरह खाली खाली से मूर्ति की ओर देखने लगे। फिर कहने लगे, "वह आदमी तुम्हारा भी उस का भी ? यह बच्चा तुम्हारा भी, उस का भी ?"

"हाँ, साहब!" मूर्ति हँस पड़ी, 'रब एक बात पर चूक गया तो फिर चूकता ही गया।"

राज बख्शी ने गाड़ी की चाल को हलका किया, कहा बस्ती आनेवाली है, मूर्ति! अगर तुम्हें एतराज न हो, मैं यहाँ कुछ देर गाड़ी रोक दूँ।"

मूर्ति की खामोशी बख्शी साहब से ज्यादा मूर्ति को अजीब लगी, कहने लगी, "हाँ साहब! मैं ने सुना है तुम अच्छे आदमी हो।"

'और क्या सुना है?" राज बख्शी गाड़ी रोककर पूछने लगे।

और और यह कि तुम्हारे कोई बच्चा नहीं है '

"बच्चे की माँ भी नही !" राज बख्शी हँसने लगे ।

"हाँ, कोई भी नही ।"

"कहाँ सुना था ?"

"तुम्हारे ठेकेदार, चौकीदार—सब मेरे पास चाय पीने आते हैं ।"

"वे ये बातें भी करते हैं ?"

"सिर्फ उस दिन कर रहे थे—जिस दिन तुम्हारे मकान की नींव रखी गयी थी। तुम ने उस दिन न हवन किया, न मोतीचूर के लड्डू बाँटे। वे सब लोग तुम्हारी इज्जत करते हैं सिर्फ सोचते हैं—तुम्हारा कोई नही, इसलिए तुम्हे मकान की खुशी नही "

राज बख्शी बहुत देर तक चुप रहे ।

लगा—उन मे और मूर्ति मे बात करनेवाली सडक टूट गयी है ।

पर यह सडक शायद वह थी—जो राज बख्शी की अपनी जिन्दगी की ओर मुडती थी। वे उधर से पलटकर उस दूसरी सडक की ओर देखने लगे, जो मूर्ति की जिन्दगी की ओर जाती थी। कहने लगे, "अच्छा, मूर्ति वह ! दूसरी औरत रक्की मद नही थी, इसलिए तुम्हें किसी और से ब्याह करना पडा "

"हाँ, साहब !" मूर्ति हँस सी पडी, "उस की मेरी किस्मत एक ही थी, इसलिए हमारा ब्याह भी एक ही जने के साथ हुआ और हमारा दोनो का बच्चा भी एक ही है।"

बाहर कुछ बूदाबाँदी होने लगी थी। राज बख्शी ने धुधले-से हो रहे विंडस्क्रीन की ओर देखा वाइपर चलाया, और कहने लगे, "दोनो का ब्याह तो एक आदमी के साथ हो सकता है, लेकिन बच्चा किस तरह ?"

"तन और मन म कितना सा फरक होता है, साहब ? बस यह समझ लो—मन सिर्फ उस का था, मेरा नही था, मेरा सिर्फ तन था ।'

शायद 'हूँ' जसा कुछ राज बख्शी ने कहा, फिर कितनी ही देर चुप रहे।

अचानक बोले, "उस समय एक आदमी से ब्याह करना शायद कोई मजबूरी थी, या सिर्फ जरूरत थी, पर अब क्यों ?"

"अब भी जरूरत है वह नही, पर जरूरत है।"

"वह जरूरत कैसी थी ?'

'वह जरूरत सिर्फ पैसे की थी। वह आदमी बहुत अमीर था, उस के कई भट्ठे थे, और लोग कहते थे—उस के भट्ठों मे मिट्टी की इटें नही, सोने की इटें पकती हैं।'

"फिर ?'

"उस की पहली औरत रक्की थी। नही, पहली नही, पहली मर गयी थी—शायद उस ने उसे निकाल दिया था। मैं ने उसे नही देखा। पर सुना था कि वह

सु दर नही थी, इसलिए "

"सु दर नही थी, इसलिए मर गयी ?" राज बख्शी ने हँसकर कहा।

' हा, साहब ! किसी को दुतकारते रहो, वह मरे जैसा हो जाता है, कभी मर भी जाता है "

"फिर ?"

' फिर उस ने रुक्की से ब्याह कर लिया। रुक्की अपने दिनो म बहुत सु दर थी। पर कई बरस बीत गय "

"रुक्की के बच्चा नही हुआ ?"

"हा, साहब ! लोग कहते थे—भटठोवाले को पहली का शाप लगा हुआ है। कहत थे, जब पहली मरी थी, उसे बच्चे की उम्मीद थी, पर इस आदमी न एक दिन उसे इतना मारा कि वह भी और उस का बच्चा भी ' मूर्ति पुरानी बात याद करके अब भी काप-सी गयी।

"सो, उस ने बच्चे की खातिर फिर तुम से ब्याह किया ?"

"हा साहब ! बच्चे की खातिर। मेरे मा बाप से उस ने मुझे एक तरह से मोल खरीदा था।"

"और आखिर वह शाप टूट गया "

"नही हां " मूर्ति की आवाज़ काप गयी। फिर वह कापती हुई आवाज को सँभालते हुए बोली ' पर, साहब, तुम यह सब बात क्यो पूछ रहे हो ? मैं तुम्हे यह सब कुछ सब कुछ क्यो बताऊँ ?'

राज बख्शी एकटक मूर्ति के मुह की ओर देखते रहे। फिर कहने लग, ' मैं तुम्हे छ महीने से देख रहा हूँ, न जाने क्यो मैं यहाँ रोज़ सिफ मकान की खातिर नही आता शायद शायद " राज बख्शी का दाहिना हाथ खडी हुई गाडी के स्टीयरिंग व्हील पर था उन्होने बाया हाथ मूर्ति के कन्धे पर रखा, ' मैं *तुम्हारे साथ ब्याह कर सकता हूँ।'*

' साहब ! तुम ? ' मूर्ति के सवाल मे जितनी हैरानी थी, आवाज़ में उतनी नही थी। फिर धीरे से कहन लगी —' अपने ऊपर ज़ोर होता है, पर सपनो पर नही होता। मैं न तीन बार सवेर उठकर अपने आपको झिडका है मुझे तीन रात, साहब तुम्हारा सपना आता रहा '

"मुझे साहब नही, कुछ और कहा करो।"

मूर्ति चुप रही।

"अच्छा, यह बताओ—अगर मैं ऐसे सोचू, तुम मेरे लिए भी वही शत लगाओगी ?"

"वही रुक्कीवाली ? हां।"

राज बख्शी ने मूर्ति के कन्धे से हाथ हटा लिया और उसे भी स्टीयरिंग व्हील

पर रख लिया।

बाहर बूँदें तेज हो गयी थी। विंड स्क्रीन पर धुंध गहरी होती जाती थी। पर वाइपर पूरे जोर से धुंध को पोछता जा रहा था।

"साहब! बख्शी साहब! यह बात पक्की है कि जहाँ मैं रहूँगी, वहीं रक्खी। जिस हाल मे मैं रहूँगी, उसी हाल मे वह" मूर्ति कह रही थी कि बख्शी साहब ने बात काटी, "इस से मुझे कोई इन्कार नही है। वह पूरे सुख मे, पूरे आराम म रहेगी।"

मूर्ति हँस सी पड़ी, "किस तरह?"

बख्शी साहब को मूर्ति का 'किस तरह' अर्थहीन सा लगा, पर कहने लगे "पूरी इज्जत के साथ, आराम के साथ, घर की माँ की तरह, बहन की तरह"

मूर्ति ने सामने विंड-स्क्रीन की ओर देखा। वाइपर चल रहा था फिर भी हथेली से उस की धुंध को पोछते हुए बोली, "बस यही बात है, बख्शी साहब! तुम चाहे कितने ही अमीर हो, वह घर म माँ की तरह रहेगी तो माँ नही होगी, सिर्फ माँ की तरह होगी। बहन नही होगी, बहन की तरह होगी। यह 'तरह' बहुत दिन नही चलती।'

राज बख्शी को लगा—इस वक्त शायद मूर्ति के कंधे को उन के हाथ की जरूरत नही थी। लेकिन उन के हाथ को मूर्ति के कंधे की जरूरत थी। उन्होंने बायाँ हाथ, कुछ काँपता सा, मूर्ति के कंधे पर रख दिया।

मूर्ति कहने लगी, "पर जब कोई औरत किसी की बीवी होती है, वह बीवी होती है बीवी की तरह नही होती।"

'हाँ, मूर्ति!' राज बख्शी ने दलील मान ली, पर कहा, "तुम्हे जिन्दगी मे पहली बार भी जो कुछ मिला, उस के साथ बाँटना पडा, अब दूसरी बार तुम जान बूझकर"

'यह किसी भी औरत के लिए स्वाभाविक नही होता नहीं न?"

"नहीं।"

'पर उस ने जो कुछ मेरे साथ बाँटा है, वह भी स्वाभाविक नही था"

"वह मजबूरी थी।'

'सौतन कहलानेवाली औरत जो कुछ बँटाती है, मैं उस की बात नही करती"

"फिर?"

मूर्ति कितनी ही देर चुप रही जैसे कुछ बताने या न बताने का अपने साथ फैसला कर रही हो। फिर एक बार उस ने एक गहरी निगाह से बख्शी साहब के मुँह की ओर देखा। लगा—उन के मुँह पर कुछ ऐसा सच था जो उस ने पहले कभी किसी मर्द के मुँह पर नहीं देखा था। सोच लिया कि उस का अपना सच

चाहे कैसा ही था, पर सच के बदले म सिफ सच देना है ।

कहने लगी—"मेरे लिये भटठोवाले की मांग बहुत दिनों स थी। मां-बाप गरीब थे, पर इतन नही कि मुझे बेचे बिना उन का काम न चलता। जो जवान लडका मुझे अच्छा लगता था उस न मुझ स ब्याह करने का इकरार कर रखा था। गरीब था, पर जवान था " मूर्ति न कडवी सी हँसी का एक घूट पिया, फिर कहने लगी—"उस से ही मुझे दिन चढ़ गये थे '

राज बख्शी चुप थे, मूर्ति भी चुप सी हो गयी। फिर कहन लगी, 'यह हमारी औरतो की जबान समझ गये हो न ?'

राज बख्शी न 'हां' म सिर हिलाया। मूर्ति कहने लगी, 'पर जब उसे पता चला, वह ब्याह करने से मुकर गया। सा, किसी मद का बदला किसी मन से लेने के लिए मैं ने मां बाप से कह दिया कि मैं भटठावाले स ब्याह करूँगी।'

"सो यह बच्चा '

"यह भटठोवाले का नहीं है। तुम ने कहा था— आखिर उस का शाप टूट गया, तो मेरे मुह से निकला था—'नही।' फिर 'हां भी कहा था, पर पहल सच ही मुह से निकला था "

"इस बात का रुक्मी को पता है ?"

"सिफ उसे ही पता है, और किसी को नही।"

"पर उस न " राज बख्शी सोचने लगे कि रुक्मी का उस समय मूर्ति से जो रिश्ता था, उस का मूर्ति को हर तरह से बचाये रखना सचमुच स्वाभाविक नही था।

मूर्ति कह रही थी, "इस बच्चे को मैं न मन की पूरी नफरत के साथ जनमा था पर रुक्मी ने मन के पूरे प्यार से इस पाला है। उस समय तक रुक्मी को कुछ पता नही था। वह भीतर से अच्छे मन की है—वह अपने तन की हसरत मेरे तन मे से " मूर्ति की आवाज बाहर दूर तक बरसती हुई बूदो मे जसे भीग गयी।

"फिर ?"

"फिर वह कमीना—जिस का यह बच्चा था, और भी कमीनेपन पर उतर आया। मुझे धमकाकर उस ने दो बार मुझ स पांच पाच सौ रुपये लिय। मैं ने तग आकर सोचा कि मैं भी मर जाऊ और उस के बच्चे को भी जीता न रहन दू। उस की फिर धमकी आयी थी मैं पागल सी हो गयी थी—एक दिन बच्चे को उठाया, आधी रात के वक्त, और बाहर कुए की ओर चल दी। बच्चा रुक्मी के पास सोया करता था, मैं ने उसे सोते हुए उठाया था, सो रुक्मी जाग गयी थी। मुझे तब पता चला जब वह भी मेरे पीछे पीछे कुए की ओर दौडती हुई आयी। वहा मैं ने अपने मुंह से सब कुछ बता दिया पर वह अपन बाप की बेटी, मुझे

अपने गले से लगाकर वापस लौटा लायी "

"उस ने उस आदमी को कुछ नहीं बताया? उस भट्ठावाले को?" राज बख्शी हैरान थे।

'बिलकुल नहीं। उसे सचमुच ही बच्चे से मोह हो गया था सिर्फ इतना ही नहीं, उस ने सब की चोरी से उसे बुला भेजा जो मुझे आये दिन धमकाता था। उस से कहने लगी कि भट्ठोवाले को सब कुछ मालूम है सो धमकी का कोई फायदा नहीं है, उलटे भट्ठोवाले ने उसे मरवाने का बन्दोबस्त किया हुआ है—सो अगर वह जान की सलामती चाहता है तो फिर कभी इस गाँव से न गुजरे '

राज बख्शी की आँखों म पानी-सा भर आया। उन्होंने कुर्सी के हल्के अँधेरे मे बठी हुई लडकी को दूर से देखा हुआ था, पर आँखों मे उस की पहचान नहीं थी। उन्होंने मूर्ति की ओर देखा—लगा, मूर्ति के मुह पर जो एक लौ है वह केवल उस की जवानी की नहीं है, वह उस लडकी की भी है—जिसे उन्होंने देखा नहीं था। मूर्ति कह रही थी, "यह बच्चा तो सचमुच म उस का है, मरा तो यू ही एक बहाना है "

राज बख्शी की हथेली मूर्ति के कन्धे पर बस सी गयी। मूर्ति कहने लगी, "मुझे पता है मेरी उम्र छोटी है, इसलिए सब मरी तरफ ताकते हैं पर अब जो हक उसे नहीं मिलेगा, मैं भी नहीं लूगी "

राज बख्शी बहुत देर तक चुप रहे। फिर हथेली से मूर्ति का मुह अपनी ओर मोडकर अपने सामने करके कहने लगे, "तुम्हे भी जिन्दगी का एक कर्ज चुकाना है मुझे भी जिन्दगी का एक कर्ज चुकाना है " मूर्ति चुप पूरे ध्यान से उन की ओर देखती रही। राज बख्शी एक गहरा सांस लेकर कहने लगे, 'मुझे अपने सगे भाई का कर्ज चुकाना है मेरी भाभी ने—मुझे अच्छी तरह होश भी नहीं था—जब मेरे साथ सम्बन्ध जोड लिया था म बहुत अनजान था, कुछ नहीं समझा था बस, शरीर जलता रहा, और मैं दिन दिन बुझता रहा '

मूर्ति जान समझ सकी या नहीं, राज बख्शी ने ध्यान स उस की ओर देखा, फिर कहा, "उस का जिस साल ब्याह हुआ था, उसे उसी साल कोई रोग हो गया था यह बात मुझे बरसों बाद मालूम हुई, पर उसे तब से ही यह पता था और उस ने बच्चे की आस छोड दी थी बहुत छोटे घर से आयी थी सब कुछ अपने पास रखने के लिए सोचती थी कि मैं भी उस के बस मे रहूं म कई बरस तक एक रुकी हुई घडी म वक्त देखता रहा मैं न समझा नहीं भाई का दुख भी देखा, लेकिन मैं ने समझा नहीं मुझे अपने भाई का बहुत बडा कर्ज चुकाना है, मूर्ति!'

मूर्ति—जो रोज काँसे की मूर्ति के समान दिखायी देती थी—हाड मास की औरत की तरह काँप उठी।

राज बख्शी कह रहे थे "अब उस से कोई वास्ता नहीं है, पर मेरे भाई का

चाहे कैसा ही था, पर सच के ब८

वहने लगी—"मेरे लिये भ

गरीब थे, पर इतने नही कि मुझे

लडका मुझे अच्छा लगता था उर

था। गरीब था, पर जवान था

फिर कहने लगी—"उस से ही मुः

राज बख्शी चुप थे, मूर्ति भी र

औरतो की जवान समझ गये हो न

राज बख्शी ने 'हा' म सिर हि

चला वह ब्याह करने से मुकर गया

लेने के लिए मैं ने मा बाप से कह ।

"तो यह बच्चा '

"यह भट्ठोवाले का नही है। तुम

गया, तो मेरे मुह से निकला था—'नह

ही मुह से निकला था

"इस बात का रुक्की को पता है '

"सिफ उसे ही पता है, और किसी व

'पर उस न " राज बख्शी सोचन

जो रिश्ता था, उस का मूर्ति को हर तरह ,

नही था।

मूर्ति कह रही थी, "इस बच्चे को मैं ने म

था, पर रुक्की ने मन के पूरे प्यार से इसे पाला ,

पता नही था। वह भीतर से अच्छे मन की है—

तन मे से " मूर्ति की आवाज बाहर दूर तक ब,

गयी।

"फिर ?"

'फिर वह कमीना—जिस का यह बच्चा था, और

आया। मुझे धमकाकर उस ने दो बार मुझ स पाँच पाच सौ

आकर सोचा कि मैं भी मर जाऊ और उस के बच्चे को भी

उस की फिर धमकी आयी थी मैं पागल सी हो गयी थी—ए

उठाया आधी रात क वक्त, और बाहर कुए की ओर चल दी।

पास सोया करता था, मैं ने उसे सोते हुए उठाया था सो रुक्की उ

मुझे तब पता चला जब वह भी मेरे पीछे-पीछे कुए की ओर दौडती ,

वहाँ मै न अपने मुह से सब कुछ बता दिया पर वह अपने बाप की

धन्नो

वह तब की बात है —जब सफेद रुपया चाँदी का हुआ करता था। और पंजाब के गाँवों में अठन्नी को 'धेली' कहते थे और चवन्नी को 'पौली'। और धन्नो मौसी कहा करती थी "औरत को तो परमात्मा ने शुरू से ही 'धेली' बनाया है। रुपया डबल तो कोई करमोंवाली होती है जिसे मरज़ी का मर्द जुड़ जाये। पर वह तो न किसी ने देखी है न सुनी है। घर घर 'धेलियाँ' ही 'धेलियाँ' हैं—बस दो-तीन 'पौलियाँ' जनीं, और दुनिया से लद गयीं..."

'कितना मुँह फटा हुआ है धन्नो का!" कभी कोई पीठ पीछे कह देती, पर धन्नो के सामने गाँव की सब औरतें दाँतों के नीचे जीभ दिये रखतीं। सब को याद था कि एक बार शाह की केसरो ने यही बात धन्नो के मुँह पर कही थी तो धन्नो ने उस की वह गत बनायी थी कि भगवान ही बचाये! कहा, 'तुम सिले मुँहवालियाँ अच्छी हो, और मैं फटे मुँहवाली बुरी? 'धेली' तो रात को, बहन केसरो, तेरी भी वैसी ही टूटती है, जैसे मेरी!' फिर धन्नो ने गाँव की एक एक औरत का ढका ढँका खोल दिया था—'आये तो सही लम्बड़ों की ईशरी मेरे सामने जिस के बूढ़े खसम से उसकी 'धेली' नहीं टूटती तो वह साँड जैसे देवर से 'धेली' तुड़वाती है! और चौधियों की बलवन्तो किसे भूली हुई है जो कै करती हुई डोली में से उतरी थी और सात महीनों में लड़का जन धरा! और वड़ैयों की करनारो जिसने चार बरसों से मर्द का मुँह नहीं देखा था और मेथी के बीज काढ़ काढ़ पीती थी!..."

और धन्नो को औरतें कज़ैल नहीं लगी थी। उस ने उन की अछूती कुँवारियों के नाम गिन दिये थे 'तू बड़ी सयानी है। अपनी छल्लो को सँभाल, जो साधुओं के जगतारे से 'धेली' तुड़वाने को फिरती है। और तू धरमातमन! यह ढ जितनी बीरो का तू ब्याह-बरोठी क्यों नहीं करती जो गुरुद्वारे के भाई से कंघा घिसाती है? और और..."

गाँव की औरतें त्राहि त्राहि कर उठी थीं। और फिर कभी कोई धन्नो के

शक उसी तरह है   मै बीते हुए बरस लौटाकर नही दे सकता   पर आगे से   "

"आगे से ?" मूर्ति के होठ धीरे से हिले।

मेह की बौछार से चारो ओर धुंध फली हुई थी। राज बख्शी गाडी के अन्दरवाले हल्के से उजाले मे मूर्ति के मुंह की ओर देखते रहे, फिर कहने लगे, "आओ, मूर्ति ! हम अपने अपने कर्ज़ उतार दें।"

"तुम   " मूर्ति उनकी ओर देखकर कुछ हैरान सी अपनी ओर देखने लगी, जैसे अपने आप को उनकी आखो से देख रही हो

राज बख्शी ने 'हा' मे सिर हिलाया।

मूर्ति को शायद अभी इस 'हा' की एक बार और जरूरत थी, मुह से निकला, "और रुक्की भी   ?"

राज बख्शी ने मूर्ति के माथे के पास सिर झुकाकर उस के माथे को ऐसे चूमा कि मूर्ति को लगा—उन की 'हां' उस के विश्वास जितनी हो गयी थी।

धन्नो

यह तब की बात है—जब सफ़ेद रुपया चाँदी का हुआ करता था। और पंजाब के गाँवों में अठन्नी को 'धेली' कहते थे और चवन्नी को 'पोली'। और धन्नो मौसी कहा करती थी, "औरत को तो परमात्मा ने शुरू से ही 'धेली' बनाया है। रुपया डबल तो कोई करमोंवाली होती है जिसे मरज़ी का मर्द जुड़ जाये। पर वह तो न किसी ने देखी है न सुनी है। घर घर धेलियाँ ही 'धेलियाँ' हैं—बस दो-तीन 'पोलियाँ' जनीं, और दुनिया से लद गयीं..."

'कितना मुँह फटा हुआ है धन्नो का!" कभी कोई पीठ पीछे कह देती, पर धन्नो के सामने गाँव की सब औरतें दाँतों के नीचे जीभ दिये रखती। सब को याद था कि एक बार शाह की केसरो ने यही बात धन्नो के मुँह पर कही थी तो धन्नो ने उस की वह गत बनायी थी कि भगवान ही बचाये! कहा, 'तुम सिले मुँहवालियाँ अच्छी हो, और मैं फटे मुँहवाली बुरी? धेली' तो रात को, बहन केसरो तेरी भी वैसी ही टूटती है, जैसे मेरी!" फिर धन्नो ने गाँव की एक एक औरत का ढका-ढँका खोल दिया था—'आये तो सही लम्बड़ों की ईशरो मेरे सामने जिस के बूढ़े खसम से उसकी 'धेली' नहीं टूटती तो वह साँड जैसे देवर से 'धेली' तुड़वाती है! और चौमियों की बलवन्तो किसे भूली हुई है जो काँपती हुई डोली में से उतरी थी और सात महीनों में लड़का जन धरा! और वड़यों की करतारो, जिसने चार बरसों से मर्द का मुँह नहीं देखा था और मेथी के बीज काढ़-काढ़ पीती थी!..."

और धन्नो को औरतें कज़ैल नहीं लगी थी। उस ने उन की अछूती कुवारियों के नाम गिन दिये थे, 'तू बड़ी सयानी है। अपनी छल्लो को सँभाल, जो साधुओं के जगतारे से 'धेली' तुड़वाने को फिरती है। और तू धरमात्मन! यह डेढ़ जितनी बीरो का तू ब्याह-बरोठी क्यों नहीं करती जो गुरुद्वारे के भाई से कंघा घिसाती है? और... और..."

गाँव की औरतें त्राहि त्राहि कर उठी थीं। और फिर कभी कोई धन्नो के

शक उसी तरह है   मैं बीत हुए बरस लौटाकर नहीं दे सकता   पर आगे से   "

"आगे से ?" मूर्ति के होंठ धीरे से हिले।

मेंह की बौछार से चारों ओर धुंध फैली हुई थी। राज बख्शी गाडी के अन्दरवाले हल्के से उजाले में मूर्ति के मुँह की ओर देखते रहे, फिर कहने लगे, "आओ, मूर्ति ! हम अपने अपने कर्ज़ उतार दें।"

"तुम   " मूर्ति उनकी ओर देखकर कुछ हैरान सी अपनी ओर देखने लगी, जैसे अपने आप को उनकी आखों से देख रही हो

राज बख्शी ने 'हा' में सिर हिलाया।

मूर्ति को शायद अभी इस 'हा' की एक बार और जरूरत थी, मुह से निकला, "और स्वर्ण भी   ?"

राज बख्शी ने मूर्ति के माथे के पास सिर झुकाकर उस के माथे को ऐसे चूमा कि मूर्ति को लगा—उन की 'हाँ' उस के विश्वास जितनी हो गयी थी।

धन्नो

यह तब की बात है—जब सफेद रुपया चाँदी का हुआ करता था। और पंजाब के गाँवों में अठन्नी को 'धेली' कहते थे और चवन्नी को 'पौली'। और धन्नो मौसी कहा करती थी "औरत को तो परमात्मा ने शुरू से ही 'धेली' बनाया है। रुपया डबल तो कोई करमोंवाली होती है जिसे मरजी का मर्द जुड़ जाये। पर वह तो न किसी ने देखी है न सुनी है। घर घर 'धेलियाँ' ही 'धेलियाँ' हैं—बस दो-तीन 'पौलियाँ' जनीं, और दुनिया से लद गयीं..."

'कितना मुँह फटा हुआ है धन्नो का!" कभी कोई पीठ पीछे कह देती, पर धन्नो के सामने गाँव की सब औरतें दाँतों के नीचे जीभ दिये रखतीं। सब को याद था कि एक बार शाह की केसरो ने यही बात धन्नो के मुँह पर कही थी तो धन्नो ने उस की वह गत बनायी थी कि भगवान ही बचाये! कहा, 'तुम सिले मुँहवालियाँ अच्छी हो, और मैं फटे मुँहवाली बुरी? धेली' तो रात को, बहन केसरो, तेरी भी वैसी ही टूटती है जैसे मेरी!' फिर धन्नो ने गाँव की एक एक औरत का दबा ढँका खोल दिया था—'आये तो सही लम्बड़ों की ईशरो मेरे सामने जिस के बूढ़े खसम से उसकी धेली नहीं टूटती तो वह साँड जैसे देवर से धेली तुड़वाती है! और चौमियों की बलवन्तो किसे भूली हुई है जो कै करती हुई डोली में से उतरी थी और सात महीनों में लड़का जन धरा! और वड़यों की करतारो जिसने चार बरसों से मर्द का मुँह नहीं देखा था और मेथी के बीज काढ़ काढ़ पीती थी!..."

और धन्नो को औरतें कुँवारी लड़कियों... और धन्नो को औरतें कजैल नहीं लगी थीं। उस ने उन की अछूती कुँवारियों के नाम गिन दिये थे, 'तू बड़ी सयानी है। अपनी छल्लो को सँभाल, जो साधुओं के जगतारे से धेली' तुड़वाने को फिरती है। और तू धरमात्मन! यह इ जितनी बीरो का तू ब्याह-बरोठी क्यों नहीं करती जो गुरुद्वारे के भाई से कन्धा घिसाती है? और और..."

गाँव की औरतें त्राहि त्राहि कर उठी थीं। और फिर कभी कोई धन्नो के

मह पर नहीं बोली थी। वैसे भी उन्हें धन्नो से गरज रहती थी। लड़के या लड़कियों के गले पड़ जाते — वह सौ बनफशे और सौंफ उबालकर पिलाती, पर महीना-महीना बच्चों के गले पड़े रहते। बच्चों के गले में से ग्रास न लँघता, हुलहुलाकर बुखार चढ़ जाते और औरतें हारकर उँगली पकड़े धन्नो के दरवाज़े जातीं — 'ले रे, मौसी को कह तेरा गला मले !" और धन्नो गर्म घी में एक अँगूठा और एक उँगली डुबोकर जिस बच्चे का गला मलती वह दूसरे दिन भला-चंगा हो जाता।

"गले मदाना भले !' धन्नो हँसकर जब कहती तो पता लगता था कि धन्नो ग्रनी मग्गाना के जनमी पली थी। वैसे न किसी ने उस के माँ बाप देखे थे न कोई सगा सम्बन्धी।

सिर्फ दन्तकथा थी कि धन्नो खाते पीते घर की बेटी थी। उसकी जवानी बाढ़ की तरह चढ़ी थी, और उस उम्र में उस ने किसी से दिल लगा लिया था। पर उस के माँ बाप के घर से भगाकर ले आनेवाला कोई बैंली पटठा था जो दस बीस दिन उस के साथ खा खेलकर उसे कहीं बेचने को फिर रहा था, कि धन्नो ने उसे मुह फाड़कर कह दिया था, "जो पल्ले में बँधी 'धेली' तुड़वाकर ही रोटी खानी है, तो जाती बार तेरी जेब क्यों भरकर जाऊँ ?' और वह दबंग होकर उसे पर के काँटे की तरह निकाल आयी थी। सो न उस के जननेवाले उस के रहे थे, न उस को लानेवाला।

और फिर कहते हैं कि किसी गाँव के ज़मींदार ने उसपर रीझकर उसे अपने घर बैठा लिया पर उस के बेटों ने जब घर में डण्डा खड़काया तो उस ने बेटों से चोरी छिपे दूर गाँव में दो बीघे ज़मीन खरीद कर उस के नाम लिखवा दी थी और उसे एक अलग घर छनवा दिया था। जब तक जीता रहा उसकी खैर-खबर लेता रहा। पर अब वह भी, मुद्दत हुई, मर गया था और धन्नो छड़ी-छाँटी अपने बूते पर जी रही थी।

वैसे चाहे वह अपने मुह से कह लेती थी, "काहे की चिन्ता है, बेबे ! 'धेली' पल्ले बाँध रखी है कमी बेशी आयी तो तुड़वा लूँगी।" पर एक बार एक मूछ फूटते ने जब धन्नो की बाँह पर चिकोटी भरकर कहा था 'धेली तो दिखा कितनी खरी है !' तो धन्नो ने उस के गले के कण्ठे को हाथ में पकड़कर कहा था 'चल दिखाऊँ—तेरी माँ के घाघरे में है !'"

और उस के बाद गाँव के किसी भी मर्द की क्या मजाल जो धन्नो को आँख उठाकर देख जाये।

और धन्नो स्वर्ग होकर जीती थी।

अब उम्र चाहे ढल रही थी, पर उस की नाक की लौंग अब भी उसके स्वभाव की तरह चमक मार रही थी। आँखों के सामने खेतों में हल चलवाती थी

और खन्नानी होकर भी जाटनियो की सी अकड मे जीती थी।

एक बार धन्नो को मियादी बुखार आ गया। वैसे इक्कीसवें दिन टूट गया था, पर धन्नो का अपनी उम्र पर से भरोसा उठ गया था। वह एक दिन पास के शहर गयी और अपनी ज़मीन का कागज़ पत्र ले गयी। बात उड गयी कि धन्नो ने अपनी ज़मीन की वसीयत कर दी है।

"अरी, किस के नाम लिखी है?" गाँव की औरतें आपस मे खुसर पुसर करती, पर धन्नो से कुछ भी पूछने का उन मे जिगरा न था।

एक दिन गाँव की एक लडकी सेमो को कुछ जिगरा हुआ। पिछले दिनो एक शाम को सेमो खेत से लौट रही थी कि नम्बरदार का नशे म चूर बेटा उस को राह म घेरकर खडा हो गया था। उधर कही धन्नो भी गुजर रही थी कि सेमो ने उसे देख कर ज़ोर से आवाज़ दी थी—"मौसी धन्नो!" धन्नो छाती तानकर जा पहुँची थी और लडकी अछूती घर पहुँच गयी थी।

सेमो ने उसी दिन के दावे पर एक दिन धन्नो से पूछा—"अरी मौसी! सुना है, तूने अपनी ज़मीन किसी के नाम कर दी है।"

धन्नो खीझ गयी, "अरी भानजी, तुझे मौसी की याद आ गयी! तेरी माँ और मैं जुडवाँ जनमी थी, तभी मैं तेरी मौसी लगी ना !"

और सेमो के मुह की हवाइयाँ उड गयी। वह हकला सी गयी और कहने लगी—"गुस्सा क्यो करती है, मौसी! लोग कहते हैं भइ कि तूने अपनी ज़मीन गुरुद्वारे को दान दे दी है। मैं ने तो सीधे सुभा पूछा था। वसे तो तू ने नेक काम किया है।"

धन्नो आग बबूला हो गयी, "गुरुद्वारे का भाई मुसटण्डा पहले ही बहुतेरे हलवे खाता है—उस के हलवे-पूरी के लिए तुम्हारी माँयें जो हैं। यह तुम्हारी मौसी ऐसे नेक काम नही करती।"

और सेमो कान लपटकर चली गयी थी। और फिर धन्नो से कुछ पूछन का किसी का हिया न हुआ।

धन्नो ने जैसे अपनी किस्मत बूझ ली थी शायद अपना उम्र के दिन भी बूझ लिये थे। उसे कुछ दिन बाद फिर मियादी बुखार चढ आया। इस बार सारे गाव को उस के बचने की आसा न रही।

एक दिन गाँव की एक सयानी उम्र की औरत ने हिम्मत बटोरी। इस औरत को गाँववाले जीवी भगतानी कहते थे। छोटी उम्र मे विधवा हो गयी थी, और बडे जत सत से जीती थी। उसपर अभी तक किसी ने उँगली नहीं रखी थी।

यह जीवी भगतानी जब धन्नो की खबर लेने आयी तो धीरे से धन्नो से कहने लगी, "जो गुज़री सो गुज़री, धन्नो! अब आखिरी वक्त पछतावा कर

ले, तो भी कुछ नही बिगडा। कहते हैं, जिस ने कहा था राम का नाम नहीं लेना, उसके मुह से 'मरा मरा' कहाकर अगलों ने उसे परमात्मा से बख्शा लिया। "

धन्नो मरती मरती भी हँस पडी। कहने लगी "भगतानी, क्यो मेरी चिन्ता करती है! धमराज को हिसाब देना है, दे लूगी। यह 'थैली' जो पल्ले बाँधी हुई है—धमराज से कहूँगी ले खुलवा ले, और हिसाब चुकता कर।"

और जीवी भगतानी कानो मे उँगलियाँ देती धन्नो के पास से लौट आयी थी।

और फिर दूसरी दोपहर को धन्नो मर गयी।

धन्नो के चौथे के बाद जब गाँव के लोगो ने उस का सन्दूक खोला उस मे से उस की वसीयत का कागज मिला। धन्नो ने अपनी जमीन गाँव की पाठशाला के नाम कर दी थी, और लिखा हुआ था 'मेरी एक ही चाह है कि चार अक्षर लडकियो के पेट म पड जायें तो उन की जिन्दगी ख्वार न हो।'

सात सौ बीस कदम

अँधेरा कदम कदम गहरा होता जा रहा था

उस ने नीले रग की कमीज पहनी हुई थी जो सलेटी रग की पैंट की तरह अँधेरे के रग की होकर—अब अँधेरे का एक हिस्सा बन गयी थी। पर उस के पाँव मे सफेद कनवस के बूट थे और सिर्फ उन का ही अलग अस्तित्व बाकी था

वह बराबर उन्ह ही देखे जा रहा था इस तरह जसे वह आप एक जगह पर खडा हो और उस के पाँव बराबर चलत जा रहे हो

और उसे लगा वह अपने पाँवो को सिर्फ देख ही नही रहा है, उन की हर हरकत को गिन भी रहा है उस के होंठो पर इस समय सात सौ बीस की गिनती थी

पाँवो के नीचे की पक्की सडक न जाने कब खत्म हो गयी थी और कच्ची सडक न जाने कब शुरू हो गयी थी—शायद घर से निकलते ही उस ने हर कदम का गिनना शुरू कर दिया था—और इस वक्त उस के होठो पर सात सौ बीस की गिनती थी

गिनती रुक गयी—क्योंकि पाँवो के आगे रास्ता रुक गया था सामने और दायें-बायें—सिर्फ पेड थे, और पाँवो के नीचे—पेडो के बीच मे से गुजरती हुई कच्ची पगडण्डी भी यहाँ खत्म हो गयी थी वहाँ पेडो के घेरे म एक पुराना बना कुआँ था जिसके पास आकर वह कच्ची पगडण्डी रुक गयी थी

शायद हवा तज चल रही थी—पडो के पत्ते हिल रह थे और आपस मे टकरा रह थे, मानो कितनी ही धीमो धीमी आवाजें पत्तो पर बठी हो

नही—मानो कितनी ही आवाजें पेडों पर उगी हुई हों

पडो से झडकर कुछ पत्ते उस क पाँवो के पास गिर गये। उसके पाँव जैसे हिलन स रह गये हो। पत्ते पाँवों के पास गिरकर भी हिल रहे थे, मानो उस के पाँवो से कुछ धीरे धीरे कह रहे हो।

अपने पावो की तरफ झुका हुआ उन का सिर और नीचे को झुक गया, और पाँवो की तरफ से उठती हुई कितनी ही आवाजें उस के कानो से गुजरकर उसके मस्तिष्क मे घूमने लगी

इन आवाजो मे एक आवाज किसी एक जानवर के पर्वा की तरह उसपर झपट रही थी

पहले गालियो की शक्ल मे, और फिर

उस के शरीर की एक एक हड्डी दुखने लगी, मानो हर हड्डी न वह पीडा बरसो से सँभाल कर रखी हुई थी

कानो म नीता के भाई की गालिया जैसे अभी भी कही से आ रही थी—उस न दोनो हथेलियो से दोनो कानो को ढँक लिया—और फिर सारा ध्यान एकाग्र करके नीला की आवाज सुनने की कोशिश की

लेकिन नीता की आवाज उसके होठो मे बन्द थी और होठ उस के खुलत नही थे

नीता उस से कितनी बातें किया करती थी—पर उस दिन जब उस के भाई न उसकी किताब मे रखा हुआ सुनील का खत पकडा था तब सुनील का बुलाकर एक कमरे मे बन्द करके गालियाँ दी थी—नीता की आवाज उसके होठो म ब द हो गयी थी

और फिर उसके भाई ने जख्मी होन की हद तक सुनील को मारा था

और नीता की आवाज उस न फिर कभी नही सुनी थी वह शायद हमेशा के लिये उस के होठो म डूब गयी थी

आज फिर उस ने सारा ध्यान एकाग्र करके एक बार नीता की आवाज सुनने की कोशिश की पर उसकी आवाज कही नही थी

और फिर सुनील के मस्तिष्क में बहुत सी आवाजें जोर-जोर से हँसने लगी

नही—ये आवाजें, मले से पानी की तरह, लोगो के होठों को फाडकर होठो मे से बह रही थी—जिनमे उनके थूक भी मिले हुए थे।

यह आवाजा का सैलाब सा एक दिन उस की पीठ के पीछे से आ रहा था—और वह पूरा जोर लगाकर उस से बचने के लिए दौड रहा था

उस का मास उस के गले मे फूलता हुआ उस के गले को जैसे घोट रहा था, और उस की आखें उस के मुह पर फैलकर जसे फटने लगी थी

उस के हाथ मे एक कागज था जिस के अक्षर हथेली के पसीने से शायद पिघल गये थे और काले रग की गरम धार की तरह उस के प्रिसीपल की आवाज बनकर उस के कानो मे पडते जाते थे—'तुम्ह होस्टल से निकाल दिया गया है, कालिज से भी '

और होस्टल के सब कमरो मे जितनी भी आवाजें बन्द थी वे उन सब कमरो के परनालो की तरह बाहर सडक पर बहने लगी थी वह आगे-आगे दौड रहा था—और आवाजो का एक सैलाब सा उस के पीछे-पीछे

कितने बरस हो गये थे जब वह कॉलिज म पढ़ता था—शायद पाँच साल हो गये थे—और व आवाज जब उस के मस्तिष्क मे पडी थी, शायद तब म ही वही खडी हुई थी—शायद उस के मस्तिष्क स उतरकर नीचे उस के पाँवो क तलवों म जाकर बठ गयी थी—उसे याद नही। उस को पाँव कभी एक जगह नही रुक सकते थे—न टिककर बठ सकत थे—न चारपाई पर निश्चल सो सकते थे। वह आधी आधी रात को भी कमरे मे चलता रहता था—एक दीवार से दूसरी दीवार तक, फिर दूसरी दीवार से तीसरी दीवार तक और चौथी दीवार का दरवाजा उस की माँ रात को रोज बाहर से बन्द कर दिया करती थी

आज ये सारी पुरानी आवाजें, उसके पाँवो म से फिर ऊपर उस के मस्तिष्क मे आ गयी थी। आज उस के पाँव यहाँ रुक गये थे, निश्चल, वही रुके हुए थे—पर उसका मस्तिष्क आवाजो के जार स काँप रहा था जसे बहुत सारे लोग दहाड दहाडकर किसी मकान की छत पर चढ आयें, और शहतीरोवाली छत हिलने लगे

एक शोकी था—वह अशोक—जो थोडी देर उसकी बाँह के साथ बाँह मिलाकर उस के साथ चलता रहा था—फिर न जाने किस समय वह भी उस की बाँह से छिटककर कहीं चला गया था।

नही, उसे याद आया, प्रिन्सीपल ने हाथ से शोकी को पकडकर उसकी बाँह से अलग किया था और उसे अकेल कमरे की तेज रोशनी मे खडा करके पूछा था, 'सच बताओ तुम कितन दिनो से अशोक को रात के वक्त अपने कमरे मे ले जाते रहे हो ?'

उसे याद था—उस न एक रात—अशोक को अपन कमरे मे बुलाया था। व कितनी देर पढते-पढते रहे थे, फिर एक ही बिस्तर पर सो गय थे और उस को उस रात अशोक का नरम सा शरीर निरा-पूरा नीता के शरीर जसा लगता रहा था उस ने सोये हुए अशोक की बाँह कितनी देर अपन गले म डालकर रखी थी—और अपनी हथेली पहल उस के कधे पर रखी थी फिर पीठ पर—फिर नीचे कमर पर—फिर टाँगो पर

फिर एक रात और और एक रात और और कितनी अजीब बात थी कि अशोक की सूरत भी उस को नीता जैसी लगन लगी थी उस ने उस रात पहली बार नीता के होठ चूमे थे—नही, नीता के नही, अशोक के

वैसे तो आधी रात को वह हमेशा अपने कपडे पहने होता था पर प्रिंसी-

पल न जब उसे कमरे की तेज रोशनी मे खडा करके उस से रात वाली बात पूछी—तब उसे पहली बार लगा जसे उस के शरीर पर स किसी न सारे कपड उतार लिये थे—और वह ठण्ड से और शरम से कॉप उठा था

उस ने बोलने की कोशिश की थी, पर उस की आवाज कॉपकर हकलाने लगी थी और उस समय से—पॉच बरस से—हमेशा बोलते समय वह हकला जाती थी

प्रिंसीपल न उस के हाथ मे एक कागज पकडाकर उस को कमरे के बाहर भेज दिया था—पर बाहर—उसके होस्टल के सारे लडके रुक हुए पानी की तरह खडे हुए थे—और उसे दखते ही—उसके पीछे पाछे पानी के सैलाब की तरह चल दिये थे

व बहुत जोर स हँस रहे थे—सीटियाँ बजा रह थे—और उसके पीछे-पीछे दौड रहे थे

आवाजें उस के सारे शरीर से टकरा रही थी—पर उस के माथ म बहुत जोर का दर्द हो रहा था—उसके माथे की नसें जस फट रही हो

उस दिन—और उस के बाद कई दफा—वह बैठा बैठा अपने माथे को टटोलन लगता था—उसे लगता था, जसे उस के माथे की एक नस टूटकर उस के माथ से बाहर निकल आयी हो।

उसका पिता शायद उसे किसी डाक्टर के पास ल गया था और डाक्टर न उस न जाने लाल रग की गोलियाँ खिलाकर कितन दिन बेहोश रखा था—कि एक बेहोशी सी फिर उस हमेशा रहने लगी थी

नही, सुनील को एक भूली हुई बात की तरह याद आया कि इस बेहोशी म भी उस का होश कायम रहता था।

उस समय—जब तरीजा ने उस से कहा था कि वह उस के साथ ब्याह कर लेगी अगर सुनील का पिता अपना मकान सुनील के नाम कर दे वह बडी दूर तक तरीजा के विचार का देख गया था और फिर उस न तरीजा से कहा था, आर इस के बाद ? इस के बाद तुम मुझ से कहोगी कि यह मकान मैं तुम्हारे नाम कर दू ?'

और तरीजा उस की हकलाती आवाज पर बहुत देर तक हँसती रही थी—और उस ने कहा था, हकले बाबा ! मैं मकान को तुम से ज्यादा अच्छी तरह सँभालूगी, उसे सजाऊँगी हर बरस उसपर रग रोगन करवाऊँगी '

और सुनील ने कहा था 'तुम हमेशा दो कुत्ते रखती हो, मैं तुम्हारा तीसरा कुत्ता नही बन सकता।

पर एक अजीब बात थी—उसे याद आया—कि जिस डाक्टर ने उस लाल गोलियाँ देकर बेहोश किया था और जिसे वह रोज कई दिन तक देखता रहा

था—एक दिन अचानक उस डाक्टर का मुंह किसी और तरह का मुंह हो गया था। वह कितनी देर, हैरान, डाक्टर के मुंह की तरफ देखता रहा था, और फिर थोड़े से दिनों के बाद वह डाक्टर का मुंह —जिस की एक चौड़ी चपटी सी नाक थी— एक बड़ी लम्बी नाकवाला मुंह बन गया था। उस ने अपने पिता की मिन्नतें की थी कि अगर उसे उस डाक्टर के पास न ले जाया जाय तो वह अच्छा हो जायेगा। पर उस के पिता ने उस की यह बात नहीं मानी थी। उस के पिता ने कहा था कि वह पहला डाक्टर और था, और दूसरा डाक्टर भी कोई और था, और अब जो नया डाक्टर वह और है—पर उसे पूरा यकीन था कि वह एक ही डाक्टर था— विच डाक्टर', जो कुछ दिन बाद अपनी शक्ल बदल लिया करता था—बिलकुल इस तरह जैसे वह लाल रंग की गोलियों को कभी हरे रंग की कर दिया करता था, और कभी पीले रंग की

और फिर एक दिन उस ने आप सुना था कि वह डाक्टर उस के पिता से कह रहा था कि वह उसे बिजली लगायेगा

वह समझ गया था कि अब डाक्टर उस को बिजली का करंट लगाकर मार देना चाहता है वह डाक्टर के पास से दौड़कर सीधा अपने घर के कमरे में आ गया था और उस ने कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया था

मां ने रोटी पकाकर दरवाजा खटखटाया था—पर उसे पता था अगर वह दरवाजा खोलेगा तो उस का पिता उसे पकड़कर सीधा डाक्टर के पास ले जायेगा और डाक्टर उस को बिजली का करंट लगाकर मार देगा

तो उस ने दरवाजा नहीं खोला था, और सीखचोंवाली खिड़की में से हाथ निकालकर मां से खाना ले लिया था। पर दूसरे दिन मां कह रही थी कि वह दरवाज़ा खोल दे तो वह घर के नौकर से उस का कमरा साफ करवा देगी। उसे पता था —ये सब दरवाजा खुलवाने के बहाने हैं

और फिर फिर उस के सिगरेट खत्म हो गये थे। उसकी मां ने उसे सिगरेट मंगवाकर नहीं दिये थे। कहती थी, वह दरवाजा खोलेगा तो सिगरेट मिलेंगे

उस ने जेब में से पैसे निकालकर सीखचोंवाली खिड़की में रख दिये थे और नौकर से कहा था कि वह बाजार से सिगरेट ला दे। नौकर पैसे ले गया था, लेकिन उस के सिगरेट खरीदकर नहीं लाया था—बेईमान कमीना !

उसे खयाल आया—बस एक बात अच्छी है कि उसका गुसलखाना उस के कमरे के साथ लगा हुआ है —जिस का दरवाजा उस के कमरे में है—नहीं तो उस को कमरे का दरवाजा खोलना पड़ता और उस के माता पिता उसे पकड़कर जबरदस्ती उसे डाक्टर के पास ले जाते

उसे लगा उस के जेहन में जैसे एक पानी का तालाब बना हुआ था जिस में कितनी ही आवाज़ें डूबती—और गोते से खा रही थीं

कभी कभी कोई आवाज पानी पर तरती बाहर किनार पर भी आ जाती थी ।

'सुनी बाबू हे सुनी बाबू ' वह काँप सा गया—यह काशनी की आवाज कहाँ से आ रही थी ?

काशनी ! रामदास धोबी की लडकी । जब आया करती थी, उस बुलाया करती थी—'सुनी बाबू !' और वह अपना नाम हमेशा ठीक करके उसे बताया करता था, 'सुनी बाबू नही—सुनील बाबू !' पर काशनी से आखिरी अक्षर कभी भी नही बोला गया—कहा करती थी—'वही ता कहती हूँ—सुनी बाबू '

उस दिन उसी काशनी ने सीखचोवाली खिडकी क पास खडे होकर उसे धीरे से आवाज दी थी—सुनी बाबू !' और अपनी चुनी मे से सिगरटो की डिब्बी निकालकर उसे पकडा दी थी । उस के पास पैसे खतम हो गये थे—उस ने अपने कोट और अपनी पैंट की जेब को अच्छी तरह टटोला था—पर सिर्फ़ पच्चीस पैसे निकले थे—पूरी डिब्बी के पैसे नही थे । पर काशनी ने वे पच्चीस पैसे भी नही लिय। और फिर दूसर दिन उस ने सिगरेटों की एक और डिब्बी लाकर उसे सीखचोवाली खिडकी मे से पकडा दी थी

वह रोज सवेरे इन्तजार किया करता था—काशनी जब कपडे प्रेस करके लायेगी—उस का खिडकी के पास आकर उसे जरूर आवाज देगी—'सुनी बाबू ' और उसे अपना नाम सुनील की जगह सुनी बाबू' ज्यादा अच्छा लगने लगा था

हाँ—उस ने काशनी के कहने से कमरे का दरवाजा एक दिन खोल दिया था और वह कमरे को साफ करके और उस के मैले कपडे लेकर चली गयी थी

और फिर वह दूसरे दिन उस के कपडे धोकर ले आयी थी—उस ने गुसलखान मे जाकर जब कपडे बदले थे—काशनी ने गुसलखाने का दरवाजा खोलकर कहा था, सुनी बाबू तू बहुत सुदर है '

उस के जेहन मे काशनी के हाथ की कच की चूडियाँ छन छन करने लगी

वह पाँव मे चादी के घुँघरू भी बाँधती थी—उसे याद आया—और याद आया कि एक दिन काशनी ने अपने पाँवो मे मेहदी लगायी थी—और उसे लगा कि उस के साँवले साँवले पाव दो कबूतरो की [illegible] कमरे मे आ गये थे

उस ने दोनो हाथा [illegible] ो को [illegible] काशनी चुपचाप उस की चारपा[illegible] ने उस के कानों के पास अपना [illegible]

'सुनी बाबू सुनी [illegible] गया

उस ने अपनी हथेली से अपने माथे को छुआ—उसे लग रहा था—यह आवाज़ जैसे उस के माथे म से लहू की धार की तरह अब बाहर की तरफ बह रही थी

फिर उस ने हथेली को देखा—पर अँधेरे मे अब दिखायी नही देता था कि उस की हथेली पर लहू लगा हुआ है या नही

हाँ उसे याद आया उस दिन उस के बिस्तरे की चादर पर कितना सारा लहू लगा हुआ था। काशनी ने उस के बिस्तरे पर से उठकर बिस्तर की चादर भी उठा ली थी—और कहा था कि वह चादर को कल धोकर ला देगी।

उस ने काशनी से पूछा था कि उस की चादर पर लहू कहाँ से आ गया था—पर चुन्नी का पल्ला मुहू म डालकर हँसती रही थी और चादर को गुड-मुडी कर के धोने के लिए अपने साथ ले गयी थी

काशनी फिर भी आयी थी फिर भी पर फिर वह मर क्यो गयी?

माँ न भी बताया था, नौकर ने भी, और बड के पेड वाली चाय की दुकान-वाले न भी कि काशनी कुएँ मे डूबकर मर गयी थी

जैसे उलझी हुई गाँठें खुलती हैं—सुनील के माथे मे कुछ नसें काँपकर हिलीं—'लोग कहते थे कि काशनी का ब्याह नही हुआ था, पर वह माँ बननेवाली थी '

'काशनी का बच्चा ? ' पेडो के बीच कुछ पटबीजने पडे हुए थे—सुनील के माथे मे भी कुछ जागने जलने लगा—'काशनी का बच्चा मेरा बच्चा था ? काशनी का बच्चा मेरा बच्चा ?' और वह हैरान था—उसे यह खयाल कभी पहले क्यों नही आया ?

और सुनील को आज सवेरेवाली बात याद आयी—सवेरे उस के घर के सामने खाली पडी जमीन पर कितने ही बच्चे खेल रहे थे

वह कितनी देर खेलते हुए बच्चो के पास जाकर खडा रहा था। उनमे एक तीन बरस की लडकी थी—सफेद फ्राक वाली। सूरज की चढती धूप म वह एक फूल जसी लग रही थी। सुनील ने उसे प्यार से अपनी गोद म उठा लिया था—उस के बाल चूम लिये थे, उस का माथा—उस के हाथ—उस के पैर

और फिर कही से एक काली मोटी औरत आकर चीखें मारने लगी थी—शायद उसकी आया थी

फिर कितने लोग इकट्ठे हो गये थे

घबराहट से उसकी बाँहें काँपने लगी थी और लागो ने उस के चारो तरफ घेरा डालकर उस बच्ची को उस के हाथो से छीन लिया था

उस की माँ भी आकर रोने लगी थी—और उसे बाँह से पकडकर अन्दर कमरे म ले गयी थी और उस के पिता ने कहा था कि कल वे उसे पागल-

खा ले जायेंगे

'यह शायद ' सुनील ने अपन खयालो को चीरकर दखा—'यह शायद मेरे अचेत मन म पडा हुआ मेरे बच्चे का खयाल था काशनी जीती रहती तो वह बच्चा भी अब इस जसा ही होता सफेद फ्राकवाली लडकी जैसा ' काशनी मर क्यो गयी ?'

और वह कुआं ?

सुनील के पावा क नीचे की पगडण्डी जिस पुराने कुएँ के पास जाकर खत्म हो गयी थी, सुनील उस कुएँ की तरफ दखन लगा

'लोग कहते थे,' सुनील का ध्यान आया, 'कि काशनी बारादरीवाले पुराने टूटे हुए कुएँ म कूद गयी थी तो क्या यह वही बारादरीवाला पुराना कुआ है, या और कोई ?'

सुनील ने चारो तरफ देखा—वहाँ सिफ पड थे और पडो से झडते हुए पत्ते । और फिर उसे ध्यान आया कि बारादरी उस क घर के पिछवाडे पक्की सडक के पार हुआ करती थी—यह शायद वही सडक थी और यह शायद वही बारादरीवाला कुआ था

कुछ पल के लिए जैसे उस के जेहन म सारी नसे एक सुकून के साथ सो गयी—उसे लगा, वह इतने समय स जो बेचन कमरे मे चलता रहता था—वह असल म बारादरी के कुएँवाला रास्ता खोजता रहता था

और वह रास्ता कितना पास था, बस सात सौ बीस कदम

आज उस ने सारे कदम गिने थे—पूरे सात सौ बीस—और वह हैरान था कि वह पहले यहा क्यों नहीं आया

'तभी तो रोज रात को बाहर की दीवार की तरफ से कोई आवाज आया करती थी पता नही चलता था किस की आवाज है पर आज मैं ने उसे पहचान लिया है रोज मुझे काशनी बुलाती थी—सुनी बाबू ! '

और उस न आगे बढकर कुएँ मे झाका—कुए मे से काशनी के हाथो की कच की चूडिया छनछन कर उठी उस न जोर से आवाज दी— 'काशनी !'

कई बरस के बाद यह पहला दिन था जब उसकी आवाज हकलाई नहीं थी । उसे आप ही हँसी आ गयी—और एक अजीब सा सुकून—जैसे वह बहुत समय बाद अपने घर आया हो—और उस के घर उस की बीवी और उस का बच्चा उस का राह देख रहे हो

उस ने दोनो बाँहें काशनी की ओर फला दी—आस पास के पडा न एक इन्सानी चीख जैसी हँसी सुनी और अपन पत्तो की तरह कापने लग

पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस जनवरी

मुझे अपने कारोबार के सिलसिले में अक्सर साल में दो बार बम्बई से दिल्ली जाना पडता था। हमेशा अपने दोस्त के पास ठहरता था। दोस्त का नाम नही बताऊँगा सिर्फ इतना ही कि वह डाक्टर है।

रवाना होने से पहले उसे खत लिख दिया करता था। पर एक साल जनवरी मे जब खत लिखा, उस ने तार से जवाब दिया कि वह पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस तारीख को वहाँ नही होगा, इसलिए मैं या तो इन तारीखो से पहले आऊँ, या बाद में। और इस तार से मुझे याद आया कि एक बार पहले भी उस ने मेरे खत के जवाब में खत लिखा था कि वह इन तारीखो में दिल्ली मे नही रहेगा—और शायद तब भी यही जनवरी का महीना था।

मैं ने पुराने खतों की फाइल देखी। उस का खत ढूँढकर निकाला—सचमुच यही जनवरी का महीना था, और यही तारीखें। बात कुछ अजीब सी लगी लेकिन इस बार मैं ने जाने की तारीखें बदली नही। बदल सकता था—दो चार दिन पहले या दो चार दिन बाद जा सकता था, लेकिन मैं उन्ही तारीखों मे दिल्ली चला गया। सिर्फ इतना किया कि सीधा अपने दोस्त के घर नही गया—वहाँ पहुँचकर एक होटल मे ठहर गया।

उस के घर टेलीफोन करने का कोई फायदा नही था—क्योंकि उस के कहने के मुताबिक वह दिल्ली मे नही था। पर रहा नही गया। जी किया उस के हस्पताल में टेलीफोन करके इतना ही पूछ लूँ कि वह अपने गाँव अपने माता पिता के पास गया हुआ है—और खैर खैरियत के साथ गया हुआ है—या कोई खास बात है।

मैं ने फोन किया। खयाल था—कोई और डाक्टर बोलेगा। लेकिन उस की कुशल मंगल पूछनेवाले शब्द मेरे मुँह में घूम ही रहे थे जब फोन के जवाब में मुझे उस की अपनी आवाज सुनायी दी। फिर शायद मेरी अपनी आवाज की हैरानी थी—कि मुझे उस की आवाज में उस का तपाक कुछ कम सा लगा। पर साथ

ही मैं अपनी हैरानी को दलील भी दे रहा था—हो सकता है किसी कारणवश उस का जाना रुक गया हो—उस जाना रहा हो, पर न जा सका हो—और अब मेरे आगे शर्मिन्दगी महसूस करता हो।

और मैं ने स्वयं ही अपने तर्क के बल पर कहा, "अब मुलाकात किस वक्त होगी?" मन में उस का जवाब भी सोच लिया था, 'तुम होटल से सामान लेकर सीधे घर चलो, मैं अभी घर पहुँच रहा हूँ।" पर लगा मेरे अपने कानों ने ही मुझे झुठला दिया। उस का जवाब था—"चार बजे हैं, मैं आधे घण्टे में यहाँ से फारिग हो जाऊँगा, फिर सीधा तुम्हारे होटल आऊँगा।'

खैर अभी भी तर्क कुछ बाकी था—मैं सोच रहा था कि वह मेरे पास आकर खुद मेरा सामान उठवायेगा और मुझे घर ले जायेगा। पर पाँच बजे के करीब जब वह आया, कितनी देर मेरे काम के बारे में सरसरी तौर पर बातें करता रहा। फिर चाय पी और शाम ढलने को आ गयी। लग रहा था, जैसे वह कुछ कहना चाह रहा हो पर कहने की घड़ी को टाल रहा हो।

वह मेरा पुराना दोस्त था। अधिकार के साथ उस से पूछ सकता था, पर उस के चेहरे पर कुछ ऐसा संकोच दिखायी दे रहा था कि मैं ने कुछ नहीं पूछा। कुछ देर बाद उस ने जाना चाहा। मैं क्या कह सकता था—उसे नीचे होटल के बाहरवाले दरवाज़े तक छोड़ने चला गया। देखा—वहाँ उस के पाँव कुछ ठिठक से गये, पर उस ने कहा कुछ नहीं।

मुझे वापस कमरे में आये कोई घण्टा भर हुआ था कि उस का फोन आया—"सॉरी, आई कांट एक्स्प्लेन ऐनीथिंग!" मैं जवाब में हँसता रहा, 'चलो माफ़ किया, एन्ज्वाए यूअरसैल्फ!' अचानक लगा, हो न हो इन दिनों उस के पास घर में जरूर कोई लड़की थी। पर यह कल्पना भी मुझे मिटती सी लगी, क्योंकि उस की आवाज में कुछ उदासी थी।

उस वर्ष सितम्बर में मुझे दिल्ली जाना पड़ा पर मैं ने उसे खत नहीं लिखा। दिल्ली आकर एक होटल में ठहर गया। होटल से फोन किया। उस की आवाज पुराने तपाक से भरी हुई थी। वह उसी समय हस्पताल से छुट्टी लेकर मेरे होटल आया और मेरे इनकार करने पर भी मेरा सामान उठाकर मुझे अपने घर ले गया।

पता नहीं एक दोस्त होने के नाते मुझे ऐसा करना चाहिए था या नहीं पर मैं ने उस के नौकर से एक दिन अकेले में जनवरीवाली बात—और बातों में कुछ घुमाकर पूछी। पुराना नौकर था मेरा भी डाक्टर के समान आदर करता था, इसलिए आदर से बोला, 'मुझे तो साहब हर बरस छब्बीस जनवरी का मेला देखने के लिए तीन दिन की छुट्टी दे देते हैं।'

तो वही तीन दिन पच्चीस छब्बीस और सत्ताइस जनवरी! उस से मैं

ने यह भी मालूम कर लिया था कि उस की छुट्टी में सिर्फ दिन ही शामिल नहीं होते थे, रातें भी शामिल होती थीं। वह तीन रात बाहर नौकरों के डेरे में रहना था जहाँ उस के गाँव के और लोग भी रहते थे।

नौकर को हर बरस इन्हीं तीन दिनों की छुट्टी देना मुझे स्वाभाविक नहीं लगा। मुझे लगा - कोई भेद है जो मेरा दोस्त भेद ही रखना चाहता है।

और फिर जब चार महीने बाद जनवरी का महीना आया तो मैं ने अपने दोस्त को खत लिखा कि मुझे पच्चीस तारीख को दिल्ली आना पड़ेगा हालांकि दिल्ली जाना मैं अभी और एक महीना आगे सरका सकता था। जवाब में उस का खत आया 'क्या इस तारीख को तुम्हारे काम से कोई लगाव हो गया है? तुम दो चार दिन पहले या बाद में क्या नहीं आ सकते?"

तो जरूर कोई बात थी जो न वह बता सकता था, न मैं पूछ सकता था। मैं उस महीने दिल्ली नहीं गया। बाद में माघ में गया, उसी के पास ठहरा और उस बार मैं ने दिल्ली में पाँच एकड़ का एक फार्म खरीदा, जहाँ साल में कम-से-कम एक महीने रहने का मेरा सपना मुझे हमेशा खींचा करता था। यह सब मेरे दोस्त की मेहनत का ही फल था। फार्म के कागज पत्र उसी ने देखे दिखाये थे, दो मालियों का बन्दोबस्त कर दिया था, और फार्म पर एक छोटी-सी रहने की कोठी का नक्शा भी उस ने ही बनवा दिया था। मैं वहाँ इमारत शुरू करवाकर वापस बम्बई चला गया था, बाद में उस ने ही उसे देखा सँभाला था, और उसे पूरा बनवाकर मुझे उस की चाभी भेज दी थी।

फिर अचानक उस का खत आया कि उस ने ब्याह कर लिया है। खत खुशी से भरा था, इसलिए मैं भी खुश था। पर उलाहना-सा देते हुए मैं ने लिखा कि उस ने मुझे अपने ब्याह में शामिल होने के लिए क्यों नहीं बुलाया। उस का जवाब आया—"जिस घड़ी ब्याह का फैसला हुआ, मैं उसी घड़ी ब्याह कर लेना चाहता था, नहीं तो शायद कभी न हो सकता। इसलिए तुम्हें बुलाने का समय ही नहीं था। खत में उस ने यह नहीं लिखा था कि ब्याह उस घड़ी के टलने के बाद क्यों नहीं हो सकता था। पर यह जरूर लिखा हुआ था, "मैं बहुत खुश हूँ, मैं तुम्हारी भाभी से इश्क की हद तक मुहब्बत करता हूँ!"—इसलिए मुझे उस के ब्याह में शामिल न होने का जो मलाल था—वह मलाल जैसा नहीं रहा। एक लगन सी जरूर लग गयी कि अब मैं दिल्ली कब जा सकूँगा। इस में एक और कारण भी शामिल था—मैं ने अभी तक अपने फार्मवाले मकान में रहकर नहीं देखा था। वहाँ के मालियों के अलावा मैं ने एक ऐसे आदमी का बन्दोबस्त भी कर दिया था जो हर इतवार फार्म पर जाकर फार्म के काम को देखता था और मुझे हिसाब किताब लिख भेजता था। मेरी आँखों में अपने फार्म की हरियाली हर हफ्ते पोर पोर ऊँची होती रहती थी।

अचानक मेरे दोस्त का फोन आया कि अगर मैं फामवाले घर की चाभी उसे भेज दू तो वह तीन दिन वहाँ जाकर रहना चाहता है। यह जनवरी का महीना था। मुझे वही पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस जनवरी के तीन दिन इस बात से जुड़े हुए लगे। मैं न कहा, "मैं कल चाभी भेज दूँगा। वैसे मैं भी दिल्ली आना चाहता हूँ, पर अगर तुम वहाँ अकेले रहना चाहो तो मैं इस महीने नहीं, अगले महीने आ जाऊँगा।" जवाब मे उस न कहा, 'मैं पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस तारीख सिर्फ तीन दिन वहाँ रहूँगा। तुम भी आ जाओ, साथ रहग।"

अजीब बात थी—वही तारीखें थी, पर इस बार उसे एतराज नहीं था कि मैं इन तारीखो म न आऊँ। क्या मुत्री ब्याह के बाद भी उसे उन तारीखो म अकेलेपन की जरूरत न थी? क्यों?—मैं ने पूछा, 'भाभी का क्या हाल है?" जवाब मे कही भी सकोच जैसा कुछ नही था। वह कह रहा था, "बहुत बढिया लडकी है, तुम उस से मिलकर बहुत खुश होगे। हम अट्ठाइस तारीख को साथ-साथ घर चलेंगे।"

कुछ पकड मे नही आ रहा था, पर उस का विवाह ठीक था, यही काफी था। मैं न उस से कहा कि मैं पच्चीस तारीख को सवेरे पहुँच जाऊँगा—सीधा फाम पर जाऊँगा और तुम्हारा इतजार करूँगा।

उस की बीवी के लिए मैं ने बम्बई से एक प्यारी सी साडी खरीदी, और पच्चीस तारीख को सवरे दिल्ली पहुँच गया। फाम की हरियाली मेरी कल्पना जसी ही थी। मेरे मन की धरती मे भी मानो फल पत्ते उग रहे थे। फाम का इतवारी कारिदा वही पहुँचा हुआ था—उस ने मेरे कहे के मुताबिक जिन चीजो की मुझे जरूरत थी, लाकर रखी हुई थी। मालियो ने काटेज के फाटक का पोछा सँवारा और फूलो से सजाया।

शाम गहरी हो चली थी जब मेरा दोस्त आया। इस बार मैं उस के लिए बम्बई के एक दोस्त से फ्रेंच 'कोनयाक' लेकर आया था। बहुत दिन हुए जब उस ने एक बार मुझे कोनयाकवाली पिलायी थी और कहा था—कि उस का बस चले तो वह हमेशा कोनयाकवाली चाय ही पिये। इस बार तीन दिन मैं उसे कोनयाकवाली चाय पिलाना चाहता था। यू ता डिब्बो के फल और सब्जियाँ मैं बम्बई से ले आया था, पर अपने फाम की गोभी मैं ने अपने हाथो से भूनी थी। मेरे लिए बम्बई की जिदगी से अलग होन का यह बडा प्यारा दिन था

उस रात पहले कोनयाकवाली चाय और फिर नीट कोनयाक पीते हुए मरा दोस्त कहने लगा, 'तुम कई बरस से कुछ पूछना चाहते थे न? मैं भी कई बरस से तुम्हे कुछ बताना चाहता था'

यह शायद मिट्टी मे से कुछ हरा सा फूट निकलने का समय था मैं उस के

मुँह की ओर देखने लगा। वह हँस दिया—'ये पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस जनवरी—तीन दिन मेरी समझ से बाहर हैं। तुम्हे कसे बताऊँ अच्छा, शुरू से ही बताता हूँ पूरे पांच बरस हुए, मेरा एक दोस्त आज के दिन – पच्चीस तारीख को—मेरे घर आया था। कमबख्त जवान भी था, खूबसूरत भी, और बहुत प्यारा शायर भी। दिल्ली से हिन्दुस्तान की सब भाषाओं का पच्चीस जनवरी को एक मुशायरा होता है न—उसे उसी मुशायरे मे सरकारी तौर पर बुलाया गया था। पर वह अकेला नही आया था एक बडी सुन्दर लडकी उस के साथ थी। अपने शहर मे वह उस लडकी से नही मिल सकता था—इस लिए यहाँ ले आया था। वहाँ से शायद उस के साथ नही आया था, पर यहाँ स्टेशन से उसे साथ लेकर आया था। वे दोनो तीन दिन मेरे घर रहे। पच्चीस की रात को मुशायरा था, छब्बीस को सब शायरो के लिए सरकार की तरफ से दावत हुई थी पर सत्ताइस की रात उन्होने जिन्दगी से और चुरा ली थी। और फिर अलग अलग गाडियो मे वापस चले गये थे "

यह बात सुनते हुए जैसे मैं एक ऐसे दरवाजे की ओर देख रहा था—जिस के पास मैं बरसो की तलाश के बाद पहुँच तो गया होऊँ, लेकिन अभी यह सोच भी न सकता होऊँ कि उस दरवाज़े के अन्दर क्या है

कोई कहानी शायद पांच बरस चलती रही थी, और मेरा दोस्त भी उस के साथ पांच बरस चलता रहा था—उस के चहरे पर एक लम्बा रास्ता चलकर आने का सा अहसास था। कुछ देर सास लेकर कहने लगा—"पर दिल्ली के तीन दिन वाली बात न उस के घर से छिपी रही न उस लडकी के घर से। उसकी बीवी बडी दुखी थी, और उस लडकी के माता पिता भी। शहर एक ही था वैसे भी छोटा दोनो घरो का वैर सारे शहर मे फैल गया। एक की जान के लिए फजीते थे, दूसरे की जान के लिए खतरा। पर छह महीने गुज़रे थे कि सारी बात ही निबट गयी। कमबख्त सारे दिन और सारी रात शराब पीता था, छह महीने मे खत्म हो गया "

'क्या मतलब ?' मैं कांप सा गया।

'वे आयी मौत ' मेरे दोस्त की आवाज़ उस के गले म डूब गयी थी। कोन्याक के तेज़ पांच छह घूट भरकर उस न कहा, 'फिर जब अगली जनवरी की पच्चीस तारीख आयी मेरे नाम उस लडकी का बिलखता हुआ खत आया कि मैं तीन दिन उस कमरे मे किसी को न जाने दूँ जिस कमरे म पिछले वरस वे दोनों रहे थे। उस ने खत मे गेंदे के दो फूल भेजे कि वे फूल मैं उस कमरे में उसी पलग पर रख दू जो उस के सुहाग की सेज था। और उस ने लिखा कि दोनो की रूह तीन दिन उस कमरे मे रहेंगी।"

मैं यह बात सुनते ही जैसे मैं नही रहा—सिर्फ एक अचम्भा था। दोस्त से

पूछना चाहता था—'और तुम ने इस बात पर यकीन कर लिया ? पर मेरे कुछ भी पूछने से पहले वह कहने लगा—'मुझे उस का खत सिर्फ उस का पागलपन लगा था उस की दीवानगी—पर दीवानगी का भी शायद कोई जादू होता है। मैं ने खत को परे रख दिया, पर वे फूल मैं फेंक नही सका। यह भी याद आया कि उस कमबख्त ने उस लडकी को गेंदे का फूल कहकर यहाँ ही एक नज़्म लिखी थी। तो मैं ने दोना फूल उस कमरे के पलग पर रख दिय और दरवाज़े भेड दिय। पर उस रात एक अजीब घटना घटी '

मैं सारे का सारा जैस अपनी ही आँखो म समा गया था—और दोस्त के मुह की तरफ देख रहा था। वह कहने लगा—"कोई आधी रात गय, मुझे उस कमरे म से किसी के पैरो की आहट आयी, और फिर परो की आहट कमरे से निकलकर बाहर रसोई के उस घडे तक आती हुई मालूम हुई जहाँ पानी का घडा रखा हुआ था। फिर घडे मे से पानी लेने की आवाज़ भी आयी और किसी के हाथ की काँच की चूडियो की खनक भी "

'इम्पासिबल ' मेरे मुह स निकल गया—पर मेरी आवाज़ जैसे काँप-सी रही थी।

मरा दोस्त कहने लगा —'मैं ने भी सवेरे उठकर यही सोचा था कि सब मेरी अपनी यादो का भ्रम है—पिछले बरस उस लडकी ने दोनो हाथो मे हरे काँच की चूडियाँ पहन हुए थी—और वह सब कुछ उस याद मे से मुझे सुनायी दिया था। पर अगली रात भी यही हुआ, और उस से अगली रात भी '

"फिर अगले बरस ?'

'अगले बरस भी पच्चीस तारीख को उस लडकी का खत आया, वही मिन्नत और वही गेंद के दा फूल और फिर उसी तरह तीना रात वही आवाज़ें "

अब मैं कुछ भी कहने के काबिल नही रह गया था। कमरे म मैं ने लकडियो की आग जलायी हुई थी—सिर्फ वही जल रही थी, मैं जसे बुझ गया था

दोस्त के मुह की ओर देखा—आग की लपट से उस का मुह तप रहा था।

जलती हुई लकडियों पर एक नयी लकडी रखते हुए मरा दोस्त कहने लगा, "पूरे तीन बरस इसी तरह होता रहा। उन के सचमुच के मेल को आखो से देखनेवाला भी जैसे मैं अकेला था, उन की रूहो क मेल को देखनेवाला भी दुनिया म सिर्फ मैं था। इसलिए इस अजीब हकीकत को सिर्फ अपने तक ही रखना चाहता था। तुम्हें इसीलिए लिखता था कि तुम इन दिनो न आओ "

'पर आज फिर पच्चीस तारीख है ' इतना ही कहा, स्पष्ट था कि कहना चाहता था —'आज तुम वहाँ क्यो नही रहे ? आज वहाँ गेंदे के फूल कौन रखेगा ?'

वह आग की लाट की तरह हँसने लगा। कुछ देर मेरी ओर देखता रहा, फिर हँसते हुए कहने लगा, "पिछले साल की जुलाई की बात है, हमारे हस्पताल मे हमारे साइकाएट्रिस्ट के पास एक केस आया। उस ने वह केस मुझ से डिसकस किया कि फलाने शहर से एक लडकी का अजीब केस उस के पास आया है जो साल मे तीन दिन बिलकुल बेजान हो जाती है—और हमेशा हर साल ! मुझे लगा, जरूर उसी लडकी का केस होगा। मैं ने उस से तारीखें पूछी तो वही तारीखें थी—जनवरी की पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस। उस के माता पिता सब डाक्टरो से हारकर उसे यहाँ दिल्ली के हस्पताल मे ले आये थे "

'तुम उस से मिले नही ?" बुझती हुई लकडी के धुएँ की तरह मेरे अन्दर एक हसरत सी जागी—'काश, मैं एक बार उस लडकी को देख सकता—क्या सच म कोई ऐसी लडकी हो सकती है ?'

मेरे दोस्त ने हाँ मे सिर हिला दिया, फिर हँस पडा—"मिलना तो था ही, मिला। वही थी। वही हो सकती थी। मुझे देखकर रो पडी—उसे जबरदस्ती हस्पताल ले आये थे। जबरदस्ती राजी करना चाहते थे। जबरदस्ती उस का ब्याह करना चाहते थे "

"फिर ?"

'मैं ने अपने डाक्टर कोलीग से उस से बातें करने की इजाजत ले ली थी। उस से रोज मिलता था।—एक दिन मैं ने उस से कहा, 'तुम जो कहती हो, ठीक है, पूरे तीन दिन उस की रूह तुम्हारे साथ होती है, तुम्हारी उस के साथ, लेकिन साल के बाकी तीन सौ बासठ दिन ? तुम उन तीन सौ बासठ दिनो के लिए ब्याह कर लो !' बडी दिलवाली लडकी तो वह थी ही, कहने लगी, 'अच्छा, फिर मेरे माता पिता को समझा दो कि जो आदमी मेरे साथ साल के तीन सौ बासठ दिन के लिए ब्याह करना चाहे, मैं कर लूंगी।'—और उस दिन, उस घडी, मुझे सचमुच उस से प्यार हो गया "

मेरे काँपते हुए से हाथ ने दोस्त के हाथ को छुआ—"तो अब वही वहा तुम्हारी बीवी ?' बुझती हुई लकडियो पर रखी हुई नयी लकडी की लाट की तरह मेरा दोस्त हसने लगा—"वही मेरी बीवी है—सिफ जनवरी की पच्चीस, छब्बीस और सत्ताइस तारीख को छोडकर ! '

दोस्त के आगे भी सिर झुक गया, पर लगा—इस समय मैं उस कमरे की दहलीज को सलाम कर रहा था—जिस के अन्दर एक खाली पलग पर एक जवान लडकी गेंदे के फूल रख रही थी

अपने-अपने छेद

कोई नहीं जानता—सिर्फ ईश्वर और डाक्टर राव जानते थे कि शीना ने अपनी छाती में एक छेद छिपाया हुआ है

जिस दिन डाक्टर राव ने वीरेन्द्र के एक्स रे सामने रखकर, उस की पत्नी को अकेले में बुलाकर कहा था मैं कह नहीं सकता वीरेन्द्र की जिन्दगी के और कितने दिन बाकी हैं, हो सकता है कुछ महीने और बीत जायें पर हो सकता है सिर्फ कुछ दिन ही दिल के चारों हिस्सों में जो कनक्टिंग वाल्व्ज होते हैं, उन में से एक में एक छेद है जो कुछ हफ्ते पहले के एक्स रे में भुलावे जैसा बारीक था, पर इस बार के एक्स रे में विश्वास के समान बड़ा हो गया है ' और डाक्टर राव ने ठण्डी कारोबारी आवाज में कहा था, 'अगर यह छेद उसी तरह बारीक रहता तो उसे थकान की शिकायत तो रहती ही, पर हो सकता था कि वह कई साल जीता रहता पर '

डाक्टर को 'पर' के आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। शीना ने जान लिया कि छेद बड़ा होता जा रहा है और इस छेद में से वीरेन्द्र के साँस झिरते जा रहे हैं। और उसने जब डाक्टर से कहा, 'अगर किस्मत ऐसी ही है, तो आप एक काम कीजिये, उसे इसी तरह गूंगी रहने दीजिए, जैसे वह कई महीनों से है। आप वीरेन्द्र को कुछ न बताइये। अब चाहे कुछ ही महीने बाकी हैं या कुछ ही दिन मैं उस के आखिरी साँस तक उस के साथ इस तरह जीना चाहती हूँ जैसे हम मिलकर हश्र तक जीना हो ' तो यह सुनकर डाक्टर राव ने जान लिया था कि शीना ने अपनी छाती में वह छेद छिपा लिया है और उसे दुनिया का कोई एक्स रे नहीं देख सकता।

शीना ने यह तो जान लिया कि मौत उस के घर का पता पूछ रही है, पर सोचा—अभी जितने दिन उस घर नहीं मिलता और अभी जितने दिन वह घर का दरवाजा नहीं खड़काती, वह उतने दिन अपने घर को इस तरह सजाना और वीरेन्द्र के साथ जीना चाहती है जैसे एक मर्द और एक औरत ने दुनिया

मे पहला घर बसाया हो

'वीरेन्द्र को बिलकुल मालूम नही था कि मौत जल्दी मचा रही है तब भी न जाने उस के जी मे क्या आया, उस ने सारे जोड तोड कर, मर लिए यह मकान खरीदा।' शीना सोचती रही, मुश्किल से पाँच बरस की नौकरी के बचे हुए कुछ पसे थे, और कुछ उस ने अपने माता पिता की मदद लेकर और कुछ दफ्तर की, यह छोटा सा घर खरीद लिया ' और शीना को छोटी छोटी बातें याद आयी, वीरेन्द्र को टसरी रग के पर्दे पसन्द थे, पर उन के खरीदने के लिए पसे नही बचे घर चाहे सिर्फ दो कमरो का ही है, पर उस म बीस फुट का जो बगीचा है, उस मे वह कलकतिया घास लगवाना चाहता था, उस म वह दो रगो वाली बुगनवलिया की बल लगाना चाहता था, उस के एक कोने म वह रातरानी और एक कोने मे चम्पा चमली और सूरजमुखी के फूल भी '

और शीना ने ट्रक मे पडी हुई सास की दो चूडियाँ बेचकर टसरी रेशम के पर्दे खरीद लिये। वीरेन्द्र के पूछने पर शीना ने कहा कि मकान की चट के लिए माँ ने कुछ नही भेजा था, इसलिए किसी आते जाने के हाथ उन्होंने पाच सौ रुपय भेजे हैं

शीना सचमुच मन की उस जगह पर खडी हो गयी जहाँ कई झूठ भी सच के समान पवित्र होते है

पाँच महीने पहले वीरेन्द्र को, बैडमिण्टन खेलते हुए, अचानक साँस उखडता लगा था और उस के बाद वह रोज शाम के समय अजीब थकान महसूस करने लगा था। कही कोई पीडा नहीं थी, पर जस हड्डियो मे से रोज कुछ झड रहा हो *और अब पिछले महीने से वीरेन्द्र ने दफ्तर से भी छुट्टी ले रखी थी*

शीना नसरी से एक पौधा रोज खरीदकर ले आती, और रोज सवेरे अपने छोटे से बगीचे म वह वीरेन्द्र के हाथो से ऐसे लगवाती जैसे वीरेन्द्र का एक छोटा-सा अश रोज धरती मे बीज रही हो

शीना का बहुत जी करता - वीरेन्द्र का एक छोटा सा अश वह अपनी कोख मे भी बीज ले पर अब बहुत देर हो चुकी थी। अब तो डाक्टर ने कहा था कि अच्छा होता अगर वीरेन्द्र ने ब्याह न किया होता ऐसे मरीज के लिए शरीर की उत्तेजना मृत्यु का झटका भी हो सकती है 'अगर मालूम होता —*शीना के मन मे हसरत आयी*, पर अब किसी हसरत म भी खो जाने योग्य समय नही था, अब समय केवल वीरेन्द्र के मुह की ओर ताकते रहने का था शीना जागते हुए वीरेन्द्र को भी ताकती रहती और सोये हुए वीरेन्द्र को भी

शीना के घर से सटा हुआ घर बहुत समय से खाली था और उस की गैर आबादी से कभी कभी शीना को रात के समय डर लगता था। वह इन दिनों अचानक बस गया—एक औरत, एक मर्द और दो बच्चे उस की आबादी बन

गये। शीना को दीवार के पार से आनेवाली आवाज़ें अच्छी लगीं, इन मे बच्चों की किलकारियाँ भी थी और हठ से भरी हुई चीखें भी, मर्द और औरत की एक-दूसरे को पुकारने की आवाज़ें भी और एक दूसरे से खिचखिच करने की आवाज़ें भी, और शीना आबादी की इन इलामतों को देखते हुए मुश्किल से मुसकरायी ही थी कि उसे लगा—उस घर की वेआवाज़ी अब रीगते रीगते दीवार के ऊपर से उतरते फिसलते इस तरफ—उसके घर की तरफ आ रही है

शाम का समय था जब शीना के दरवाज़े पर खडका हुआ। शीना ने अपने पिता और भाई तक को भी अपने हाल की भनक न पड़ने दी थी। वह किसी का हाल चाल पूछने के लिए आना नही चाहती थी। वह नही चाहती थी—वीरेन्द्र के मरने से पहले कोई उसे मरने की हालत मे देखे। इसलिए इस समय किसी और का आना सम्भव नही था—सिवाय डाक्टर राव के, जो पिछले दिनों मे एक बार वीरेन्द्र को इधर से आते जाते देख गया था

पर उस का दूसरी बार आना वीरेन्द्र के मन में सन्देह पैदा कर सकता था, इसलिए शीना को दरवाज़े का खड़का अच्छा नही लगा। पर झिझककर दरवाज़ा खोलते हुए उस ने देखा—आनेवाला डाक्टर राव नहीं था पडोस के अभी हाल मे आबाद हुए मकान की औरत थी।

औरत कुछ संकोच में थी, बोली, 'आप के घर मे शायद टेलीफोन है, मैं फोन कर लूं? मैं आपके पडोस से मिसेज़ कपूर हूँ

शीना ने वीरेन्द्र के कमरे का दरवाज़ा भेडते हुए सिर्फ इतना कहा, 'वह सो रहे हैं, मिसेज़ कपूर। आप फोन कर लीजिये लेकिन ज़रा धीरे बोलियेगा, वह जाग न जायें'

साधारण-सा फोन था—औरत ने अपने पति के दफ्तर का नम्बर मिलाया, पूछा कि वह दफ्तर मे हैं या चले गये। लेकिन फोन करके वह ऐसी निढाल-सी हो गयी कि शीना ने उसे कुर्सी पर बिठाते हुए पानी के लिए भी पूछा, और यह भी कि शायद उस के घर मे कोई घबरानेवाली बात हो गयी है और अगर वह कुछ मदद कर सके

औरत ढली हुई आयु की नही थी पर मुरझायी हुई सी थी। वैसे अब भी अच्छी छब वाली थी, सिर्फ आयु से अधिक गम्भीर थी। कहने लगी, 'नहीं, वैसे ही देर हो गयी है, अभी तक वह घर नहीं आये हैं। सोचा, दफ्तर से मालूम कर लूं'

औरत के इन साधारण शब्दों की झिरियों से जो चिन्ता छन रही थी वह साधारण नही थी। पर शीना ने इस से ज्यादा कुछ नहीं पूछा। पूछना ठीक नहीं समझा।

औरत चली गयी। पर रात गये उस के घर से पहले मर्द के ज़ोर-ज़ोर से

खालने की, और फिर औरत के सुबक सुबककर रोने की आवाज आयी, तो शीना को अपना शाम के समय का खयाल ठीक लगा। औरत की उदासी शायद एक दिन की नहीं थी —इस के पीछे शायद बहुत से दिन थे।

और इ की कमजोरी बढती गयी वह थोडा-सा उठता, बगीचे तक जाता या सिर्फ पास गुसलखाने तक, कि उस के माथे पर ठण्डा पसीना आ जाता और वह निढाल-सा चारपाई पर इस तरह लेट जाता कि उस की बन्द आँखों से यह पता नहीं लगता था —वह सोया है या जाग रहा है। और शीना घर का सब काम दबे पाँव करती रहती —कि कहीं वह खडके से जाग न जाय।

तीसरे दिन दोपहर को शीना ने खिडकी से देखा कि मिसेज कपूर बाहर से कुछ सब्जी खरीदकर आयी है, फिर सब्जी को अन्दर जाकर रखकर, शीना के घर की तरफ आ रही है

शीना ने दरवाजा खडकने से पहले ही खोल दिया। मिसेज कपूर ने झिझकते स्वर म फोन करने की आज्ञा माँगी। और फिर वही नम्बर, वही दफ्तर, वही सवाल, और फोन बन्द करते हुए वह भरी आँखों से बेसहारा सी, कुर्सी पर बैठ गयी।

शीना ने अपने लिये चाय बनायी थी, उसी को दो प्यालो मे डालकर एक प्याला उस के आगे रख दिया।

मिसेज कपूर न रस्मी इनकार नही किया, शायद एक गम घूट की उसे सचमुच आवश्यकता थी। गम घूँट की भी, और शायद एक स्नेहभरी आवाज की भी

कहने लगी, 'शीना बहन ! मैं तुम्हें भी असमय दुख देती हूँ '

और शीना के भले से मुँह के आगे उस ने मन खोल दिया, 'मेरे पति की जिन्दगी मे न जाने कितनी औरतें हैं आज जब सब्जी लेने गयी, दूर से एक कार देखी, लगा वह बैठे हुए हैं, उन के बराबर एक औरत यह भी सोचा, शायद मेरे मन का वहम है, वह तो दफ्तर मे बैठे हुए होंगे इसीलिए फोन किया वह सचमुच दफ्तर म नही हैं सो वह ही थे और उनके साथ न जाने कौन थी ' और मिसेज कपूर ने बताया कि 'जिस इलाके मे वे लोग पहले रहते थे उस घर के बिलकुल पडोस मे रहनवाली औरत के यहाँ मिस्टर कपूर न आने-जाने का सम्बन्ध जोड लिया था।' और कहा, 'मैं न सोचा, इस घर म बदलकर आ जायेंगे तो वह सिलसिला खत्म हो जायगा पर यहाँ भी यह पता नही कौन है कोई नयी मालूम होती है '

और मिसेज कपूर ने भरी हुई आँखो से कहा, 'जब शाम होती है मेरा आदमी घर नही आता सोचती हूँ न जाने इस समय वह किस क पास होगा उन का रास्ता देखते भी रोती हूँ और जब घर आ जाते है तब

उन्हे देखकर भी रोती हूं '

शीना का मन भर आया—'इस का पति जो न जाने किस किस के पास जाता है रात पड़ने पर घर तो लौट आता है अपनी पत्नी के पास पर मेरा पति जल्दी, बहुत जल्दी, वहां चला जायगा जहां से वह कभी लौटेगा नही और मेरे पास इन्तजार करने लायक भी कुछ नही होगा '

और शीना के चेहरे पर जब पिलापी फिर गयी, मिसेज कपूर ने अपनत्व से पूछा, 'शीना बहन ! तुम्हारे पति बीमार हैं ? मैं बहुत दिनो से देख रही हूं, वह दफ्तर नही जाते, कही भी बाहर नही जाते,' तो शीना का मन उमड आया, और जो मन का छेद उस ने किसी को नही दिखाया था मिसेज कपूर को दिखा दिया।

मिसेज कपूर ने कहा कुछ नही, पर उस के मन मे एक ईर्ष्या सी पैदा हुई—'यह कितनी भाग्यवान औरत है, इस का पति आखिरी सांस तक इस का पति है, वह मरकर भी इस के लिए जीता रहेगा यह उस की एक एक याद को जियगी उस के लगाये हुए पौधो पर जब फूल आयेंगे इसे हर पत्ती मे और हर रग मे अपने पति की महक आयगी।'

और शीना, भरी हुई आंखो से, उठकर जाती हुई मिसेज कपूर की पीठ की ओर देखती रही, 'मुझ से तो इस का नसीब अच्छा है जब उस का पति आता है यह उस से लड सकती है, उस के आगे रो सकती है पर मैं मैं किस से लडूंगी मैं किस के आगे रोऊंगी '

और शीना के कानो मे अपनी और वीरेन्द्र की वह आवाज भर गयी—जब वीरेन्द्र बाहर से आता उस के लिए फूल ले आता, कहा करता था, 'ओ मेरी इकलौती बीवी ! देख ' और शीना उस के कधे पर सिर रखते हुए कहा करती थी, 'मेरे इकलौते खाविन्द ! अपने हाथो से मेरे बालो मे लगा दो '

और आज—बगीचे का एक ताजा खिला फूल तोडकर वीरेन्द्र के कमरे मे रखते हुए शीना को लगा, उस की अपनी छाती का छेद बहुत बडा हो गया है।

वह दूसरा

चम्पा हर डाल पर फूला हुआ था, पर हर डाल कनू के सिर से ऊँची थी। एड़ियाँ उचकाकर भी उस का हाथ किसी भी टहनी के सिरे तक नहीं पहुच रहा था

कनू को याद आया, माँ कहा करती है 'कनू, तू भी उतने ही बरस की है जितने बरस का यह पेड है।' और कनू सोचने लगी—'फिर यह मुझ जितना क्यो नही है ? मैं तो छोटी हूँ, यह बडा कस हो गया ?'

घर की बाहरी दीवार पेड से नीचे थी। कनू को लगा, अगर वह दीवार पर चढ़ जाये तो वहाँ से टहनी पकडकर वह फूलो का कोई गुच्छा तोड सकती है, और वह दीवार पर चढने क लिए पैरो के नीचे छोटे-छोटे पत्थर इकटठे करने लगी

उस ने गिटिटयो-जैसे पत्थरो का एक ढेर-सा लगा लिया। पर उन पर खड़े होकर भी कनू के हाथ मुश्किल से दीवार तक पहुँचे। दीवार पर उस से चढ़ा नही जा रहा था

श्रीकृष्ण ने घर के बाहरी दरवाजे से अन्दर आत हुए जिस समय दाहिनी तरफ़ की दीवार से लगी हुई कनू को देखा तो उस समय कनू दीवार को हाथ से पकडे उस पर लटकी हुई-सी थी—उस से न ऊपर चढा जा रहा था, न नीचे ही उतर पा रही थी। श्रीकृष्ण न दौडकर कनू को दीवार से उतार लिया फिर बाँहो मे उठाकर ऊँचा उठाया तो कनू ने एक डाल से फूलो का एक गुच्छा तोड लिया।

गुच्छे की डण्डी को कनू ने एक तसल्ली से मुटठी म ले लिया, और श्रीकृष्ण की बाँहो मे से उतरते हुए पूछने लगी, 'अकल ! मामा कहती है यह चम्पा भी मुझ जितना है, फिर मैं कैसे छोटी हूँ ?'

श्रीकृष्ण जानता था कनू खुशी से दूध नही पीती, उसकी माँ जब भी उस के लिए गिलास म दूध डालती है, कनू एक आँख मिचौली सी खेलना शुरू कर

देनी है—कभी दरवाज़े के पीछे छिप जाती है, कभी चारपाई के नीचे। इसलिए श्रीकृष्ण कहने लगा, 'बच्चे आम का पेड़ होते हैं, धीरे-धीरे बड़े होते हैं, पर अगर ये दूध पियें तो बहुत जल्दी बड़े हो जाते हैं।'

'पर आम का पेड़ दूध पीता है?' कनू ने पूछा तो श्रीकृष्ण ने उस का हाथ पकड़कर उसे कमरे की ओर लाते हुए कहा, 'मैं तुम्हें एक तसवीर दिखाऊँगा, एक आम के पेड़ की। यह जब दूध पीने लगा तो बहुत जल्दी बड़ा हो गया '

'आज मैं भी दूध पीऊँगी ' कनू श्रीकृष्ण से अपना हाथ छुड़ाकर कमरे की ओर इस तरह दौड़ी मानो आज उसे ज़िन्दगी का एक रहस्य मालूम हो गया हो

बैठकवाली मेज़ पर वह फूलदान अभी तक पड़ा हुआ था जिस में कनू की माँ रोज़ ताज़े फूल लगाया करती थी, और जिस में उस ने इधर छह महीने से एक भी फूल नहीं लगाया था। कनू जब मेज़ के पास खड़े होकर हाथ का गुच्छा फूलदान में रखने लगी तो उस ने देखा—उस की पूरी हथेली पर सफ़ेद सफ़ेद पानी सा लगा हुआ था और गुच्छे की डण्डी में से अभी भी पानी रिस रहा था

'मामा! फूल रोता है ' कनू ने हाथ में लिया हुआ फूल का गुच्छा वहीं मेज़ पर रख दिया और अपनी माँ की तरफ देखने लगी जो एक कुर्सी पर बैठी हुई थी।

माँ ने एक बार कनू की ओर देखा, एक बार फूलों के गुच्छे की ओर, फिर एक पीडा से आँखें मूद सी लीं

श्रीकृष्ण कनू के पीछे पीछे आ रहा था। उस के पैरों की आहट-सी सुनायी दी तो कनू की माँ ने भरी हुई आँखें खोलीं। कुरसी से थोडी सी उठी, और दूसरी कुरसी की ओर संकेत करते हुए, श्रीकृष्ण से बैठने को कहते हुए, फिर निढाल सी अपनी कुरसी में धँस गयी। फिर धीरे से बोली, 'एक तो ईश्वर की मार और दूसरे यह इन बच्चों की बातें यह फूल तोड़कर ले आयी है तो कह रही है—मामा! फूल रोता है '

माँ की आवाज़ भर आयी, पर श्रीकृष्ण ने छह महीने से घर के अन्दर-बाहर फलते सोग को आज हौसले से थाम लिया। बोला, 'कनू! मामा को वह बात नहीं बताओगी?'

"कौन सी?' एक बार कनू ने कहा, पर खुद ही याद कर के कहने लगी, 'मामा! अंकल कहते हैं बच्चे आम के पेड़ होते हैं। अगर वे दूध पियें तो बहुत जल्दी बड़े हो जाते हैं मैं भी दूध पीऊँगी '

माँ के होंठ थोड़े से खिले और उस ने कनू को देखते हुए श्रीकृष्ण की ओर इस तरह देखा मानो उस का एहसान उस ने अपनी आँखों में भर लिया हो।

'मैं तुम्हारे लिए दूध ले आऊँ ?' माँ ने अपने अंगों में कुछ हिम्मत सी भरते हुए और कुरसी से उठते हुए कनू से पूछा।

'हाँ, और फूलों के लिए पानी भी' कनू कह रही थी, तभी श्रीकृष्ण ने कहा, 'चलो, कनू, पानी हम खुद ले आते हैं। हम फूलदान भी अभी धो डालेंगे'

माँ जाते जाते दहलीज़ में रुक सी गयी, और उस ने एक बार पीछे दीवार पर लगी हुई कनू के पिता की तसवीर की ओर देखा, अपनी ज़िन्दगी के टूटे हुए पेड़ की ओर, और फिर कनू की ओर देखने लगी, मानो डाल पर से टूटे हुए फूल को देख रही हो।

कनू ने मेज़ पर से फूलों का गुच्छा उठा लिया, और श्रीकृष्ण ने वह फूलदान, जिस के साथ पिछले छह महीनों से फूलों की तकदीर रूठी हुई थी।

और जब रसोई की दीवार से लगे हुए बाहर के नलके पर श्रीकृष्ण फूलदान को धोकर उस में फूल लगा रहा था, अन्दर रसोई में कनू के लिए दूध गर्म करते हुए उसकी माँ को लगा—मानो श्रीकृष्ण सचमुच वह मेहरबान पानी है, जिस के आने से डाल से टूटा हुआ फूल भी घड़ी-दो घड़ी हँस सकता है

कनू के लिए दूध गर्म करते हुए वह श्रीकृष्ण के लिए चाय तैयार करने लगी, और पानी की तरह उस के भीतर भी उबाल आने लगा—'मौत का दुःख कोई एक दिन बँटा लेता है, कोई दस दिन—पर उन दस दिनों के बाद कौन पूछता है। यह श्रीकृष्ण कुछ भी नहीं लगता, सिर्फ़ मरनेवाले का दोस्त यह ही अब तक खोज-खबर लेता रहा है' और तभी उबलते हुए पानी में से उचटकर पड़ी हुई बूँद के समान ख़याल आया, 'लेकिन कब तक'

वह दूध का गिलास और चाय के दो प्याले लेकर जब कमरे में आयी, कमरे की हवा में एक हल्की-सी खशबू थी—मानो बीते हुए दिनों की ख़ुशबू हो, उन दिनों की जब कनू का पिता जीवित था। आज पहला दिन था जब कनू ने जल्दी से दूध का गिलास पी लिया और कहने लगी, 'माँ, माँ! आप मेरे साथ कभी ताश नहीं खेलती पापा खेला करते थे आज अंकल कह रहे हैं वह मेरे साथ ताश खेलेंगे'

माँ छह महीने से खाना-पीना भूली हुई थी, पर आज हाथ में लिये हुए चाय के प्याले की पहली घूँट उस ने इस तरह भरी मानो उसे एक गर्म घूँट की सख्त तलब हो।

कनू सिर्फ़ एक खेल जानती थी—तीन पत्ती, जो वह अपने पापा से खेला करती थी। पर कनू के खेल में कनू का जीतना ज़रूरी होता था, और पापा का हारना। कनू की समझ में ताश का खेल सिर्फ़ उसी को जिताने के लिए बना था। वह जब हाथ में ताश के पत्ते लेकर पापा के पीछे पीछे दौड़ते हुए पापा से ताश

खेलने के लिए कहा करती थी, तो पापा आगे-आगे दौड़ते हुए कहा करते थे, 'ना भई, मैं नही खेलता, मैं हार जाऊँगा ' और अन्त म कनू पापा को ताश खेलने के लिए मना कर ऐसी खुश हो जाती थी मानो उस ने पापा को हार जाने के लिए मना लिया हो

आज कनू जब श्रीकृष्ण अंकल से ताश खेलने लगी तो पहले दो एक बार अपने पत्ते छोटे और श्रीकृष्ण अंकल के पत्ते बड़े देखकर इतना हैरान हुई मानो आज उस ने कोई अजीब बात देखी हो और उस का नन्हा-सा मुह गुम्म के कारण रुआँसा हो गया पर श्रीकृष्ण ने बात समझ ली, और फिर पत्ते बाँटने लगा—इक्के, बादशाह और बेगम कनू की तरफ बाँटने लगा, और छोटे पत्ते अपनी तरफ

कनू का खोया हुआ विश्वास लौट आया और वह एक पल म ही वही पुराने दिनो की कनू हो गयी। पास बैठी हुई माँ ने भी जसे यह कनू आज छह महीनो के बाद देखी हो उस के अन्तर मे एक अचम्भे का सुख सा अनुभव हुआ— 'श्रीकृष्ण को तो मालूम नही था कि कनू के पापा सदा बड़े पत्ते कनू को दिया करते थे, फिर उस ने यह बात कैसे जान ली ?

'अंकल हार गये ' कनू हर बार अपने पत्ते दिखाते हुए जब जोर से हँसने लगी तो छह महीनो से उदास खड़ी हुई घर की दीवारें भी कुछ मुसकरा पड़ी

अगले दिनो मे कनू ने श्रीकृष्ण अंकल के साथ जाकर कभी सरकस देखा, कभी आइसक्रीम खायी, कभी नया जूता खरीदा, और फिर जब माँ उसे स्कूल म दाखिल करवाने के लिए लेकर चली तो कनू ने जिद पकड ली कि वह श्रीकृष्ण अंकल के साथ स्कूल जायेगी

और फिर एक दुघटना हो गयी—घर से थोडी ही दूर पर एक सरकारी बाग था जहाँ पडोसियो की लडकी क साथ कनू खेलने गयी। वहा बाग के कोने वाली बुर्जी पर चढते समय वह उस की सीढियो पर स गिर पडी और उस की एक टाँग की हड्डी चटख गयी। यह एक छोटा-सा शहर था जहा जल्दी से सिर्फ हकीम को बुलाया जा सकता था। वह जब अपने अन्दाज स हड्डी चढा रहा था तब उस की सहायता के लिए केवल श्रीकृष्ण था, जिस ने चीखें मारती हुई कनू की टाग को पकड रखा था। कनू चीखती रही, 'अंकल, मेरी टाँग छोड दीजिए' पर जब उस के कहने क विपरीत श्रीकृष्ण ने उस की टाँग नही छोडी, तो कनू ने जितनी भी गालिया सुनी हुई थी, वे सब दे दी वह पीडा से, और गुस्से के कारण, रोती रही और गालिया देती रही

पर हड्डी बैठ गयी, पट्टी बँध गयी और फिर जब कनू सोकर उठी तो उस की टाँग म पीडा नहीं थी। यह एक ऐसे दिन की घटना थी जो कनू को न जाने क्या दे गयी। दूसरे दिन श्रीकृष्ण की गोद म बैठकर धीमे स्वर म उस ने पूछा,

'अकल ! अब आप मेरे पापा हैं न ?'

श्रीकृष्ण ने धीरे से मनू का माथा चूम लिया—उसे लगा, जो बात वह स्वयं नहीं कह पा रहा था, वह मनू ने कह दी थी और फिर मानो इस बात का जवाब देने के लिए उस ने मनू की माँ से हिम्मत माँगी—एक नजर भरकर उस की ओर देखा

माँ मनू के प्रश्न से शायद बहुत सकुचा गयी थी, जल्दी से मनू से कहने लगी, 'यह अंकल हैं, बेटा तुम्हारे पापा तो वह थे ' और उस ने मनू को दीवार पर लगी हुई तसवीर की ओर देखने का संकेत किया

मनू ने उधर भी देखा, और फिर श्रीकृष्ण के कन्धे से लगकर बोली, 'यह भी पापा हैं

और श्रीकृष्ण ने बच्ची को कसकर अपने गले से लगा लिया

फिर पता लगा कि जंग में काम आये हुए अफ़सरों की विधवाओं को सरकार सहायता दे रही है—जमीनें भी और जमीनों पर मकान बनाने के लिए रुपया भी। मनू की माँ को बड़े शहर जाकर कुछ काम करने थे, इसलिए गयी। पर जब वापस आयी वह अकेली नहीं थी, उस के साथ मनू के पापा के रैंक का एक अफसर था जो सरकारी लिखा पढ़ी में उस की सहायता करने के लिए उस के साथ आया था

श्रीकृष्ण उसी प्रकार आता रहा, मनू से खेलता रहा। पर कुछ दिनों बाद एक दिन अचानक उस ने मनू से कहा, 'हम यहाँ नहीं, बाहर बाग में चलकर ताश खेलेंगे' और बाग में जाकर वह उसी तरह पत्ते बाँटता रहा, मनू जीतती रही और हँसती रही। पर श्रीकृष्ण शायद आज पहले की तरह उस की हँसी में शामिल नहीं था। मनू अचानक ताश छोड़कर पूछने लगी, 'अंकल ! आप हँसते नहीं ? आप हार जाते हैं न, इसलिए ?'

श्रीकृष्ण को लगा, मनू के प्रश्न पर उस की आँखें गीली हो आयी थीं—शायद कुछ भीतर से रिसकर आँखों में आ गया था। उस ने मनू को कसकर अपने गले से लगा लिया—उस के मुँह से निकला, 'मनू बेटा ! लगता है हम दोनों ही हार गये हैं।'

खबर शहर के एक कोने से निकली—कचहरी से—और फिर फैल गयी—कि मनू की माँ ने उस अफसर से शादी कर ली है

पर कचहरी ने जिस खबर की सूचना कई दिन बाद दी थी श्रीकृष्ण के मन ने कई दिन पहले दे दी थी—अब कचहरी ने भी दे दी तो श्रीकृष्ण ने अपना माथा अपनी आँखों के आगे झुका लिया

केवल, कई दिन बाद, जब वह एक बार, गहरी सन्ध्या पड़े, उस बाजार से गुजर रहा था जो कनू के घर के पास था, तो उस ने कनू को अकेले उस बाजार में घूमते हुए देखा। उस से रहा नहीं गया—पास जाकर उस ने कनू को उठा लिया, पूछा, 'तुम इस वक्त ठण्ड में यहाँ क्या कर रही हो?'

कनू के हाथ में एक रुपये का नोट था, वह उसे दिखाते हुए बोली, 'वह जो पापा है न, उस ने कहा था—तुम यह पैसा ले लो और बाहर जाकर खेलो और बाजार में जाकर गोलियाँ खरीद लेना।'

श्रीकृष्ण ने एक दूकान से चाकलेट खरीदकर कनू को दिया। फिर उसे उठाकर उस के घर के दरवाज़े तक छोड़ गया। पर कनू को यह नहीं मालूम है कि श्रीकृष्ण कितनी ही देर बाहर सड़क पर अँधेरे में खड़ा रहा और कनू से कहता रहा, 'मैं तुम से कहा करता था न, कनू—हम दोनों ही हार गये हैं।'

फिर उस के बाद किसी की आवाज किसी तक नहीं पहुँची।

श्रीकृष्ण नहीं जानता कि कनू ने एक दिन बुखार के जोर में एक ही बात की रट लगा दी थी—'पापा कहाँ हैं?' और माँ ने जब इशारा कर के कहा था—'यह है तेरा पापा' तो कनू ने सिर फेर लिया था, और कहा था, 'यह नहीं, वह दूसरा।'

यह कहानी नही

पत्थर और चूना बहुत था, लेकिन अगर थोडी-सी जगह पर दीवार की तरह उभरकर खडा हो जाता, तो घर की दीवारें बन सकता था। पर बना नही। वह धरती पर फैल गया, सडकों की तरह, और वे दोनों तमाम उम्र उन सडको पर चलते रहे

सडकें, एक-दूसरे के पहलू से भी फटती हैं, एक दूसरे के शरीर को चीरकर भी गुजरती हैं, एक दूसरे से हाथ छुडाकर गुम भी हो जाती हैं, और एक दूसरे के गले से लगकर एक दूसरे मे लीन भी हो जाती थी। व एक दूसरे से मिलते रहे, पर सिर्फ़ तब, जब कभी-कभार उन के पैरो के नीचे बिछी हुई सडकें एक-दूसरे से आकर मिल जाती थी।

घडी पल के लिए शायद सडकें भी चौंककर रुक जाती थी, और उन के पैर भी

और तब शायद दोनों को उस घर का ध्यान आ जाता था जो बना नही था

बन सकता था, फिर क्यो नही बना ? वे दोनो हैरान-से होकर पाँवों के नीचे की जमीन को ऐसे देखते थे जैसे यह बात उस जमीन से पूछ रहे हो

और फिर वे कितनी ही देर जमीन की ओर ऐसे देखने लगत मानो वे अपनी नजर से जमीन मे उस घर की नीवें खोद लेंगे।

और कई बार सचमुच वहाँ जादू का एक घर उभरकर खडा हो जाता और वे दोनों ऐसे सहज मन हो जाते मानो बरसो से उस घर मे रह रहे हो

यह उन की भरपूर जवानी के दिनों की बात नही, अब की बात है, ठण्डी उम्र की बात, कि अ एक सरकारी मीटिंग के लिए स के शहर गयी। अ को भी वक्त ने स जितना सरकारी ओहदा दिया है, और बराबर की हैसियत के लोग जब मीटिंग से उठे, सरकारी दफ्तर न बाहर के शहरो से आनेवालो के लिए वापसी

टिक्ट तैयार रखे हुए थे, स ने आगे बढ़कर अ का टिक्ट ले लिया, और बाहर आकर अ से अपनी गाडी म बैठने के लिए कहा।

पूछा—'सामान कहाँ है ?'

'होटल मे।'

स न ड्राइवर से पहले होटल और फिर वापस घर चलने के लिए कहा।

अ ने आपत्ति नही की, पर तक के तौर पर कहा—'प्लेन मे सिफ दो घण्टे बाकी हैं, होटल होकर मुश्किल से एयरपोट पहुँचूगी।'

'प्लेन कल भी जायेगा, परसो भी, रोज जायेगा।' स न सिफ इतना कहा, फिर रास्ते म कुछ नहीं कहा।

होटल से सूटकेस लेकर गाडी मे रख लिया, तो एक बार अ ने फिर कहा—'वक्त थोडा है, प्लेन मिस हो जायेगा।'

स ने जवाब मे कहा—'घर पर माँ इतजार कर रही होगी।'

अ सोचती रही कि शायद स ने माँ को इस मीटिंग का दिन बताया हुआ था, पर वह समझ नही सकी—क्यो बताया था ?

अ कभी-कभी मन से यह 'क्यो' पूछ लेती थी, पर जवाब का इतजार नही करती थी। वह जानती थी—मन के पास कोई जवाब नही था। वह चुप बठी शीशे मे से बाहर शहर की इमारतो को देखती रही

कुछ देर बाद इमारतो का सिलसिला टूट गया। शहर से दूर बाहर की आबादी आ गयी, और पाम के बडे बडे पेडो की कतारें शुरू हो गयी

समुद्र शायद पास ही था, अ के साँस नमकीन से हो गये। उसे लगा—पाम के पत्तो की तरह उस के हाथो मे कम्पन आ गया था,—शायद स का घर भी अब पास था

पेडो पत्तो मे लिपटी हुई सी एक कॉटेज के पास पहुँचकर गाडी खडी हो गयी। अ भी उतरी, पर काटेज के भीतर जाते हुए एक पल के लिए बाहर केले के पेड के पास खडी हो गयी। जी किया—अपने काँपते हुए हाथो को यहाँ बाहर केले के काँपते हुए पत्तो के बीच मे रख दे। वह स के साथ भीतर कॉटेज मे जा सकती थी, पर हाथो की वहा जरूरत नही थी—इन हाथो से न वह अब स को कुछ दे सकती थी, न स से कुछ ले सकती थी

मा ने शायद गाडी की आवाज सुन ली थी, बाहर आ गयी। उन्होंने हमेशा की तरह अ का माथा चूमा और कहा—'आओ, बेटी।'

इस बार अ बहुत दिनो बाद माँ से मिली थी, पर मा ने उस के सिर पर हाथ फरते हुए—जैसे सिर पर से बरसो का बोझ उतार दिया हो—और उसे भीतर ले जाकर बिठाते हुए उस से पूछा—क्या पियोगी बेटी ?

स भी अब तक भीतर आ गया था, माँ से कहने लगा—'पहले चाय बन

-याओ, फिर खाना ।'

अ ने देखा – ड्राइवर गाडी से उस का सूटकेस अन्दर ला रहा था। उस ने स की ओर देखा, कहा —'बहुत थोडा वक्त है, मुश्किल से एयरपोर्ट पहुँचूँगी ।'

स ने उस से नही, ड्राइवर से कहा—'कल सवेरे जाकर परसो का टिकट ले आना ।' और माँ से कहा—'तुम कहती थीं कि मेरे कुछ दोस्तों को खाने पर बुलाना है, कल बुला लो ।'

अ ने स की जेब की ओर देखा जिस म उस का वापसी का टिकट पडा हुआ था, कहा—'पर यह टिकट बरबाद जायेगा '

माँ रसोई की तरफ जाते हुए खडी हो गयी, और अ के कन्धे पर अपना हाथ रखकर कहने लगी—'टिकट का क्या है, बेटी ! इतना कह रहा है, रुक जाओ ।'

पर क्या ? अ के मन म आया, पर कहा कुछ नही। कुर्सी से उठकर कमरे के आगे बरामदे मे जाकर खडी हो गयी । सामने दूर तक पाम के ऊँचे ऊचे पेड थे। समुद्र परे था। उस की आवाज सुनायी दे रही थी। अ को लगा—सिर्फ आज का 'क्यो' नही, उस की जिन्दगी के कितने ही 'क्यो' उस के मन के समुद्र के तट पर इन पाम के पेडों की तरह उगे हुए हैं और उन के पत्ते अनेक वर्षों से हवा मे काँप रहे हैं ।

अ ने घर के मेहमान की तरह चाय पी, रात को खाना खाया, और घर का गुसलखाना पूछकर रात को सोने के समय पहननेवाले कपडे बदले । घर मे एक लम्बी बैठक थी, ड्राइग डाइनिंग, और दो और कमरे थे—एक स का एक माँ का। माँ ने जिद करके अपना कमरा अ को दे दिया, और स्वय बैठक मे सो गयी।

अ सोनेवाले कमरे मे चली गयी, पर कितनी ही देर झिझकी हुई सी खडी रही। सोचती रही—मैं बैठक मे एक दो रातें मुसाफिरों की तरह ही रह लेती, ठीक था, यह कमरा माँ का है, माँ को ही रहना चाहिए था

सोनेवाले कमरे के पलँग म पर्दों म, और अलमारी मे एक घरलू-सी बू-बास होती है, अ ने इसका एक घूँट सा भरा । पर फिर अपना साँस रोक लिया मानो अपने ही साँसो से डर रही हो

बराबर का कमरा स का था। कोई आवाज नही थी। घडी पहले स ने सिर-दर्द की शिकायत की थी, नींद की गोली खायी थी, अब तक शायद सो गया था। पर बराबरवाले कमरो की भी अपनी एक बू-बास होती है, अ ने एक बार उस का भी एक घूट पीना चाहा, पर साँस रुका रहा।

फिर अ का ध्यान अलमारी के पास नीचे फश पर पड हुए अपने सूटकेस की ओर गया, और उसे हँसी सी आ गयी—यह देखो मेरा सूटकेस, मुझे सारी रात

मेरी मुसाफिरी की याद दिलाता रहेगा

और वह सूटकेस की ओर देखते हुए, थकी हुई सी, तकिये पर सिर रखकर लेट गयी

न जाने कब नींद आ गयी। सोकर जागी तो खासा दिन चढ़ा हुआ था। बैठक में रात को होनेवाली दावत की हलचल थी।

एक बार तो अ आँखें झपककर रह गयी—बैठक में सामने स खड़ा था—चारखाने का नीले रंग का तहमद पहने हुए। अ ने उसे कभी रात को सोने के समय के कपड़ों में नहीं देखा था। हमेशा दिन में ही देखा था—किसी सड़क पर, सड़क के किनारे किसी कैफे में, होटल में, या किसी सरकारी मीटिंग में—उस की यह पहचान नयी सी लगी, आँखों में अटक सी गयी

अ ने भी इस समय नाइट सूट पहना हुआ था, पर अ ने बैठक में आने से पहले उस पर ध्यान नहीं दिया था, अब ध्यान आया तो अपना आप ही अजीब लगने लगा—साधारण में असाधारण सा होता हुआ

बैठक में खड़ा हुआ स, अ को आते हुए देखकर कहने लगा—'ये दो सोफे हैं, इन्हें लम्बाई के रुख रख लें। बीच में जगह खुली हो जायेगी।'

अ ने सोफों को पकड़वाया, छोटी मेजों को उठाकर कुर्सियों के बीच में रखा। फिर माँ ने चौके से आवाज़ दी तो अ ने चाय लाकर मेज पर रख दी।

चाय पीकर स ने उस से कहा—'चलो, जिन लोगों को बुलाना है, उन के घर जाकर कह आयें और लौटते हुए कुछ फल लेते आयें।'

दोनों ने पुराने परिचित दोस्तों के घर जाकर दस्तक दी, सन्देशे दिये, रास्ते से चीज़ें खरीदीं, फिर वापस आकर दोपहर का खाना खाया, और फिर बैठक को फूलों से सजाने में लग गये।

दोनों ने रास्ते में साधारण सी बातें की थीं—फल कौन कौन से लेने हैं? पान लेने हैं या नहीं? ड्रिंक्स के साथ के लिए कबाब कितने ले लें? फलाँ का घर रास्ते में पड़ता है, उसे भी बुला लें?—और यह बातें वे नहीं थीं जो सात बरस बाद मिलनेवाले करते हैं।

अ को सवेरे दोस्तों के घर पर पहली-दूसरी दस्तक देते समय ही सिर्फ थोड़ी-सी परेशानी महसूस हुई थी। वे भले ही स के दोस्त थे, पर एक लम्बे समय से अ को जानते थे, दरवाज़ा खोलने पर बाहर उसे स के साथ देखते तो हैरान से हो कह उठते—'आप!'

पर वे जब अकेले गाड़ी में बैठते तो स हँस देता—'देखा, कितना हैरान हो गया उस से बोला भी नहीं जा रहा था।'

और फिर एक-दो बार के बाद दोस्तों की हैरानी भी उन की साधारण बातों में शामिल हो गयी। स की तरह अ भी सहज मन से हँसने लगी।

शाम के समय स ने छाती मे दर्द की शिकायत की। माँ ने कटोरी म ब्राण्डी डाल दी, और अ से कहा—'लो, बेटी ! यह ब्राण्डी इस की छाती पर मल दो।'

इस समय तक शायद इतना कुछ सहज हो चुका था, अ ने स की कमीज के ऊपरवाले बटन खोले, और हाथ से उस की छाती पर ब्राण्डी मलने लगी।

बाहर पाम के पेड़ों के पत्ते और बेलों के पत्ते शायद अभी भी काँप रहे थे, पर अ के हाथ मे कम्पन नही था। एक दोस्त समय से पहले आ गया था, अ ने ब्राण्डी मे भीगे हुए हाथों से उस का स्वागत करते हुए उसे नमस्कार भी किया, और फिर कटोरी म हाथ डोबकर बाकी रहती ब्राण्डी को उस की गदन पर मल दिया—कन्धो तक।

धीरे धीरे कमरा मेहमानो से भर गया। अ फ्रिज से बरफ निकालती रही और सादा पानी भर भर फ्रिज मे रखती रही। बीच-बीच मे रसोई की तरफ जाती, ठण्डे कबाब फिर से गम करके ले आती। सिफ एक बार जब स न अ के कान के पास होकर कहा—'तीन चार तो वे लोग भी आ गये हैं जिन्हें बुलाया नही था। जरूर किसी दोस्त न उन से भी कहा होगा, तुम्हे देखने के लिए आ गये हैं'—तो पल भर के लिए अ की स्वाभाविकता टूटी, पर फिर जब स ने उस से कुछ गिलास धोने के लिए कहा, तो वह उसी तरह सहज मन हो गयी।

महफिल गर्म हुई, रात ठण्डी हुई, और जब लगभग आधी रात के समय सब चले गये, अ का सानेवाले कमरे मे जाकर अपने सूटकेस मे से रात के कपडे निकालकर पहनते हुए लगा—कि सडको पर बना हुआ जादू का घर अब कही भी नही था

यह जादू का घर उस ने कई बार देखा था—बनते हुए भी, मिटते हुए भी, इसलिए वह हैरान नही थी। सिफ थकी थकी सी तकिये पर सिर रखकर सोचने लगी—कब की बात है शायद पचीस बरस हो गये—नही, तीस बरस जब पहली बार वे जिन्दगी की सडकों पर मिले थे—अ किस सडक से आयी थी, स कौन सी सडक से आया था, दोनों पूछना भी भूल गये थे, और बताना भी। वे निगाह नीची किये, जमीन मे नीवें खोदते रहे, और फिर वहाँ जादू का एक घर बनकर खडा हो गया, और व सहज मन से सारे दिन उस घर मे रहते रहे।

फिर जब दोनो की सडकों ने उन्हें आवाजें दी, वे अपनी अपनी सडक की ओर जाते हुए चौंककर खडे हो गये। देखा—दोनो सडको के बीच एक गहरी खाई थी। स कितनी ही देर उस खाई की ओर देखता रहा, जैसे अ से पूछ रहा हो कि इस खाई को तुम किस तरह पार करोगी ? अ ने कहा कुछ नही था, पर स की हाथ के ओर देखा था, जैसे कह रही हो—तुम हाथ पकडकर पार करा

लो, मैं मजहब की इस खाई को पार कर जाऊँगी।

फिर स का ध्यान ऊपर की ओर गया था, अ के हाथ की ओर। अ की उँगली मे हीरे की एक अँगूठी चमक रही थी। स कितनी देर तक दखता रहा, जस पूछ रहा हो—तुम्हारी उगली पर यह जो कानून का धागा लिपटा हुआ है, मैं इस का क्या करूँगा ? अ ने अपनी उँगली की ओर देखा था और धीरे से हँस पडी थी जैसे कह रही हो—तुम एक बार कहो, मैं कानून का यह धागा नाखूनों से खोल दूँगी। नाखूना से नही खुलेगा तो दाँतो से खोल दूगी।

पर स चुप रहा था, और अ भी चुप खडी रह गयी थी। पर जसे सडकें एक ही जगह पर खडी हुई भी चलती रहती हैं, वे भी एक जगह पर खडे हुए चलते रहे

फिर एक दिन स के शहर से आनेवाली सडक अ के शहर आ गयी थी, और अ ने स की आवाज सुनकर अपने एक वरस के बच्चे को उठाया था और बाहर सडक पर उस के पास आकर खडी हो गयी थी। स ने धीरे से हाथ आगे करके सोये हुए बच्चे को अ से ले लिया था और अपने कन्धे से लगा लिया था। और फिर वे सारे दिन उस शहर की सडको पर चलते रहे

वे उन की भरपूर जवानी के दिन थे—उन के लिए न धूप थी, न ठण्ड। और फिर जब चाय पीने के लिए वे एक कफे मे गये तो बैरे ने एक मद, एक औरत और एक बच्चे को देखकर एक अलग कोने की कुर्सियाँ पोंछ दी थीं। और कफे के उस अलग कोने म एक जादू का घर बनकर खडा हो गया था

और एक बार अचानक चलती हुई रेलगाडी मे मिलाप हो गया था। स भी था माँ भी, और स का एक दोस्त भी। अ की सीट बहुत दूर थी, पर स के दोस्त ने उस से अपनी सीट बदल ली थी और उस का सूटकेस उठाकर स के सूटकेस के पास रख दिया था। गाडी मे दिन के समय ठण्ड नही थी पर रात ठण्डी थी। माँ न दोनो को एक कम्बल दे दिया था, आधा स के लिए आधा अ के लिए। और चलती हुई गाडी मे उस साझे के कम्बल के किनारे जादू के घर की दीवारें बन गयी थीं

जादू की दीवारें बनती थी, मिटती थी, और आखिर उन के बीच खण्डहरों की सी खामोशी का एक ढेर लग जाता था

स को कोई बन्धन नही था। अ को था। पर वह तोड सकती थी। फिर यह क्या था कि वे तमाम उम्र सडकों पर चलते रहे

अब तो उम्र बीत गयी—अ ने उम्र के तपते दिनो के बारे मे भी सोचा और अब के ठण्डे दिनों के बारे में भी। लगा—सब दिन, सब बरस पाम के पत्तों की तरह हवा मे खडे काप रहे थे।

बहुत दिन हुए, एक बार अ ने बरसो की खामोशी को तोडकर पूछा था—

'तुम बोलते क्यों नही ? कुछ भी नही कहते । कुछ तो कहो !'

पर स हँस दिया था, कहने लगा—'यहाँ रोशनी बहुत है, हर जगह रोशनी होती है, मुझसे बोला नहीं जाता ।

और अ का जी किया था—वह एक बार सूरज को पकडकर बुझा द

सडको पर सिफ दिन चढते हैं । रातें तो घरो मे होती हैं पर घर कोई था नही, इसलिए रात भी कही नही थी—उन के पास सिफ सडकें थी, और सूरज था, और स सूरज की रोशनी मे बोलता नही था ।

एक बार बोला था —

वह चुप-सा बैठा हुआ था जब अ न पूछा था—'क्या सोच रहे हो ?' तो वह बोला—'सोच रहा हूँ लडकियों से पलट करूँ और तुम्हें दु खी करूँ ।'

पर इस तरह अ दुखी नही, सुखी हो जाती । इसलिए अ भी हँसन लगी थी, स भी ।

और फिर एक लम्बी खामोशी

कई बार अ के जी मे आता था—हाथ आगे बढाकर स को उस की खामोशी मे से बाहर ले आये, वहाँ तक जहाँ तक दिल का दद है । पर वह अपने हाथो को सिफ देखती रहती थी, उस ने हाथा म कभी कुछ कहा नही था ।

एक बार स ने कहा था—'चलो, चीन चलें !'

'चीन ?'

'जायेंगे, पर आयेंगे नही !'

'पर चीन क्यो ?'

यह 'क्यो' भी शायद पाम के पेड के समान था जिस के पत्त फिर हवा मे काँपने लगे

इस समय अ न तकिये पर सिर रखा हुआ था, पर नीद नही आ रही थी । स बराबर के कमरे म सोया हुआ था, शायद नीद की गोली खाकर ।

अ को न अपन जागन पर गुस्सा आया, न स की नीद पर । वह सिफ यह सोच रही थी—कि वे सडको पर चलते हुए जब कभी मिल जाते हैं तो वहाँ घडी-पहर के लिए एक जादू का घर क्यो बनकर खडा हो जाता है ?

अ को हँसी सी आ गयी—तपती हुई जवानी के समय तो एसा होता था, ठीक है, लेकिन अब क्यो होता है ? आज क्या हुआ ?

यह न जान क्या था, जो उम्र की पकड म नही आ रहा था

बाकी रात न जान कब बीत गयी—अब दरवाजे पर धीरे से खटका करता हुआ ड्राइवर कह रहा था कि एयरपोर्ट जाने का समय हो गया है

अ ने साड़ी पहनी, सूटकेस उठाया, स भी जागकर अपने कमरे से आ गया, और वे दोनों उस दरवाजे की ओर बढ़े जो बाहर सड़क की ओर खुलता था

ड्राइवर ने अ के हाथ से सूटकेस ले लिया था, अ का अपने हाथ और खाली खाली से लगे। वह दहलीज के पास अटक-सी गयी, फिर जल्दी से अन्दर गयी और बैठक में सोयी हुई माँ को खाली हाथों से प्रणाम करके बाहर आ गयी

फिर एयरपोर्टवाली सड़क शुरू हो गयी, खत्म होने को भी आ गयी, पर स भी चुप था, अ भी

अचानक स ने कहा—'तुम कुछ कहने जा रही थीं?'

'नहीं।'

और वह फिर चुप हो गया।

फिर अ को लगा—शायद स को भी—कि बहुत कुछ कहने को था, बहुत कुछ सुनने को, पर बहुत देर हो गयी थी, और अब सब शब्द जमीन में गड गये थे—पाम के पेड बन गये थे और मन के समुद्र के पास लगे हुए उन पेड़ों के पत्ते शायद तब तक काँपते रहेंगे जब तक हवा चलती रहेगी

एयरपोर्ट आ गया और पाँवों के नीचे से के शहर की सडक टूट गयी

अब सामने एक नयी सडक थी—जो हवा में से गुजरकर अ के शहर की एक सडक से जा मिलने को थी

और वहाँ जहाँ दो सडकें एक-दूसरे के पहलू से निकलती हैं, स ने धीरे से अ को अपने कन्धे से लगा लिया। और फिर वे दोनों काँपते हुए, पाँवों के नीचे की जमीन को इस तरह देखने लगे, जैसे उन्हें उस घर का ध्यान आ गया हो जो नहीं बना था

वह आदमी

बीस बरस तक उसे एक ही सपना आता रहा

जिस दफ्तर में वह नौकरी करता था, उस का मालिक खुश था कि वह दफ्तर के सारे डायल पर घडी की सुई की तरह घूमता था। उसे किसी काम को याद दिलाने की जरूरत नही पडती थी। यानी घडी को चाबी देने की जरूरत नही थी। उस का मालिक कभी कभी सोचता था— घडी तो कभी-कभी रुक जाती है, सिफ वक्त नही रुकता यह जिन्दगी के वक्त की तरह है

वह दफ्तर की चारदीवारी मे से निकलता और सीधा घर की चार-दीवारी मे दाखिल हो जाता। उस की बीवी खुश थी— छोटी से लेकर बडी जरूरतो तक वह जो चाहती उससे माँग सकती थी। वह कभी मना नहीं करता था। घर मे कुछ भी गिरता, टूटता, खोता, वह कभी माथे पर बल नही डालता था।

चार-चार दीवारो के दो परकोटे थे—जिनमे दफ्तर का मालिक दिन की तरह चढ़ता था, और घर की बीवी रात सरीखी पडती थी—सिफ अज्ञात राग की तरह। उसे एक बात पता थी कि यह सबकुछ एक पराया सपना था

और पूरे बीस बरसों तक उसे यह पराया सपना आता रहा

सिफ जो तेवर उस के माथे पर नही पडे थे, वे उस के अन्तस मे पड गये थे। वे उस के ही दिल पर पड गये थे—और दिल एक तेवर के कसे हुए मास की तरह हो गया था।

उसे लगता वह पराई नीद सोता था, पराई नीद जागता था।

फिर एक हादसा हुआ। उसकी बीवी को छोटे से आपरेशन की जरूरत थी। अच्छी भली अस्पताल गयी, पर जि दा वापस नही आयी।

और उस की जि दगी का एक परकोटा टूट गया—भगवान के हाथो स पर दूसरा बाकी था—उसे उस न दूसरे दिन भगवान की रीस मे अपन हाथा से तोड दिया! अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

और इस तरह एकबारगी चार चार दीवारों के दोनों परकोट टूट गए।

उस बीवी की मौत पर अफसोस था — पर इस तरह जिस तरह एक नरम दिल वाले इन्सान को पड़ोसी के घर हुई मौत पर अफसोस होता है, या अखबार में किसी दूर पास के व्यक्ति की मौत की खबर पढ़कर होता है। पल भर के लिए आदमी का मुँह उतर जाता है मन भी, पर फिर आदमी अपने काम धन्धे में लग जाता है।

वह भी काम धन्धे में लग गया।

उस का सब से पहला काम था—कि घर में उस को जो भी चीज फालतू लगती, उसे वह आधी चौथाई कीमत पर बेचकर, जगह खाली कर रहा था।

रेडियोग्राम उस के लिए सब से फालतू चीज थी—निरा शोर, उसने सब से पहले उस से छुटकारा पाया। कुकिंग रेंज ने भी यूँ ही जगह घेर रखी थी—उसे तो कुछ पकाने के लिए सिर्फ आग की एक लपट चाहिए थी, और आग की लपट के लिए दो एक ईंटें बहुत थीं। फ्रिज ने यूँ ही पसारा किया हुआ था—उसे दो जून की ताजा रोटी में से कुछ भी बचाकर रखने की जरूरत नहीं थी। महँगे स्टील के बर्तन बिलकुल फिजूल थे—एक हाँडी, एक तवा, और एक आध प्लेट-प्याला, या एक-आध और कोई बर्तन बहुत था। वाशिंग मशीन एकदम निकम्मी चीज थी वह अपना कमीज-कुर्ता रोज अपने हाथ से धो सकता था। महँगी कुर्सियाँ और मेज तो उसे बिलकुल नहीं चाहिए थे—लकड़ी के एक-दो मूढ़े उस के लिए काफी थे।

बिजली, पानी, टेलीफोन, हाउस टैक्स और इन्कम टैक्स के बिल अदा कर दिए थे। अब उस ने फैसला किया कि ये सब आखिरी बिल थे। अब वह इन की अदायगी के लिए किसी कतार में खड़ा नहीं होगा।

उसे सिर्फ खाली जगह चाहिए थी—अपने बैठने के लिए अपने खड़े होने के लिए, अपने सोने के लिए और अपने जागने के लिए

चीजों ने जगह खाली कर दी, पर यह काफी नहीं था, उसके चारों तरफ पक्की ईंटों की दीवारें थीं, और ये उसके अस्तित्व को चुभ रही थीं।

उसे याद आया—जब कभी शुरू शुरू में वह अपनी बीवी से अपने सपनों की बातें किया करता था, तो उस की बीवी को अपने चारों ओर धूल उड़ती-सी लगती थी। उसे पता था कि उस का सपना शहर की और सभ्यता की पक्की सड़कों पर चलनेवाला नहीं था, वह कच्ची, निर्जन राह माँगता था, और उस की बीवी को कच्ची निर्जन राह की बात कभी समझ में नहीं आती थी।

वह बीवी की मौत के बाद और नौकरी के इस्तीफे के बाद जब जी भरकर सोया, उसे लगा वह अपनी नींद सोया था—और अपनी जाग जागा था।

सो, जल्दी ही, अगले दिनों में, उस ने पक्की सड़कों से हिसाब किताब चुका-

कर एक पहाडी गाँव की कच्ची राह पकड ली। थोडी-सी जमीन खरीदी, उस पर घास और मिट्टी की एक झोपडी इस तरह बनायी जैसे आदमी अपने गले में कमीज-कुर्ता पहनता है, या सर्दी और पाले से बचाव के लिए कोई चादर या लोई लपेटता ।

यह झोंपडी उस के बदन को चुभती नही थी—उस के अस्तित्व के लिए दूर, परे तक जमीन भी खुली हुई थी—आसमान भी खुला हुआ था

और दूर जहाँ तक नजर जाती थी खेतो से परे—नदी से परे—छोटी बडी पहाडियो से भी आगे—उसे अपना अस्तित्व दिखता था।

उस के हाथ पैर थकना चाहते थे पर मन नही थकना चाहता था। अब वह जब अपनी छोटी छोटी क्यारियो को गोडता और बीजता—उसे एक रहस्य-सा खुलता लगा

"जब हाथ-पैर नहीं थकते तब मन थक जाता है—
मैं बीस बरसो का थका हुआ था।
अब मेरे हाथ-पैर थकने लगे हैं—
तो मेरे बीस बरसो की थकावट उतरने लगी है।"

आवाजें अब भी दूर और पास उस के गिर्द थी—पेडों के पत्तो की शाँ शाँ, घास की सरर सरर, पास की नदी के पानी की कल कल, उस की एक बकरी की मैं मैं, उस की तीन मुर्गियो की कुड कुड, और शुरू जाडो मे दूर पहाडी पगडण्डियों पर से उतरते 'गद्दी' गीतो की आवाज, और शुरू गर्मियो मे उन्ही पगडण्डियों पर से पहाडो पर चढते गीतों के स्वर। पर ये आवाजें उसे अपने दिल की धकधक की तरह लगती। या अपनी बाँह मे टकटक करती नब्ज की तरह। और इन की जगह जब कभी उसे अपने दफ्तर के मालिक के, या घर की बीवी के, रोटी के, चाय के, या शराब के समागम याद आ जाते तो वह घबराकर अपने दोनो कानो पर हाथ रख लेता। और अब वह अपनी आँखो से अपना सपना देख रहा था जो नित्य नया था। इस मे कहीं से उडकर आ बैठते पछी थे, पेड़ो की शाखाओ पर उगते पत्ते थे, मक्की के सिट्टो के उभरते दाने थे, याद क पौधो पर फूटती पत्तियाँ थी

सात बरस गुजर गये। शान्त और निर्विघ्न।

एक दिन दिनढले, वह गुड और शहद से रोटी खाकर चूल्हे की आग के पास बैठा, दिये की रोशनी मे रोज की तरह एक किताब पढ़ रहा था कि झोपडी के दरवाजे की जगह अडाये हुए लकडी के तख्ते पर खडका हुआ।

वह किताब से सिर उठाकर कुछ देर तख्ते को ऐसे ताकता रहा जसे वह उस की झोंपडी का तख्ता नही, किसी और के घर का दरवाजा हो। भला उस

के पास कौन आता ?

फिर वह खडा हुआ। साथ ही तख्त की झिरियों म से गुजरती हुई कुछ आवाज भी आयी, जो उस ने पहचानी नही। उस ने उठकर दरवाजे के तख्त को हाथ से उठाया, परे किया—सामने एक जवान-सा लडका खडा हुआ था, जिस ने झिझकते हुए कहा—"आप के पी मदान कँवर साहब ?"

उस ने बरसो बाद अपना नाम सुना, जिस को उस ने इस कच्ची राह पर आते हुए, परे पक्की सडक पर ही छोड दिया था। पर पूछनेवाले को जवाब देना ही था, इसलिए दिया—"हाँ।"

'मैं अन्दर आ जाऊँ?"

उस न दरवाजे से परे होकर, आनेवाले के गुजरने के लिए जगह छोड दी। आनेवाले के हाथ मे एक पुराना, पर बडा सा सूटकेस था।

आनेवाले ने सूटकेस को अन्दर रखते हुए, उस के बोझ से हल्का होते हुए, चूल्हे की आग की ओर देखा, फिर उस के मुह की ओर ताकता कहने लगा—'मैं इन्द्र हूँ आपका छोटा भाई ..."

इन्द्र ?' उसे एक एक पुरानी सुनी हुई—आधी याद और आधी भूली हुई कहानी के पात्र की तरह यह नाम याद आया—और कुछ पहचान सी भी उन दिनो जब उसका बाप जिन्दा था तो अपनी सौतेली मा के इस बेटे को देखा था। तब यह इन्द्र मुश्किल से स्कूल जाने लायक बडा था।

तख्त को फिर पहली जगह रखते हुए और ऊँचे मूढे जितने लकडी के ठूठ को चूल्हे के पास रखते हुए उस ने इन्द्र से बैठने के लिए कहा, फिर कुछ पूछने के लिए उस की तरफ देखा। पर बाप जिन्दा नही था, जिस के बारे मे कुछ पूछ सकता था, और सौतेली माँ ने मुद्दत से उस से नाता तोड रखा था, इसलिए पूछने लायक कुछ भी नही था

इन्द्र खुद ही कहने लगा, "मैं ने शहर से, आपके पुराने दफ्तर से आपकाकुछ पता लगाया। फिर गाडी से उतरकर रास्ते मे पडनेवाले गाँवो मे पूछता रहा "

उस के जी मे आया कि वह कहे—किसलिए ?' पर किसी घर आये को ऐसे कहना उसे ठीक नही लगा। इस की जगह उस ने कह—कुछ खाओगे ? रोटी—चाय ?'

इन्द्र ने जल्दी से कहा—"मुझे तो बडी भूख लगी है।

उस ने एक मिट्टी के घडे मे रखा हुआ आटा मुटिठया से निकालकर एक थाली मे गूदा, फिर चूल्हे पर तवा रख दिया। चूल्हे म कुछ नयी लकडियाँ डालकर उस ने कुछ रोटियाँ सेंकी फिर थाली मे गुड और शहद रखकर उसे रोटी दे दी। खयाल आया, सुबह उस ने अपने लिये दो अण्डे उबाले थे, पर खाना भूल गया था वे अभी आले मे पडे हुए थे। उस ने वे अण्डे भी छीले और

चूल्हे पर चाय का पानी रख दिया।

इन्द्र को शायद बहुत भूख लगी थी—यह सादी रूखी-सूखी रोटी वह जल्दी जल्दी खा रहा था। इन्द्र को ऐसे रोटी खाते देखकर उसे कुछ अच्छा लगा। पर साथ ही उस का ध्यान उस के सूटकेस की ओर गया—तो उसे खयाल आया कि यह अब रात को यहीं रहेगा। और उस के लिए अपने बिछौने से जरा परे एक बिछौना बिछाते हुए उसे समूची झोंपड़ी अजीब सी लगने लगी।

गर्म चाय के घूंट भरता हुआ इन्द्र ऊंघ रहा था। फिर वह चुपचाप चाय का खाली प्याला एक ओर रखकर अपने बिछौने पर जाकर सो गया।

वह कुछ देर तक उस के मुंह की तरफ़ ताकता रहा, फिर चूल्हे की लकड़ियाँ पीछे खींचता हुआ खुद भी सोने की कोशिश करने लगा।

सुबह चूल्हे पर दलिया पकाने को रखकर, जब वह बकरी का दूध दुहने लगा, तब वह सोचने लगा—बस, अब चाय पानी पिलाकर विदा कर दूंगा। वैसे तो शायद वह खुद ही

और दूध की लुटिया उठाते हुए उसे खयाल आया—कह रहा था, शहर मे दफ्तर से तुम्हारा पता पूछा, फिर गाडी से उतरकर रास्ते मे आनेवाले गाँवो मे पूछता रहा—जो ऐसे पूछते पूछते आया है, पता नही किसलिए आया है, कितने समय के लिए आया है

दूध की लुटिया लाते हुए उस ने देखा, इन्द्र सोकर उठा है, झोपडी के बाहर आया है, दूर पहाड की ओट मे उगते हुए सूरज को देखकर बहुत खुश होकर हैरान-सा खडा हुआ है उस का गुस्सा कुछ कम हो गया।

"कही पानी की आवाज आ रही है, पास ही कही कोई नदी बहती है?" इन्द्र ने पूछा, और हाथ के इशारे से जवाब मिलने पर कि सामने इन पडो के पीछे वह एक हिरन की तरह चौकड़ी भरता हुआ पेडों की तरफ़ बढ़ गया।

उस ने दलिया पकाकर, गुड और दूध डालकर, हाँडी चूल्हे के पास रख दी और चूल्हे पर चाय का पानी रखकर, चश्मे से पानी का घडा भरने के लिए चला गया।

वह पानी का घडा लेकर लौट रहा था कि नदी से नहाकर आते हुए इन्द्र ने उसे दूर से ही देखा, और तेज़ कदमों से चलकर रास्ते मे ही पानी का घडा उठा लिया।

रात शायद इस लडके को लम्बे सफर की थकान थी, शायद भाई 'नाम' के सुने सुनाये आदमी से इस तरह आकर मिलने की घबराहट थी, या वैसे ही शायद रात अँधेरे म यूं लगता था—अब उस के आगे दलिये का प्याला और चाय का गिलास रखते हुए उसे लगा—रात को यह कुछ और ही तरह का शहर का बिगडैल सा लग रहा था, पर अब नदी से नहा धोकर आया है तो

अच्छा-भला अच्छी सूरत-शक्ल का दिख रहा है शायद मन का भी बुरा नही।

और चूल्हे के पास बठकर धीरे धीरे चाय पीते हुए बीस बरसों से भी ज्यादा बीते समय के कुछ टुकडे स्मृति-पट पर हिलने-से लगे बाप हमेशा अपने व्यापार म व्यस्त, हमेशा बढ़ते या गिरते भाव की बातें करता, हमेशा किसी जल्दी मे कहीं जा रहा और माँ हमेशा शीशे के आगे खडी कघी करती, या बाजार रग कपडे खरीदने के लिए जा रही उस छुटपन मे ही होस्टल म भेज दिया गया था, और कितनी देर बाद पता लगा कि घर म माँ नाम की जो औरत थी, वह उस की माँ नही थी। उस की माँ उस के जन्म के बाद ही मर गयी थी।

स्कूल-कालेज की छुट्टिया म दसे हुए घर की कुछ परछाइयाँ सी उस की आँखो म हिली, पर वह आँखें झपकाकर इन्द्र की तरफ देखता, उस के नक्शो म किसी याद को खोज न पाया।

तू यहाँ क्यों आया है ?—कुछ ऐसी ही बात पूछनी थी—पर इन्द्र इस समय नहा-खाकर एक तृप्त बिल्ली की तरह चूल्हे के पास अलसाया सा बैठा हुआ था। उस से कुछ भी न पूछा गया।

बल्कि चूल्हे की धीमी आँच पर दाल की हडिया रखते हुए उस ने कहा—"चने की दाल खा लोगे ना ? ' और साथ ही कहा—' तुम्हारा जी करता हो तो सामने की पहाडी पर घूम आना मैं जरा मटर की क्यारी देख आऊँ—कोई दाना पड गया हो तो दो चार तोड लाऊँ "

वह उठकर बाहर की क्यारी की तरफ चला, तो देखा—इन्द्र उस के पीछे-पीछे उस के साथ चला आ रहा था। कुछ देर दोनो चुपचाप चलते रहे। एक बार वह पीछे अमरूदो के पेडा के पास खडा हुआ-सा लगा, पर फिर लम्बे-लम्बे डग भरते हुए वहाँ उस के पास आ गया, जहाँ फलियो को टटोलकर वह पके हुए मटर तोड रहा था।

' अपने कितने एक खेत हैं ?"

उसे दूर परे देखते हुए इन्द्र की आवाज सुनायी दी तो उसने परली पहाडियो तक देखते हुए जवाब दिया—"जहा तक नजर जाती है सब कुछ अपना है यहाँ का झरना भी, नदी भी यह सारा जगल भी '

इन्द्र जगली फूलो की तरह हँसने लगा। आस पास कोई बोया या जुता हुआ खेत दिखायी नही दे रहा था कहने लगा—"यह जगल तो जगलात के महकमे का होगा।'

मटर की पोटली सी बाँधते हुए वह क्यारी के पास से उठ बठा, और जगल की तरफ देखकर कहने लगा—'उन का क्या है वर्दिया पहनकर बरस म एक

चार आते हैं, पेड़ो पर नम्बर से लिख जाते हैं और चले जाते हैं। यह सब कुछ मेरा ही रहता है या जगली जानवरो का "

और वह खुद भी जगली फूलो की तरह हँसने लगा।

इधर अनार और अमरूदो के पेडो के नीचे उस ने मिट्टी का एक थडा-सा अपने बैठने के लिए बनाया हुआ था। उस थडे के पास आकर वे दोना खडे हो गये। एक तरफ कुछ ढलान पर मक्की की एक छोटी-सी क्यारी थी, इन्द्र उस की ओर देखकर पूछने लगा—"अपनी है?'

उस ने मिट्टी के थडे पर बैठते हुए 'हाँ' म सिर हिलाया।

"बस इतनी एक? हम और भी तो बो सकते हैं "

उस ने एक बार गौर से इन्द्र के मुँह की ओर ताका, फिर कहने लगा—"किसलिए? फिर फालतू की मडी मे ले जाकर बेचनी पडेगी मक्की भी मैं ने अपने लिये बो रखी है, चाय के दो चार पौधे भी अपने लिये साग सब्जी भी अपने लिये "

और उसे इन्द्र का अभी कहा हुआ वाक्य अपने कानों मे अटकता सा लगा—'हम और भी तो बो सकते हैं और उस ने अपने कानो को मला—जसे 'हम' शब्द को कान के मल की तरह बाहर निकाल रहा हो

इन्द्र ने उस के पास उस के थडे पर बैठते हुए बडी नम्रता से कहा—"मुझे यहाँ अपने पास रख लो "

वह थडे पर से उठने को हुआ, पर फिर सँभलता हुआ बैठ गया।

इन्द्र, सिर को कुछ नीचा सा करके, कहने लगा, "माँ बहुत दिनो से बीमार थी उस ने तमाम रुपया मामा के पास रखा हुआ था "

उसे याद आया—यह उडती-सी बात उस ने सुनी थी कि बाप का सारा पैसा माँ अपने भाइयो के पास रखा करती थी कि उस के पीछे उस का सौतेला बेटा कुछ ले न सके। उसे हँसी-सी आयी, इन्द्र से पूछने लगा—' फिर?'

'मामा ने कुछ नही दिया—माँ पिछले महीने मर गयी " इन्द्र का मुह उतरा हुआ था, सिर झुका हुआ था, आवाज बुझी हुई थी, कह रहा था—"मेरे पास और कोई जगह रहने को नही है "

वह घबराकर थडे पर से खडा हो गया। उस ने जोर से चीखकर कहना चाहा—'नही, नही बिलकुल नही ' पर उस की आवाज उस के गले मे ऐसे खो गयी—जैसे पहाडी मोड पर खो जाती है। वह बेबस सा इधर अपनी बाँह के पास आकर खडे हुए इन्द्र की ओर देख रहा था, और इन्द्र कह रहा था—"कँवर भैया! मेरा और कोई नही "

उस ने हाथ से इन्द्र को बाँह से परे करना चाहा, पर हैरान होकर देखा, उसका हाथ इन्द्र के कन्धे के पास जाकर कन्धे पर टिक गया था। जसे वह हाथ

की हथेली से उस को सहारा भी दे रहा था और आसरा भी।

सामने एक भोला सा मुँह था, कोमल सा, और शायद मामा लोगों की दर्गा से घबडाकर सारी सभ्यता से भागा हुआ। उस ने हाथ से उस के कन्धों को सहलाया। कहा— 'अच्छा! तू इस मक्की की क्यारी के पास अपनी कुठरिया बना ले।"

लडका मक्की के दाने की तरह खिलता सा लगा। उस ने खुद उस के साथ मिलकर गारा बनवाया। नीचे के गाँव से छत के लिए पत्थर की सलेटें ढुलवायीं, और उस के कहने पर—उस का मन रखने के लिए— गाँव के बढई से चौखट और दरवाजा भी बनवा दिया।

वैसे वह मन मे सोच रहा था कि ये शहर के बीज शहर मे ही उगते हैं। पढा लिखा है—मर्द है, खुद ही दो चार महीनो मे ऊबकर शहर चला जायेगा।

उस की खरीदी हुई जमीन की हदबन्दी सिर्फ कागजों मे थी, उस ने कोई बाड बाँध नही लगाया हुआ था। जमीन काफी थी, पर उस ने कभी जोती-बोई नही थी। इन्द्र ने उस से पूछकर काफी सारी जमीन को क्यारियों म बाट दिया। फिर नीचे के गाँव से कुछ कमेरे बुलाकर उन की जुताई बिजाई करवा दी।

इन्द्र बीच बीच मे शहर चला जाता था, और उस के जाने के बाद वह हर बार सोचता था कि इस बार शायद उस को कोई नौकरी मिल जायेगी, और वह शहर में ही रह जायेगा। उस का यह सोचना सिर्फ उस की तमन्ना थी, जो हर बार पूरी नही होती थी। और इन्द्र पाचवें सातवें दिन या दसवें दिन फिर लौट आता था।

अब कभी कभी इन्द्र को शहर से चिट्ठी भी आती थी, पर पता नही किस की, उस ने कभी पूछा नही था। पर डाकिये का ऐसे अचानक सिर पर आ खडे होना उसे अच्छा नही लगता था।

एक दिन इसी तरह एक चिट्ठी आयी, उस के सामने इन्द्र ने खोली, पढी, और उस का मुँह मटमैला सा होता गया।

उस के अनुमान से यह ऐसी चिट्ठी थी—इन्द्र के किसी दोस्त मित्र की लिखी हुई जिस म इन्द्र को नौकरी की आस टूटती-सी लगी थी।

इन्द्र की जुती बोयी हुई क्यारियाँ अब कमर तक उसरा आयी थी—पर इन्द्र चिट्ठी को हाथ म पकडकर क्यारियो की तरफ ऐसे देख रहा था—जैसे किसी बल या डगर न उन क्यारियों को रौंद दिया हो।

वह पेड की एक टहनी म हाथ डालकर, और हाथ की किताब को हाथ मे ही बन्द करके, इन्द्र के मुह की ओर ताक रहा था। इन्द्र ने डरी हुई आँखो से उस की तरफ देखा—फिर उस की बाँह के पास खडे होकर बाँह का घीम से थामकर बोला— 'कँवर भया उस लडकी का खत आया है ' और उस की

आवाज बाहर होने की बजाय उस के गले में उतर गयी।

उस ने बाँह को झटके से छुड़ाकर पूछना चाहा कि कौन-सी लड़की किस लड़की का पर उस से न बाँह हिलायी गयी न जीभ।

"कहती है—उस का बाप उसे भी जान से मार देगा और मुझे भी "

"क्यों ?" उस के मुँह से मुश्किल से निकला।

इन्द्र की आवाज लड़खड़ाई-सी थी—"वह बीमार है नहीं, बीमार नहीं डाक्टर ने बताया है उसे बच्चा "

सुनकर उस के माथे पर एक तेवर पड़ गया। तपी हुई सी आवाज में पूछने लगा—'तेरा बच्चा है ?"

इन्द्र ने शर्मिन्दा सा होकर सिर झुका लिया।

उस ने उसी तपी हुई आवाज में पूछा—'और वह क्या कहती है ?"

"ब्याह " इन्द्र के मुह से सिर्फ इतना सा कहा गया।

वह पल भर कच्चे अनारों की टहनी पर आ बैठी चिड़िया को देखता रहा। फिर हँस पड़ा—"जाओ, शहर जाकर, जैसे वह कहती है, उस के साथ ब्याह कर लो।"

इन्द्र का मुह अनार के फूलों की तरह खिल उठा। उस ने मुह से कुछ न कहा, पर अपनी सलेटोवाली छत की ओर ऐसे चल पड़ा जैसे अभी जल्दी से ब्याह का कुछ काम काज करना हो।

वह खुद जब अपनी झोपड़ी में आया, न चाहते हुए भी उस ने छत की कड़ियों के बीच रखी हुई एक पोटली को खोला, और उस में से कुछ नोट निकालकर अपनी कमीज की जेब में रख लिये।

शहर जाते हुए इन्द्र को उस ने धीरे से ये नोट पकड़ा दिये और कहा—"तुझे जरूरत पड़ेगी। फिर दो एक फर्लांग उस के साथ स्टेशन की ओर जाती पगडण्डी पर चलता रहा। और फिर अचानक खड़ा होकर पीछे अपनी राह की ओर ताकते हुए कहने लगा—"तुम पढ़े लिखे हो—शहर में कोई नौकरी ढूँढ लेना।"

और वह पीछे तेज कदमों से ऐसे लौट पड़ा—जैसे उस का जंगल आज खाली होकर उस का इन्तजार कर रहा हो।

वह और उस का एकाकीपन एक दूसरे को कसकर गले मिले।

जंगल की सारी हवा फिर उस की अपनी हो गयी। अब पेड़ों के पत्ते सिर्फ उस की आँखों के लिए झूमते थे। अब नदी का पानी सिर्फ उस के लिए बहता था। अब दिन सिर्फ उस के लिए चढ़ता था रात सिर्फ उस के लिए होती थी।

पर आठ दिन गुजरे थे वही दिन ढलने का वक्त था, वह चूल्हे की आग के पास बैठकर कोई किताब पढ़ रहा था कि दरवाजे की जगह अटकाया हुआ

गयी हो।

और अगले महीने दो दिन के लिए इन्द्र शहर गया। वापिस आते हुए वह दूर परे से ही सुनायी दे रहा था। उस के हाथ के ट्रांजिस्टर की आवाज़ अगले पहाड़ से भी टकरा रही थी और उस ने पिछले गाँवों के कितने ही लड़के-लड़कियों को अपने पीछे लगा रखा था। और इन्द्र पास आते हुए हँसते हँसते कह रहा था—"देखो, कँवर भया, यहाँ कोई अखबार-वखबार तो आते नहीं, अब हम रोज़ खबरें भी सुन लिया करेंगे, और ड्रामे भी।"

और अगले महीने नीचे के गाँव से आयी हुई दाई उस से कह रही थी—"ईश्वर सलामत रखे, *अब तो गिनती के दिन रह गये हैं। बच्चे के लिए गउ-*भैंस खरीद लो घर-आँगन सुख से भर जायेगा।"

और उसे पहाड़ों की ओट से उगते सूरज की तरह पहले जो कुछ धुँधला धुँधला दीखता था, वह अब प्रत्यक्ष दीखने लगा कि वह अब फिर, सात वर्ष के बाद, पराया सपना देख रहा है

लकड़ी का तख्ता खटक उठा।

उस ने सहमकर तख्ते को परे किया। सामने इन्द्र हँसता-सा खड़ा हुआ था।

वह अभी हैरान-सा उस के मुँह की ओर ताक ही रहा था कि उस के पीछे खड़ी एक लड़की ने आगे होकर, झोपड़ी की दहलीज में आकर उस के पैरों को छुआ, और पैरों की ओर सिर झुकाये ऐसे खड़ी रही जैसे उस से आशीर्वाद माँग रही हो। पल भर की सुन सी खामोशी के बाद उस ने लड़की के सिर पर प्यार से हाथ फेरा और कहा—"आओ! आओ! अन्दर आ जाओ।"

सुबह की दाल पड़ी हुई थी। उस ने जब चूल्हे पर तवा रखा, लड़की ने आगे होकर चकला बेलन पकड़ लिया, और चूल्हे के पास बैठकर रोटियाँ पकाने लगी।

लड़की के हाथ में काँच की चूड़ियाँ थीं। वह जब रोटी बेलती, चूड़ियाँ खनकती थीं। इन्द्र भी रोटी खा रहा था, वह भी, पर उसका ध्यान सिर्फ चूड़ियों की खनक की ओर था—जो दूर तक पसरी हुई पड़ी की शाँ शाँ से बिलकुल अलग लग रही थी। अलग भी, अजनबी भी, और कानों को खटकती-सी भी।

दूसरे दिन सलेटों की छतवाली कुठरिया के पास एक नयी कुठरिया बन रही थी—उन दोनों की रसोई के लिए। और नीचे के गाँव से दो नयी खटियाँ आ रही थीं, नये लिहाफ, गद्दे भी, और कुछ नये बर्तन भी।

गाँव से टूटा हुआ ज़मीन का वह टुकड़ा जैसे गाँव का हिस्सा बन रहा था। गाँव से चमेरे, बढ़ई, राज मजदूर रोज आते जाते थे। एक बहँगीवाला नदी से पानी के कनस्तर भरकर लाने लगा था।

और खड्ड के पार दिखती सामने की पहाड़ी तक—जहाँ तक नज़र पक्षियों की तरह उड़कर जाती थी—वहाँ जब एक बड़ा सा छप्पर डलने लगा, तो वह ऐसे तड़प उठा, जैसे उस के जिस्म से उस के पंख नोचे जा रहे हों।

इन्द्र ने नम्रता से कहा—"आप कहते थे ना कि मैं पढ़ा लिखा हूँ, कोई काम करूँ। सो मैं ने सोचा—यहाँ बच्चों का स्कूल खोल लूँ। नीचे के किसी गाँव में कोई स्कूल नहीं। बस आठ आने या रुपया महीने की फीस रख लूँगा, इतने पैसे तो हर कोई..."

उस के दोनों कानों में जैसे फुंसियाँ हो गयी हों।

और अगले महीने इन्द्र कह रहा था—"सुना है स्टेशन के पास के गाँव में परसों एक मिनिस्टर आ रहा है, आप बुज़ुर्ग हैं आप उस से जाकर कहें—कि हमें हमारी ज़मीन तक सड़क पक्की करवा दें, और साथ ही यहाँ बिजली भी दिलवा दें। स्टेशन तक तो बिजली आयी हुई है..."

उस के कानों में ऐसे टीस होने लगी जैसे कानों की फुंसियों में पीप पड़

तीसरी औरत

अरथियां घरों से बाहर जाती हैं, पर जब मीना अपने पीहर आयी, सब को लगा—जैसे एक अरथी घर में आ गयी हो

सरकारी मुहरें लगा हुआ एक खत मीना के कफन की तरह था। यद्यपि उस में मीना के मरने की खबर नहीं थी, देश की सीमा पर उस के 'बांके सिपहिया' के मरने की खबर थी, फिर भी यह खत मीना के कफन के समान था

कई बातें औरत सहज ही जानती है। यह भी उन्हीं में से एक सच बात थी कि इस देश में मर्द एक बार मरता है, पर उस की मृत्यु के बाद उस की औरत जितने समय जीवित रहती है, न जाने कितनी बार मरती है

सो जब मीना अरथी की भांति पीहर आयी, घर की गूंगी दीवारें भी त्राहि-त्राहि करने लगीं

जब ईश्वर मनुष्य की जीभ काट देता है, वह कुछ बोल नहीं सकता। मीना के माता पिता जैसे गूंगे होकर रह गये

घर खुला था। घर के जीवों के पास शुरू से ही अपनी अपनी छत थी और अपनी अपनी दीवारें। छोटे से छोटे बच्चे का भी घर में उस के नाम का हिस्सा था, सो मीना जिस समय आयी, सीधी अपने कमरे में इस तरह चली गयी जैसे कभी स्कूल या कॉलेज से आकर जाया करती थी

पर घर के कमरों के दरवाज़े जो शुरू में साधारण तौर पर खुलते और साधारण तौर पर बन्द होते थे, पिछले बीस बरस से शापित थे। अब वे विवाह या तलाक, जन्म या मृत्यु जैसी घटनाओं के हाथों से खुलते और बन्द होते थे

बूढ़े माता पिता—कभी खुश्क आंखों से होनी को देखते थे, कभी गीली आंखों से

आज से बीस बरस पहले जब मीना की बड़ी बहन का विवाह हुआ था, उस का कमरा विवाह की घटना ने अपने हाथों से बन्द किया था। पर दो बरस बाद जब वह अपने पीहर बच्चे के जन्म के अवसर पर आयी थी, बच्चे के जन्म

ने अपने हाथ से उस कमरे का दरवाजा खोला था। और फिर जब वह चालीसे के अन्दर दुधमुहे बच्चे को बिलखता छोडकर मर गयी, तो मृत्यु न अपने हाथ स कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया। नवजात बालक को पहले उस के दहसाल वाले ले गये थे, पर जब उस नन्हे बालक की सँभाल कठिन हो गयी तो उन्होंने बालक को ननिहाल भेज दिया और होनी न, उस बालक के नन्हे नन्हे हाथो से, वह कमरा फिर खुलवा दिया था

इसी तरह मीना का भाई आज से बारह बरस पहले जब यूनिवर्सिटी के होटल मे रहने के लिए चला गया तो उस का जो कमरा साधारण हाथा न बन्द किया था, वह पाँच बरस बाद, होनी ने अपने हाथो से खोला। वह यूनिवर्सिटी की एक दूसरे मजहब की लडकी को, उस के माता पिता की चोरी से, ब्याहकर घर ले आया था। कमरा खुल गया, रेशमी पर्दों मे लपेटा गया, और उस मे से चावलों की देग की भाँति और मास की पकती हुई हाँडी की भाँति, जवानी की चुहला की खुशबू आने लगी। पर फिर मुश्किल से कोई एक बरस बीता था कि अचानक हुए विवाह की भाँति, अचानक हुए तलाक न, उस कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया।

और अब—आज से तीन बरस पहले, मीना के विवाह ने उस का जो कमरा बन्द किया था, उस के रँडापे ने वह अपने हाथो से खोल दिया

इस कमरे से मीना डोली की तरह गयी थी, अरथी के समान आयी

बूढ़े माता पिता, उन दशको के समान थे, जिन्हे जिन्दगी ने यह सब कुछ देखने के लिए, बाँध बूधकर बिछा दिया हो

मीना का भाई अब मर्चेन्ट नेवी मे था और दो बरस से देश के बाहर था। और जो बहन मर गयी थी, उस का पुत्र, जो अब अठारह बरस का था, पिछले दो बरस से दूर शहर मे कॉलेज मे पढ रहा था और होस्टल म रहता था। और घर के कमरे क्या खुले हुए क्या बन्द। मीना को देखकर त्राहि त्राहि करने लगे

और बूढ़े पिता की आँखों मे, न जाने-कुछ और देखने की शक्ति कम हो गयी थी, इसलिए मोतियाबिन्द उतर आया

सरकारी मुहरें लगा हुआ खत, जो एक दिन मीना के कफन की तरह आया था, फिर भी आया, और फिर भी। ऐसे—जैसे मकान पर कुछ फूल आ जाते हो। लिखा हुआ था—सरकार जगी विधवाओ को मदद देना चाहती है, इसलिये उन्ह घर बनाने के लिए जमीन देगी, और साथ ही कार रोजगार। कार रोजगार के सिलसिले म सरकार ने उन की मर्जी पूछी थी—कि वह चाह तो छोटे उद्योग के लिए रुपया ले सकती थी, या फौजी स्कूलो म नौकरियाँ ले सकती थी।

पर सरकारी मुहरें लगे ये खत, जो अरथी के फूलों के समान थे, मीना ने हाथों में लिये और मसल दिये। उस के भीतर-अन्दर एक हिस्सा इस तरह मर गया था कि अब उसे किसी फूल की खुशबू नहीं आती थी। वह—क्या दिन और क्या रात—खाट पर एक लाश की तरह पड़ी रहती।

मीना का भाई देश से दूर था, चार दिन के लिए भी नहीं आ सकता था, पर बहन का पुत्र अविनाश शहर के होस्टल से घर आ गया। अविनाश ने ज़िन्दगी में माँ नहीं देखी थी, और शुरू जन्म से लेकर अपने साथ कोई खेलनेवाला नहीं देखा था, और उस ने उन सब की जगह सिर्फ मीना को देखा था। वह जब दौड़ कर मीना के पास आया, मीना उसे गले से लगाकर पहली बार रोका हुआ रोना रोयी।

शायद उसे गले से लगाकर नहीं, उस के गले से लगकर।

आज से तीन बरस पहले अविनाश लड़का-सा हुआ करता था—वह, जिसे मीना ने गोदी में उठा उठाकर बड़ा किया था, और अब वह मीना से भी पूरे एक चप्पा लम्बा मर्द हो गया था।

मां जो खाने की थाली परोसती थी, रोज बेकार जाती थी। अब जब अविनाश हाथ में लेकर मीना के पास लाया और बोला—'उठ, मीनू! खाना खाएँ!' तो मीना की भूख पहली बार जागी और उस ने अविनाश के साथ पहली बार जी भरकर खाना खाया।

मीना की भूख के जगनेवाली यह रोटी की गन्ध नहीं थी, यह अविनाश के मुंह से निकली 'मीनू' शब्द की गन्ध थी।

मीना, ज़िन्दगी में, सब के लिए या मीना थी या मीना जी पर अविनाश *के लिए शुरू से ही 'मीनू' थी—और या फिर अपने 'बांके सिपहिया' के लिए* ज़िन्दगी में 'मीनू' बनी थी।

जो मीना को मीना कहकर पुकारते थे वे सदा उसे उस की आयु से छोटा रखते थे, और जो उसे 'मीना जी' कहते थे वे सदा उसे आयु से बड़ा कर देते थे। यह सिर्फ अविनाश ही था चाहे वह उस से दस बरस छोटा था, पर जब उस ने तोतली बोली में उसे मीनू कहा था—तब भी उसे अपना आड़ी बना लिया था और जब कुछ बड़ा हुआ तब उस ने उस से स्कूल के सवाल समझते समय उसे *'मीनू' कहा था तब भी उस का आड़ी होकर खड़ा हो गया था।*

फिर जब मीना का विवाह हुआ—उस ने अपने 'बांके सिपहिया' से एक ही बात कही थी कि वह उसे 'मीनू' कहकर बुलाया करे, और वह उसे अपने आखिरी वक्त तक 'मीनू' कहता रहा।

और उसकी मृत्यु से 'मीनू' ही तो मरी थी। बूढ़े कांपते हाथों से उसका सिर सहलाते हुए माता पिता की बेटी मीना अभी भी जीवित थी, और परिचितों

जानकारी और सरकारी सहायता देनेवाले समाज की 'मीना जी जीवित थी—
पर जो आठी मीना पुकारनेवाला था उस की मत्यु स 'मीनू मर गयी थी

अविनाश ने जब उसे 'मीनू कहकर पुकारा, उस ने एक बार चीखकर उस के होंठो पर अपनी हथेली रख दी, पर फिर हाथ परे हटा लिया—अपने कानो से एक बार फिर यह शब्द सुनने के लिए शायद मृत्यु के अन्तिम साँस की तरह

और फिर अविनाश से कुछ नही कहा। और शून्य मे लटके हुए इस शब्द को देखती रह गयी

कई बातें औरत सहज ही जानती है—और यह बात भी उन्ही म से एक थी कि इस शब्द का अब 'मीना' की जिन्दगी से कोई सम्बन्ध नही रह गया था—और इस शब्द को अब वह दोना हाथो से कभी नही छुयगी, पर वह फटी फटी आँखों से रोज इसे दूर से देखने लगी।

अविनाश उस के सामने खाना लाकर रख देता, वह खा लेती। अविनाश उस क आगे करम बिछाकर बैठ जाता, वह खेलने लगती। अविनाश उसे घर की पिछली दीवार से लगे हुए बगीचे मे ले जाता, वह पडो की छाया म छाया की तरह घूमती रहती।

एक जादू उजाले का था, एक अँधेरे का, जो धीर धीरे मीना के गिद लिपट गया। अविनाश, जो पूरे एक चप्पा मीना से लम्बा हो गया था, अँधेरे के जादू मे उसे अपन बाँके सिपहिया' जैसा लगता, और उजाल क जादू म वही अविनाश ढाई-तीन महीने की आयु का हो जाता जिसे मीना न छोटी सी माँ की भाँति अपनी गोदी मे खिलाया था।

मद मर जाये तो औरत के चाह सारे अग जीवित रहते है, उस की कोख जरूर मर जाती है—और मीना को अपनी मरी हुई कोख की दुग ध नाक मे चढती मालूम हुइ।

और उस के मन म एक हसरत उत्पन्न हुई—अगर उस ने 'बाँके सिपहिया' को अपनी कोख म सभाल लिया होता तो उस का एक टुकडा दुनिया म जीता रह जाता और खोया हुआ पल मीना के शरीर म चीखें मारने लगा

और फिर एक दिन वह समय था जब अँधेरा और उजाला एक दूसरे स मिलते हैं। मीना अपने कमरे मे खाट पर लटी हुई अविनाश के चेहरे की ओर एकटक देखने लगी

इस समय अविनाश के चेहरे मे दो चेहरे मिले हुए थे —एक मीना के पति का चेहरा, और एक उस पति से हानेवाले बच्चे का। मीना जानती थी—एक अब इस दुनिया मे नही है और दूसरा अब इस दुनिया म आयगा नही। पर वह हैरान देखे जा रही थी कि सामने यह दो साथ से क्यो दिखायी द रहे हैं।

एक चेतन अवस्था भी थी—कि सामने कोई साया नही है, एक अब के जवान जहान अविनाश का चेहरा है, और एक बिलकुल नन्हे से बालक अविनाश की याद और जिस से उस का अठारह बरस का एक रिश्ता है

पर एक अचेतनता की दशा भी थी—कि यह जो सामने दिखायी दे रहा है सिर्फ एक मर्द है, और वह स्वयं सिर्फ एक औरत, जिस की कोख उस मर्द को और उस के शाश्वत अस्तित्व को चीख कर माँग रही है।

उजाला और अँधेरा जैसे एक दूसरे मे घुल जाते हैं, मीना के मन की दशाए भी एक दूसरे म घुल गयी – और उस की—एक औरत की दोनो बाँहो न आगे होकर जब एक मर्द की दोनो बाँहो को थाम लिया—मास को मांस की एक तेज महक आयी।

एक औरत के कपडे और एक मर्द के कपडे कांपकर खाट से नीचे गिर गये, और खाट के पाँवो के पास सिर झुकाकर गठरी की तरह बैठ गये।

यह एक शान्त—आत्मा को आत्मा के स्पर्श का पल नही था, यह एक प्रलय समान घडी थी जिस मे एक औरत मन के सस्कारो पर पाँव रखकर अलभ्य को खोज रही थी और एक मर्द बहुत घबराकर अपनी आयु से अधिक बडा हो रहा था।

प्रलय की घडी बीत गयी—तो मीना एक नयी मौत मर गयी

सिर्फ मीना नही, 'मीतू' भी

सारी रात खाट पर जैसे दो औरतें थी, और दोनो ने एक दूसरे को दाव देते हुए, एक दूसरे को मार दिया था

और सवेरे के समय जो औरत कमरे से बाहर निकली, वह एक तीसरी औरत थी। और उस ने मसलकर फेंके हुए सरकारी कागजो पर जल्दी से दस्तखत किये, और लिखा कि वह जल्दी से जल्दी किसी दूर के पहाडी इलाके के स्कूल म नौकरी करना चाहती है

और थोडे से दिनो के बाद उस घर का एक कमरा जो एक घटना ने खोला था, एक घटना ने फिर बन्द कर दिया। मीना दूर पहाडी इलाके के एक स्कूल मे चली गयी—शायद सदा के लिए।

और नदी बहती रही

एक घटना थी—जो नदी के पानी में बहती हुई किसी उस युग के किनारे के पास आकर खड़ी हो गयी, जहाँ एक घने जंगल में वेदव्यास तप कर रहे थे

समाधि की लौ टूटी तो सामने रानी सत्यवती उदास पर दिव्य सुंदरी के रूप में खड़ी हुई थी।

वृक्ष के पत्तों की तरह झुककर वेदव्यास ने प्रणाम किया, कहा—मेरी शाश्वत सुंदरी माँ! आज उदासी का यह वेश क्यों?

माँ ने ऋषिपुत्र को मोह से भरी छाती से लगाया, कहा—तुम ऋषि कुल से हो, तुम मोह की पीड़ा नहीं जानते। राज का दर्द मैंने राजा शान्तनु से पाया और उस के राज्य की रक्षा के लिए मैंने जिस कोख से तुम्हें जन्म दिया, उसी कोख से राजा शान्तनु के दो पुत्रों का जन्म दिया। पर एक मेरा राजकुमार युद्ध में मारा गया, और दूसरा, दो रानियों को रोती छोड़कर क्षय से मर गया।

वृक्ष के सारे पत्ते जैसे कुम्हला कर वेदव्यास के तापस चेहरे की ओर देखने लगे

रानी सत्यवती का मन गंगा की निर्मल लहरों की तरह बहने लगा, उस ने कहा—महर्षि पाराशर ने गंगा के पानी की तरह मुझे अंग से लगाया था, तुम उसी पानी का मोती हो, जलथल में क्रीड़ा करते हो, जंगल, वन और बीहड़ तुम्हारे अधीन हैं, तुम ताज में जड़े मोती का दर्द नहीं जानते।

वृक्ष के हरे रंग की तरह वेदव्यास के होंठ मुस्कराये—मैं राज्य का दर्द नहीं जानता, पर माँ का दर्द जानता हूँ।

सत्यवती वृक्ष से लिपटी हुई बेल की तरह झूम गयी, बोली—ताज के मोती को तख्त का वारिस चाहिए। मेरी दोनों बहुएँ आज विधवा हैं, आज मैं उनके लिए तुम्हारे पास पुत्र दान माँगने आयी हूँ।

वेदव्यास ने सिर के ऊपर फैले हुए वृक्ष की ओर देखा, और सारा वृक्ष जैसे खिल सिमट कर धरती की छाती में पड़े हुए अपने बीज की ओर देखने

लगा

ऋषि के होठ हँस पड़े, कहा—यह माँ का हुक्म और धरती का हुक्म पूरा होगा

और वेदव्यास ने वचन पूरा किया—अबिका और अबालिका दोनों को एक एक पुत्र का दान दिया

नदी का पानी बच्चो की किलकारी की तरह हँसता हुआ जब फिर बहने लगा तो वही घटना युगो से गुजरती हुई कलियुग मे एक किनार के पास खडी हो गयी—वहाँ, जहाँ बलदेव का साधारण-सा घर था, जहाँ उसकी मेज पर पडी हुई किताबो म सिर्फ महाभारत के पव नही थ कामू भी था, काफ्का भी था, पास्तरनाक भी

और उस के सामने उस का मित्र काशीनाथ वृक्ष के एक टूटे हुए पत्ते की तरह खडा था, बोला—जो दान मुझे ईश्वर न दे सका, न किसी वैद्य की दवा, वह दान मैं तुम से माँगने आया हूँ एक पुत्र का दान

सिर के ऊपर कोई वृक्ष नही था, पर बलदेव के कानो म वृक्ष के पत्तो की शाँ शाँ भर गयी

काशीनाथ कह रहा था—मेरी औरत के निरोग तन को एक मर्द के रोगी तन का शाप लगा हुआ है मेरे मित्र ! बस यह शाप एक घडी के लिए उतार दो

बलदेव का सारा बदन वृक्ष की जड की तरह हो गया

काशीनाथ एक रुलते हुए पत्ते की तरह उडकर जैसे उस के पाँवो के पास आ गिरा—यह भेद सिर्फ मैं जानू, तुम जानो, और वह जानेगी, और कोई नहीं कोई नही बलदेव के वृक्ष की जड की तरह हो गय बदन मे से एक सकल्प प्रस्फुटित हुआ—यह शायद इतिहास का हुक्म है, मैं शायद एक वेदव्यास हूँ, एक ऋषि

और वही युगो की घटना फिर घटी—टूटे हुए पत्तो के घर फूलो का वश चला

काशीनाथ के घर पुत्र जन्मा रिश्तेदारो सम्बन्धियो के मुह बधाइयो से भर गये, और जब बलदेव ने पालने मे पडे हुए बच्चे को झुककर देखा उसके होठ वेदव्यास के होठो की तरह बन्द हो गये।

नही, नही, मैं वेदव्यास नही हूँ, बलदेव की अपनी ही चीख जैसी आवाज़ से उस की नींद टूट गयी

चारपाई के पास तिपाई पर अभी तक रात की बची हुई व्हिस्की पडी हुई थी। उस ने काँपते हुए हाथ से गिलास म व्हिस्की डाली, और एक घूट म पी

गया, बौराया हुआ सा बोलने लगा—तुम देव-पुत्र थे वेदव्यास, तुम मानव-पुत्र नहीं थे

बलदेव की कल्पना उसे सदियों से दूर एक जगत में ले गयी और वह जगत में विलाप की तरह बोला—ऋषिराज! तुम्हारे पास समाधि, निरी समाधि, पर मेरे पास सपने हैं, बहुत सारे सपने

बलदेव के बोल छाती में से उठ-उठकर पेड़ों से टकराते रहे—देखो ऋषिपुत्र, मेरी ओर देखो। यह देखो मेरी अम्बिका—तुम्हें तो अपनी अम्बिका की दूसरे दिन पहचान भी नहीं रही थी, पर देखो, यह मेरी परछाईं नहीं, मेरी अम्बिका है मैं जहाँ जाता हूँ मेरे साथ जाती है

और बलदेव जोर से हँसा—देखा ऋषिपुत्र, तुम्हारी कोई परछाईं नहीं है। लोग सच कहते हैं कि देवताओं के परछाईं नहीं होती। पर इन्सान को तो परछाईं का शाप होता है देखो मेरी परछाईं, मुझ से भी बड़ी

फिर बलदेव की आवाज अनि-की-खामोशी से टकराकर बुझ-सी गयी—*तुम्हारी समाधि टूट गयी थी, जब सत्यवती ने आवाज दी थी, पर मेरी आवाज* से नहीं टूटती। क्यों नहीं टूटती? तुम ने अम्बिका की गोदी में खेलता हुआ अपना पुत्र कभी अपनी बाँहों में उठाकर नहीं देखा, मैं ने देखा है उसे, बाँहों में उठाकर, गले से लगाकर और तुम नहीं जानते, फिर उसे अपने गले से हटाना, अपने मांस से मांस के टुकड़े को तोड़ने जैसा होता है

बलदेव का सारा शरीर, शरीर में बहते हुए लहू में भीग गया—तुम ने कभी लहू की गन्ध नहीं देखी, ऋषिपुत्र! आदम के लहू की एक गन्ध भी होती है—जब वह घुर मन तक जख्मी हो जाता है और लहू की एक सुगन्ध भी होती है जब बच्चे के कोमल नरम होठ हँसते हैं तब अपने ही शरीर में से लहू की एक सुगन्ध उठती है

और एक और तीखी सुगन्ध बलदेव के माथे की नसों में फैल गयी और वह अर्द्ध चेतना में बोला—मेरी अम्बिका के शरीर की सुगन्ध चाहे कहीं चली जाय, मैं उसे ढूँढ़ सकता हूँ उस की काँपती हुई साँसें यहाँ मेरे कन्धे के पास, मेरी बाँहों के पास, मेरी गर्दन के पास पड़ी हुई हैं। एक अमानत की तरह पड़ी हुई हैं—और देखो, मेरे भीतर भी मैंने उस के होंठों से पूरी एक घूँट पी थी

बलदेव के माथे की एक नस चीस की तरह कस गयी और वह निचले होंठ को दाँतों में लेकर कह उठा—ऋषिपुत्र! तुम सिर्फ देना जानते थे तुम्हें कुछ भी लेने की, कुछ भी अंगीकार करने की पहचान न थी, मैं ने वह पहचान पायी है। मैं जब अपनी अम्बिका के जिस्म की तहों में उतर गया था वह तहें मुझे लेकर एक मुट्ठी की तरह बन्द हो गयी थीं—और फिर जब फूल की पंखुड़ियों की तरह खुली थीं, मैं वापस लौटते हुए उनकी गन्ध अपने साथ ले आया था वह सिर्फ

कुछ देने का नहीं, कुछ लेने का पल भी था। मैं ने वह पल देखा है ऋषि
तुम ने नही देखा। देना दद नही होता, लेना एक दद होता है, तुम वह दद
जानते मेरे ऋषिराज !

इद गिद सब शा त था—इद गिर्द भी, दूर तक भी—जहाँ तक बलदे
जि दगी के बाकी रहते बरसो का भविष्य दिखायी दे सकता था वहाँ तक एक
हीन चुप ! एक खामाश अँधेरा ! पर बलदेव अँधेरे मे पड़े हुए अँधेरे के एक
की तरह गाढा होकर अपने अगो मे सिमट गया। उस के होठ कुछ इस
हिलते रहे जैसे अँधेरे की तह हिलती हो— वह मेरे पास आग की एक चिन
लेने के लिए आयी थी, मुझे उस चिनगारी के लिए जलना था, मैं जला
पर यह नही जानता था—शायद वह भी नहीं जानती थी—चिनगारी
धारण करने के लिए उसे भी आग के शाप से गुजरना पड़ेगा—आग उसे
छू गयी थी, तब वह काँप गयी थी वह सारी की सारी मुझ मे सिमट
थी-जसे वह अपनी लपट से शरमा गयी हो और अब मेरी इस राख मे
भी जलबुझकर अपनी राख को मिला गयी है देखो ऋषिराज !

चेतना के अँधेरे मे एक आकार-सा उभरा—कोई पत्थर की मूर्ति
शायद समय से सचमुच पत्थर हो चुका, या अभी भी जीवित और तपस्य
लीन बैठा हुआ ! बलदेव ने अँधेरे म बाँह फैलायी, नीचे जमीन को टटोल
उस के पैरो को छूने के लिए, और काँपती हुई बाँह की तरह उसकी आ
काँपी—मैं भूल गया ऋषिराज ! मैंने आदम पुत्र होकर तुम्हारी रीस
थी- मैं ने एक पल तुम बनकर देखा, सिर्फ एक पल मैं ने जैसे एक पल
लिये तुम्हारा आसन चुरा लिया, पर मैं तुम नही हो सकता तुम अपने ज
में अभी भी निश्चल बैठे हुए हो। मैं अपने जगल मे भटक रहा हू मुझे
देने का वरदान नही मिला है, लेने का शाप भी मिला है मैं अपनी अबि
को अपने पास चाहता हूँ अपना बच्चा भी देखो ! मेरी आँखें सिफ मरे
पर नही, मेरी पीठ पर भी हैं—वह पीछे दूर वहाँ देख रही हैं जहाँ
अम्बिका मेरे पास थी मेरे पहलू से सटी हुई—और मैं उस की कोख मे उग
था।

बलदेव की अद्धचेतना फिर नीद का झोका बन गयी तो कमरे की खामो
ने एक चैन की सास ली।

सिफ खिडकी मे से आते हुए हवा के झोको से मेज पर पडी हुई किताबो
कुछ पन्ने इस तरह हिल रहे थे जसे महाभारत के किसी पव का पृष्ठ उठ
कामू के 'आउटसाइडर' से कुछ कह रहा हो, या पास्तरनाक का जीवा
आँखें मलता हुआ महर्षि पाराशर से मत्स्यगधा के योजनगधा बनने का भेद
रहा हो।

अचानक कमरे की खामोशी चौंककर बलदेव की ओर देखने लगी, वह तड़पकर बिस्तर से उठते हुए कह रहा था—यह कैसा शाप है, वेदव्यास ! जब भी सोता हूँ, आग की तरह जलने लगता हूँ, मैं भी, मेरी अंबिका भी—और जब भी जागता हूँ, राख का एक ढेर बन जाता हूँ। बताओ, मेरा बच्चा बड़ा होकर इस राख में से अपना वंश कैसे ढूँढ़ेगा ?

और नदी उसी तरह बहती रही। सिर्फ उसके पानी ने कुछ उदास होकर देखा कि वह घटना राख बनकर पहले किनारे पर पड़ी हुई है।
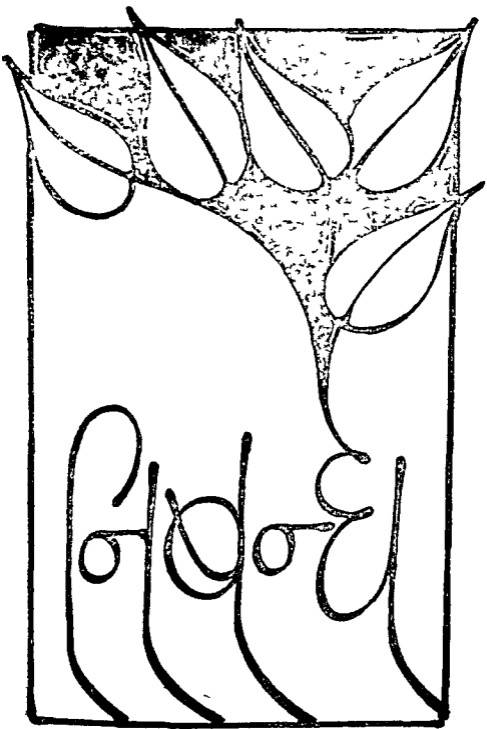
नेपाल की एक गाती हुई रात

सारा नेपाल जैसे एक वक्ष है, मन्दिर के फूलों से ढका हुआ। सभी मौसम पास से गुजर जाते हैं, किसी का साहस नहीं कि इन फूलों को छू ले। सदियों मनुष्य के मन की भटकन इन फूलों को प्रणाम करती है। गरीबी के आंचल में बसे ही प्रणाम के बिना कुछ नहीं होता। बढ़ी चढ़ी अमीरी भी, जो अपनी रात किसी कुआरे यौवन की खुशबू में गुजार लेती, सुबह उठकर सौ तोला सोना इन मन्दिरों की दंडी पर रख जाती। आज भी इन कलाकृतियों के माथे पर सोना मढ़ा हुआ है, होंठों में आहें जमी हुई हैं।

एक ओर बागमती नदी है। लोक की हार, परलोक की जीत में विश्वास कर के, हमेशा गुजर करती रही है। इस नदी का पानी लोगों के विश्वास को अच्छी तरह धोने के लिए सदा बहता रहता है। किसी आदमी की सांस रुकती हुई लगे, तो उस के रिश्ते नाते के लोग उसे इस नदी के किनारे पर ले आते हैं। चाहे उस की सांस कोई जिद ही कर बैठे और आठ आठ, दस दस दिन उस के मुंह में अटकी रहे, पर वह इस के पानी की ओर देख देखकर अपना विश्वास मैला नहीं होने देता कि उस का परलोक संवर जायेगा।

पर्वतों के माथे सदियों से ऊंचे हैं। यद्यपि वादी का एक-एक राजा सौ-सौ जवान केरियों के आंसुओं में डूबता रहा और वादी का एक-एक श्रमिक सौ सौ श्रमों के पसीने में। और फिर इस वादी की मिट्टी में से क्रांति उगी। शुक्रराज को जिस वृक्ष के साथ फांसी दी गयी, लोगों ने पहरेदारों की आंख बचा ली, और उस वृक्ष को अगले रोज ही फूल-चन्दन से पूज लिया। गंगालाल, धर्मभक्त और दशरथचन्द को जिस जमीन पर खड़ा करके गोलियों से मारा गया, लोगों ने वहां की मिट्टी को माथे पर लगा लगाकर वहां गढ़े डाल दिये।

"आज हमारे कवि बेशक कैंसर से मर रहे हैं और बेशक तपेदिक से, पर यह हिमालय हमारा गवाह है। हमारा कविता के साथ प्रेम नहीं टूट सकता।" एक नेपाली कवि ने कहा और फिर काठमाण्डू की शरद् सन्ध्या में जैसे एक

और पर्वतों की चोटियाँ गीली चाँदनी हो गयीं
ऐसे ही तेरा विरह मुझ पर छा गया है।

जैसे पत्तों की पत्तियों ने
ओस कण को अपनी बाँहों में समेट लिया है,
ऐसे ही मैं ने अपनी पलकों में तेरा आँसू छिपा लिया है।

उस महफ़िल में कौन था, जिस ने अपनी पलकों में किसी न किसी का आँसू नहीं छिपाया था? किस का दिल था, जिस ने किसी न किसी के मुख पर सपनों का चाँदना नहीं बाँधा होगा कि नेपाली लोकगीत में होंठ हिले—

कई सुन्दर वन होंगे
पीपल को जो ऊँचा वस्त्र पहन दिखायी दिया,
उसी पर वह बैठ गयी।
मैं ने तुझे ही सब से पहले देखा,
और मेरे दिल ने नीड़ बना लिया।

यह नीड़ क्यों बनते हैं, जहाँ कोई रह नहीं सकता? इस राह में वे राही क्यों मिलते हैं, जो दो क़दम भी साथ नहीं चल सकते? किसी को मालूम नहीं। सुमन की ग़ालिब की तरह कोई राह गुज़र याद आया—

ज़िन्दगी तो मिल गयी थी
चाही या अनचाही,
बीच में यह तुम, कहाँ से मिल गये राही!

निराला यहाँ नहीं था, पर उस का स्वर यहाँ था—

बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु—पूछेगा सारा गाँव बन्धु!

सिद्धिचरण श्रेष्ठ की एक पंक्ति ने कभी उसे साढ़े पाँच बरस जेल में रखा था 'क्रान्ति बिना शान्ति नहीं।' आज उस की प्यार-क्रान्ति बह रही थी—

मेरे कितने आँसू और कितनी आहें नष्ट हो गयीं,
मैं कुछ नहीं कहता।
पर मेरी मृत्यु के पश्चात तू मेरी कविता पढ़ेगी,
आकाश से पूछेगी, "उस ने मुझे प्यार किया था?"
एक बूँद तेरी आँखों में अटक जायगी
एक आह तेरे होंठों पर जम जायेगी।

नेपाल का एक लोकगीत तिड़ तिड़ करके चलने लगा

मेरे हाथों की चूड़ियों ने
मेरे हाथ छील दिये,

चिनगारी बल उठी।

पजाबी कविता ने कहा —

विरह की इस रात म कुछ आलोक आ रहा है।
फिर याद की बत्ती कुछ और ऊँची हो गयी है।

इस बत्ती के गिद जाने कितनी बत्तियाँ बल उठी। विरह की रात किसे नसीब नही हुई थी।

एक घटना, एक घाव और एक टीस दिल के पास थी
रात को यह सितारो की रकम जरबें दे गयी।

और रात ने सारे दिलवालो की टीसो को सितारो से जरब द दी। सुमन ने टैगोर के शब्दो मे कहा —

दौलत भी है रूप भी, शोहरत भी
फिर यह पीडा कैसी?
लगता है, कोई सदियो की विरहिन
मेरे सीने मे बठी हुई है।

बर्फ से ढके हुए पवतो की वादी मे आग जल गयी। दीवाने इस आग को लोहडी (पजाब का एक त्योहार) बनाकर सेंकने लग गये। कोई लडकी नेपाली कविता की थी, कोई हिन्दी कविता की, कोई बगाली की और कोई पजाबी की।

धमराज थापा ने किसी नेपाली लोकगीत की एक लकडी इस लोहडी की आग मे डाल दी।

वक्ष अपनी बेलो से लदा हुआ है,
मैं दुख की बेलो से ढका हुआ हूँ।
वक्ष से यह जादू जाने किस बीज ने किया था,
मेरे साथ ये जादू तेरी लाल वेणी ने किया है।

माधवप्रसाद घीमीरे ने लाटो को ऊँचा किया —

जब कोई किन्नरी रोती है, तब पवतो के कोने से पहला बादल उठता है।
जहाँ मेरी प्रेमिका अकेली बैठकर रोती है,
यह सतरगी पेंग उसी गुफा से निकली है

गगा बहती बहती जाने कहा पहुँच गयी,
जिन्दगी भी रोती रोती जाने कहाँ चली जायेगी,
जैसे बादल आ गये

और पर्वतों की चोटियाँ नीली साँवली हो गयीं
ऐसे ही तेरा विरह मुझ पर छा गया है।

जैसे फूलों की पत्तियों ने
ओस कण को अपनी बाँहों में समेट लिया है,
ऐसे ही मैं ने अपनी पलकों में तेरा आँसू छिपा लिया है।

उस महफ़िल में कौन था, जिस ने अपनी पलकों में किसी न किसी का आँसू नहीं छिपाया था? किस का दिल था जिस ने किसी न किसी के वृक्ष पर सपनों का घोंसला नहीं बाँधा होगा कि नेपाली लोकगीत के होंठ हिले—

कई सुन्दर वृक्ष होंगे
चील का जो ऊँचा वृक्ष पहले दिखायी दिया,
उसी पर वह बैठ गयी।
मैं ने तुझे ही सब से पहले देखा,
और मेरे दिल ने नीड़ बना लिया।

यह नीड़ क्यों बनते हैं, जहाँ कोई रह नहीं सकता? इस राह में वे राही क्यों मिलते हैं, जो दो क़दम भी साथ नहीं चल सकते? किसी को मालूम नहीं। सुमन को ग़ालिब की तरह कोई राह गुज़र याद आया—

ज़िन्दगी तो मिल गयी थी
चाही या अनचाही,
बीच में यह तुम, कहाँ से मिल गये राही।

निराला वहाँ नहीं था, पर उस का स्वर वहाँ था—

बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु—पूछेगा सारा गाँव बन्धु!

सिद्धिचरण श्रेष्ठ की एक पंक्ति ने कभी उसे साढ़े पाँच बरस जेल में रखा था 'क्रान्ति बिना शान्ति नहीं।' आज उस की प्यार-क्रान्ति कह रही थी—

मेरे कितने आँसू और कितनी आह खर्च हो गयी,
मैं कुछ नहीं कहता।
पर मेरी मृत्यु के पश्चात तू मेरी कविता पढ़ेगी,
आकाश से पूछेगी, 'उस ने मुझे प्यार किया था?'
एक बूँद तेरी आँखों में अटक जायगी
एक आह तेरे होंठों पर जम जायेगी।

नेपाल का एक लोकगीत तिड़ तिड़ करके बलने लगा

मेरे हाथों की चूड़ियों ने
मेरे हाथ छील दिये,

मेरे गाँव की बातो ने
मेरा मन खरोच डाला ।

शंकर लामी छाने की कविता 'भरा पूरा जाडा' जैसे रक्सी (नेपाल की शराब) का प्याला था—

आज पोखर के किनारे की सारी हवाएँ चुपचाप
खडी हुई हैं,
उन की उँगलियाँ आज पानी को नही छेडती,
सारे सरोवर पर कुहरा जम गया है ।

नेपाल मे दशहरे के दिन बलि के समय पशु के सिर पर पानी का छिडकाव होता है, जिस से वह काँपता है। उस काँपने को उस की इच्छा समझा जाता है ।

तू आज किसी छिडकाव से मत काँप जाना
आज हिमालय की विजयादशमी है
और वह सारी धूप की शराब पीकर
मतवाला हो गया है ।

धूप की शराब हिमालय ने पी होगी । सुननेवालो ने इस खयाल की शराब का घूट भरा और 'चीसो चूलहो' (ठण्डे चूल्हे) महाकाव्य लिखनेवाले बालकृष्ण सम ने झूमकर कहा—

मैं कभी नहीं मरूँगा
मैं अमर—मैं खोऊँगा नही ।
अँधेरे आकाश के खुले खेत मे
मैं कल्पना की सीमा से भी पार गया
अनन्त समय बीत गया,
काल मर गया, मैं नही मरा ।
अणु-परमाणुओ का आटा गूँधकर
आकाश के चकले पर
हवा के बेलन से बेल-बेल,
मैं ने बादलो की रोटियाँ पकायी,
मैं ने ब्रह्माण्ड का अण्डा फोडा
असत्य से सत्य बना
किरणो का कूची से मैं ने आकाश को रँगा

प्रबोधकुमार सान्याल स्वयं कवि था, अस्सी पुस्तकों का लेखक अठारह फ़िल्मों का कहानी लेखक । पर आज उस की जबान पर सिर्फ़ टैगोर बैठा था । सुमन के पास सिर्फ़ अपनी हिन्दी कविता की ही आग नही थी, उस ने बिहारी,

तारों की हुकार

'शैली वडी कि विषय ?" यह एक प्रश्न था। परन्तु दिनकरजी ने एक ही मिनट में इसे हल कर दिया, "अभी वह कारखाना नहीं बना, जहाँ ऐसी आरी का निर्माण किया जा सके, जिस के साथ शैली और विषय को चीरकर अलग अलग किया जा सके।"

शचि रावत राय ने कहा —

मेरा गाँव छोटा सा था
मेरा दिल पत्थर का टुकडा था
मेरे गाँव मे चन्न आया
उस ने मुझे कवि बना दिया
मेरे स्वप्नो ने सात-रगी झूला डाला
मेरी कल्पना उस झूले पर झूलने लगी

दिनकरजी की कल्पना ने भी इसी झूले पर बैठकर कहा—

चाँद झील मे उतर आया
आकाश कितना शान्त प्रतीत होता है
तारो की खेती जल मे तैरती है
शायद चाँद क्रांति बन फसल काटने आया है।

मनोरमा महापात्र ने विकृत अ प्रकार मे विश्वास की चिनगारी को सुलगाते हुए कहा—

मेरे हृदय वन म एक बात भटक रही है
मेरे हाथ वह आती नही
वह बात मैं तुम्हे सुनाऊँगी
मैं ने कितने मुह देखे हैं
तेरा चेहरा नही मिला
जिस दिन तू मिल जायेगा

वह छ द उस वायु के समान है[1]
जो हवा से भरे वन मे तड़प-तड़पकर चलती है
पर-तु किसी फूल को स्पर्श नही कर सकती

यह पीडा जिस अनुकम्पा का द्वार पार करके आती है, कनकलता देवी ने उस अनुकम्पा की देहली पर खडे होकर कहा—

किस का स्पश हुआ
सूना हृदय खिल गया
कहाँ से एक चिनगारी आयी
अँधेरी रात का शरीर प्रकाशित हो उठा
कहा से आयी ये पवित्र बदें
मेरा भीतर बाहर सब घुल गया
यह किस के बोल मेरे कानो मे पडे
जीवन के स-तप्त स्थल शान्त हो गये
कौन है वह मोहन जिस ने बासुरी मे फूक मारी
मेरे हृदय के सुप्त स्वर जाग्रत् हो गये
यह किस का इशारा था
जीवन के शब्दो मे अथ भर गये।
यह कैसा म-त्र था
मुझे छोडकर चले गये
यह तेरा जादू
मेरे शरीर स दुखो को झाड गया
तू मेरो पारस मणि

यहाँ ऐसा कौन था जिस ने जीवन के शब्दों में अर्थ भरते हुए नही देखे थे! कौन ऐसा था जिस से उस का 'वह' नही बिछुडा था, जो जाते हुए उन शब्दो को भी साथ ले जाता है, जिन से अर्थों के प्रगाढालिंगन होते हैं!

मनोरमा की पीडा कई गुना थी। कलाकार होने के नाते, एक पीडा उसे परम्परा से मिली थी और नारी होने के नाते दुनिया ने उस की पीडा को भी 'प्रतिब-धों' से गुणा कर दिया था। वह कहने लगी—

कितनी ही पीडाएँ
मेरे हृदय मे सुलग सुलग उठती है,
तुम उन की जबान क्यो ब-द करते हो।
इतने अधरों में
मुझे गीतों का प्रकाश ढूढ लेने दो,
लेखनी की डण्डी पर

कल्पना का फूल खिलने दो,
मेरे प्राणो मे
इन फूलो के बीज सुरक्षित पड़े हैं—
इन सुमनो को खिलने दो।
मेरे हृदय की सारी पीड़ा
सौरभ का रूप धारण कर लेगी,
मेरा नाम सागर है
स्वप्नो की लहरें उस मे आती हैं,
एक दिन वे शब्दो के मोती
मेरे हाथ मे दे जायेंगी,
मेरी कला अभी एक छोटी कली है
यह कली एक दिन फूल बन जायेगी,
तुम इस कली की डण्डी मत मसलो
मेरी अर्चना के दीप को फूँकें न मारो,
मेरी कल्पना के आकाश पर
सूरज अस्त हो जायेगा
मैं फिर कला की मूर्ति नही
कला की कब्र बन जाऊँगी।

मनोरमा के बोल देखकर मुझे मोहनसिंह के बोल याद आ गये, "एक मद, दूसरा बादशाह, तीसरा सम्राट् का बेटा। नूरजहाँ, तू ने फिर उस से वफा की आशा कर ली।" मैं ने मनोरमा से कहा "तुम एक कलाकार, और फिर नारी, इन पीडाओ का अन्त कहाँ होगा ?"

नारी, माँ होती है अथवा प्रेमिका" दो लोकगीत कह रहे थे—

मेरे बच्चे तुम विवाह करने जा रहे हो,
मेरे दूध का मूल्य चुका जाना,
मेरे प्यारे, तुम मुझे छोडकर जा रहे हो
मेरे प्राणों का मूल्य देते जाना।

तमिल कवि वहाँ कोई नही था, परन्तु एक तमिल गीत वहाँ था। उस गीत मे जिस माँ का उल्लेख था, वह सारे विश्व की माताओ के हृदय की सामूहिक आवाज़ थी—

ओ शिवजी,
तुम्हारी माँ कोई नही
क्या इसीलिए तुम भग पीने लग गये हो ?
तुम्हारी माँ कोई नही

क्या इसीलिए तुम गले म साँपो की माला पहन रहे हो?
तुम्हारी माँ कोई नही
क्या इसीलिए तुम श्मशानो म जा बैठे हो?
भोले शकर,
अब तुम्ह माँ कहाँ से मिलेगी!
आओ, तुम मुझे अपनी माँ बना लो।

पीडा और उस को सहन करने की क्षमता के सत्कार से कौन इनकार करेगा? अपना स्वय भी इस से इनकार नही कर सकता। अनन्त पटनायक कह रहा था—

यह मेरी वन्दना
अपनआप को
आँसुओं की नदी
ऊपर ममता का पुल
पास ही निर्माण हुआ
मित्रता का सफेद ताज -
क्या यह मैं ने नही देखा?
खेतो का जन्म
गेहूँ की मुसकराहट
और बालियो का सगीत
क्या यह मैं ने नही सुना?
मैं दुखो से पिघल रहा हू
मेरा मौन मेरी मौत से सघर्ष कर रहा है,
इस मौन को मेरा प्रणाम
यह मेरी वन्दना
अपनेआप का

दिनकर जी ने अनन्त पटनायक की व दना म एक पक्ति और जोड दी—
मैं वह झरोखा हू
जिस मे से ससार बाहर की ओर देखता है।

बात भीतर की ही बहुत बडी थी, परन्तु बाहर तो कही इस का पार ही दिखायी नही देता था। शचि रावत राय ने कहा—
मैं शचि रावत राय—
मैं टगोर नही,
मैं शेली नही,
मेरे कागजो पर आकर्षक चित्र नही,

मेरी पुस्तक को खोलना
इस मे नये मानव का स्पन है,
इस के होठो पर गाथा है,
मानवता की गाथा है ।

एक भीतर के तूफान थे और आंधी बाहर से आ रही थी। झरोखे खुले थे। शचि रावत राय ने कहा—

एक प्रणाम
इस आ रही आंधी को!
मेरा प्रणाम
यह पर्वत, यह दरिया, यह सागर—
इन सब को प्रणाम !
तुम दिल हलका नही करना,
अपने घर का कोई द्वार बन्द न करना,
अपने घर की कोई खिड़की बन्द न करना,
स्वागत इस आनेवाली आंधी का,
प्रणाम इस आ रही आंधी को।

1938 की बात थी, इस उडीसा में एक रियासत थी ढेंकानल। एक ओर लोकजागृति थी, दूसरी ओर रियासती दमनचक्र। एक रात रियासती पुलिस को नदी पार करनी थी। किनारे पर एक ही नाव थी, नीलकण्ठापुर का बारह वर्षीय नाविक पुत्र नाव के पास खडा था। पुलिस ने आवाज दी, परन्तु नाविक-पुत्र ने हुकारा न दिया। पुलिस ने पुन आवाज दी। नाविक पुत्र ने कहा, "मैं हत्यारो के लिए नाव नही चलाऊँगा।" पुलिस ने तत्क्षण मासूम नाविक पुत्र को गोली मार दी। उस का नाम बाजी राउत था। उस की लाश कटक मे लायी गयी। शचि रावत राय ने उस का मुख देखा तो उसे प्रतीत हुआ, वह भारत की मिट्टी से उत्पन्न हुआ लाल फल था। उस दिन शचि रावत राय को ऐसा प्रतीत हुआ था कि नन्हे बाजी राउत की मौत उसे कह रही थी—

मेरे कवि

अब तू जीवन का दुभाषिया बन जा,
अब तू लोगो के रिसते घावो के गीत लिखना,
लोगो की आंखो से बह रहे अश्रुओं के गीत गाना।

उस दिन शचि रावत राय ने विद्रोह की आंधी को प्रणाम करके बाजी राउत की माँ को कहा था—

माँ ! अपने आँसू पोछ ले,
आज लोग गीत गा रहे हैं

तेरे रक्त की विजय के गीत
जो कभी तेरा था
आज उस को समस्त विश्व ने अपना लिया है,
देख, तेरा बेटा पुन जन्म ले रहा है
इस बार विश्व के गर्भ से उस का जन्म हुआ है।

आज रावत राय कह रहे थे—

इस शताब्दी के बडे द्वार मे
एक दूत आया है
उस ने भविष्य का सन्देश दिया है
भविष्य
जहा जीवन जीवन के लिए होगा।

आज के कानो मे चाहे दुखो की सलाइया चुभी हुई थी, परन्तु वे कान फिर भी भविष्य का सन्देश लेकर आनवाले दूत के शब्दो को चूम रहे थे।

कभी नाग ने फण फैलाया था, तो कृष्ण ने उस पर खडे हो बासुरी बजायी थी। दिनकरजी ने आज साप को जीवन और कृष्ण को मानव कहा। मानव कह रहा था—

ऐ जीवन! जिस ने तुम्हे
विष का उपहार दिया
उसी ने मुझे गीतो की सौगात दी।
तुम सोच रही हो, तुम्हारा विष पराजित नही होगा,
मैं सोच रहा हूँ मेरे गीत नही हारेंगे।

पजाबी कविता ने कहा, 'यह मुहब्बत की बात, गीतो की कहानी कसे समाप्त करेंगे, प्रति दिन तारे रात को इस बात का हुकारा भरने आ जाते हैं।"

बासो के सहारे चटाइयो की छत डाली हुई थी। भीतर एक कपडा तना हुआ था। चटाइयो मे से छनकर जो सूरज का प्रकाश आ रहा था, पहले कपडा उसे समेट लेता था और जितना प्रकाश उस के हाथो बचता, वह छोटे छोटे तारो का रूप धारण कर रहा था।

पाँवो के नीचे उडीसा की धरती थी। सिर पर तारो की छत। मुहब्बत अपनी कहानी सुना रही थी—एक मानव की मुहब्बत—सारी मानवता की मुहब्बत और तारे हुकारा भर रहे थे।

8963

धरती का सम्बन्ध

"यदि मेरा सम्बन्ध धरती से शेष रह गया होगा, तो यह हवाई जहाज अवश्य फिर से नीचे उतरेगा।" दिनकर ने मुन्ह से कहा। मुझे अनुभव हुआ कि जसे दिनकर एक ऐसी सरल युवती है जो अपनी, सहेलियो की नकल करती हुई व्रत रख बैठी है। व्रत के नियम के अनुसार सारा दिन भूखे रहकर रात चाँद निकलने पर ही जल स्पर्श करना होता है। चाँद निकलने पर ही नही आता तो तग आकर वह युवती शुष्क कण्ठ से जल माँगती हुई कहती है, 'अजी, यह चाँद है कौन जाने इस की लीला ! निकले निकले, नही निकले तो नही निकले।' ठीक यही अवस्था मुझे दिनकर की लगी।

वैसे देखा जाये तो दिनकर ने यह व्रत आज प्रथम बार नही रखा था, इस के पूव भी कई बार अपनी सखियो का अनुकरण करते हुए व इस परीक्षा से निकल चुके थे—चीन जाते हुए, पोलैण्ड जाते हुए, फ्रास जाते हुए। प्रत्येक बार दिनकर को यही अनुभव हुआ, 'यह चाँद का मामला है, यह हवाई जहाज की बात है क्या पता चाँद निकले भी कि नही, क्या पता हवाई जहाज नीचे उतरे भी कि नही !'

"मुझे धरती और नीद से बहुत प्यार है, अमृता ! प्रत्येक बार सोते समय मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि यदि भारत परत त्र होने लगे तो मुझे जगा लेना, नहीं तो मुझे सो लेने देना।"

कलकत्ता से भुवनेश्वर तक जाते हुए हवाई जहाज म हम कुल नौ यात्री थे। परन्तु तीन बडे टोकरे छोटे छोटे मुर्गों से भरे हुए थे। यात्रियो से उन की सख्या कई गुना अधिक थी। उन की आवाज का शोर इतना था कि कोई बात सुन सकना सम्भव नही था। मैं ने यह शिकायत की तो दिनकर ने कहा, "ये हमारे आलोचक हैं, अमृता ! कला की कोई बात ये कानो म जाने ही नही देते"

हिन्दी लेखक दिनकर जब यह कह रहे थे, मुझे स्मरण हो आया कि जब हम काठमाण्डू म पशुपतिनाथ के मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ रहे थे, तो बडे-बडे

माटे बन्दर हमार पास चलने फिरने लगे थे। मैं डर गयी थी तो बगाली लखक सान्याल न कहा था, "बस, इन से बचन का एक ही उपाय है, इन से आँख मत मिलाओ, फिर ये कुछ नही कहगे, अमृता ! य हमारे समालोचक हैं। हम इन से आँखें चार नही करनी चाहिए, मौन रहत हुए अपने कला के माग पर बढ़ते रहना चाहिए।"

मेरे हाथ म 'लाइफ़' पत्रिका थी। उस म सामरसैट माम कह रहे थे - "समालोचक महाशय ! तुम्हारे मन म जो आय लिखो, मुझे तुम्हारा लेख पढ़ना ही नही।"

सामरसैट मामवाली बात पर हम ने भी अमल किया। मुर्गों की कुडकुड की ओर स जब हम ने कान ही बन्द कर लिये तो दिनकर ने कहा, "मैं कवि हूँ, एक कवि हूँ, एक झरोखा हूँ, जिस से संसार बाहर की ओर देखता है।"

इन झरोखों से ससार को देखने के लिए ही तो उडीसा के लोगो न दिनकर को बुलाया था। अब व भुवनेश्वर के हवाई अड्डे पर हमारा स्वागत करने के लिए खडे थे।

अपन प्रदेश के अतिथिगृह में बठाकर वे पूछने लगे, "आप क्या खाना पसन्द करेंगे?"

"एक साँप और एक कछुए के अतिरिक्त आप जो कुछ मुझे खिलायेंगे, मैं खा लूगा।" दिनकर ने कहा और जब उन्होंने प्लटो म मछली और मुर्गा परोसा तो दिनकर ने मुसकराकर कहा, "वाह वाह यह मछली भगवान् का प्रथम अवतार है, इसे तो मैं अवश्य खाऊँगा। मुर्गा, यह तो भगवान् राम का पक्षी है, इसे भी जरूर खाऊँगा।'

साँपवाली बात शायद दिनकर को भूली नही थी। कटक के पण्डाल में दिनकर ने कविता पढी—

नागराज के व्यापक फणो पर खडे हो
राधावर ने अपनी बाँसुरी का तान अलापा
आज अखिल विश्व साँप का विस्तृत फण है,
मैं मानवता की बाँसुरी बजाता हुआ मानवता के गीत
गा रहा हूँ।
जिन्दगी ! जिस ने तुम्हे विष का उपहार दिया है
मुझे उस न ही गीतो का वरदान दिया है
तुम सोच रही हो, तेरा विष पराजित नही होगा
मैं सोच रहा हूँ, मेर गीत कदापि पराजित नहीं होंगे।

धरती का विष मानव से बार बार अपना सम्बन्ध विच्छेद करता था, परन्तु मानव गीत के रक्त मे यह सम्बन्ध इतना ओत प्रोत था कि यह सम्बन्ध टूटता ही

नही था।

मेरे और उड़िया लोगों के बीच भाषा की एक दीवार थी। मैं ने कहा, "आप ने मुझे बुलाया, मैं आ गयी, परन्तु मेरे हृदय की बात आप तक पहुँच जाये, यह कैसे हो?"

पर जब हम भाषा की दीवारें पार कर देखते हैं तो दूसरी ओर भी वही हृदय, और वही हमारी चिरपरिचित धड़कन ही हमें सुनायी देती है। पंजाबी का लोकगीत कहता है—

अय बनजारे, मुझे आकाश का लहँगा सिला दो
और उस पर धरती की किनारी लगी हो।

उड़ीसा का लोकगीत जब यह कहता है

मेरा द्वीप शुद्ध स्वर्ण से निर्मित है
मुझे चंदन का तेल ला दो रामजी!
प्रकाश से यही अनुनय विनय है
प्रभु मेरा मेरे प्यारे से मेल हो!

यह माँग केवल उड़िया युवती की ही नहीं। हमें समस्त देशों की युवतियाँ दिये जलाकर अपने प्यारे से मिलाप की आकांक्षा करती दिखायी देती हैं।

जब नेपाल का कवि कहता है—

मैं ने आकाश के चकले पर वायु के बेलने से बेलकर
बादलों की रोटियाँ पकायी हैं।

हम सब को अनुभव होता है कि नेपाल के कविवर ने ही बादलों की रोटियाँ नहीं पकायीं, प्रत्युत् हम सब ने भी ऐसी रोटियाँ बनायी हैं।

जब तिब्बत का गीत बोल उठता है—

बायें हाथ में अँगूठी दायें हाथ दराती

हम अनुभव होता है कि प्रेम और परिश्रम के ये दोनों चिह्न युगों से हम सब निरन्तर अपने हाथों में लिये हुए हैं।

चकोस्लोवाकिया की आवाज़ गूँज उठती है—

सूरज मेरा कवि है
उस के कर-कमलों मे स्वर्णिम लेखनी है,
धरा उस का काग़ज़ है
उस पर वह सुंदर कविता की रचना कर रहा है।
वीर बाँकुरे परिश्रम करते हैं
नवयुवतियाँ रंगीन वस्त्र धारण कर रही हैं
बच्चे नयी उपमाओं की भाँति हैं
और सूरज का गीत बढ़ता जा रहा है।

मोटे बन्दर हमारे पास चलन फिरने लगे थे। मैं डर गयी थी तो बगाली लेखक सान्याल ने कहा था, "बस, इन से बचने का एक ही उपाय है, इन से आख मत मिलाओ, फिर ये कुछ नही कहेंगे, अमृता ! ये हमारे समालोचक हैं। हमे इन से आँखें चार नही करनी चाहिए, मौन रहते हुए अपने कला के माग पर बढते रहना चाहिए।"

मेरे हाथ मे 'लाइफ' पत्रिका थी। उस मे सामरसैट माम कह रहे थे - "समालोचक महाशय ! तुम्हारे मन मे जो आये लिखो, मुझे तुम्हारा लेख पढना ही नही।"

सामरसैट मामवाली बात पर हम ने भी अमल किया। मुर्गों की कुडकुड की ओर से जब हम ने कान ही बन्द कर लिये तो दिनकर ने कहा, "मैं कवि हूँ, एक कवि हूँ, एक झरोखा हूँ, जिस से संसार बाहर की ओर देखता है।"

इन झरोखों से ससार को देखने के लिए ही तो उडीसा के लोगो ने दिनकर को बुलाया था। अब वे भुवनेश्वर के हवाई अड्डे पर हमारा स्वागत करने के लिए खडे थे।

अपने प्रदेश के अतिथिगृह मे बठाकर वे पूछने लगे, "आप क्या खाना पसन्द करेंगे ?"

"एक साँप और एक कछुए के अतिरिक्त आप जो कुछ मुझे खिलायेंगे, मैं खा लूगा।" दिनकर ने कहा और जब उन्होने प्लेटो म मछली और मुर्गा परोसा तो दिनकर ने मुसकराकर कहा "वाह वाह यह मछली भगवान् का प्रथम अवतार है, इसे तो मैं अवश्य खाऊँगा। मुर्गा, यह तो भगवान् राम का पक्षी है, इसे भी जरूर खाऊँगा।"

साँपवाली बात शायद दिनकर को भूली नही थी। कटक के पण्डाल मे दिनकर ने कविता पढी—

> नागराज के व्यापक फणो पर खडे हो
> राधावर ने अपनी बाँसुरी का तान अलापा
> आज अखिल विश्व साँप का विस्तृत फण है
> मैं मानवता की बासुरी बजाता हुआ मानवता के गीत
> गा रहा हूँ।
> जिन्दगी ! जिस ने तुम्हे विष का उपहार दिया है,
> मुझे उस न ही गीतो का वरदान दिया है
> तुम सोच रही हो, तेरा विष पराजित नही होगा
> मैं सोच रहा हूँ, मेरे गीत कदापि पराजित नही होगे।

धरती का विष मानव स बार बार अपना सम्बन्ध विच्छेद करता था पर तु मानव गीत के रक्त में यह सम्ब ध इतना ओत प्रोत था कि यह सम्बन्ध टूटता ही

नही था।

मेरे और उडिया लोगों के बीच भाषा की एक दीवार थी। मैं ने कहा, "आप ने मुझे बुलाया, मैं आ गयी, परन्तु मेरे हृदय की बात आप तक पहुँच जाये, यह कैसे हो?"

वैसे जब हम भाषा की दीवारें पार कर देखते हैं तो दूसरी ओर भी वही हृदय, और वही हमारी चिरपरिचित धड़कन ही हमे सुनायी देती है। पंजाबी का लोकगीत कहता है—

अय बनजारे, मुझे आकाश का लहँगा सिला दो
और उस पर धरती की किनारी लगी हो।

उडीसा का लोकगीत जब यह कहता है

मेरा द्वीप शुद्ध स्वर्ण से निर्मित है
मुझे चंदन का तेल ला दो रामजी!
प्रकाश से यही अनुनय विनय है,
प्रभु मेरा मेरे प्यारे से मेल हो!

यह माँग केवल उडिया युवती की ही नही। हमे समस्त देशों की युवतियाँ दिये जलाकर अपने प्यारे से मिलाप की आकांक्षा करती दिखायी देती हैं।

जब नेपाल का कवि कहता है—

मैं ने आकाश के चकले पर वायु के वेलने से बेलकर
बादलों की रोटियाँ पकायी हैं।

हम सब को अनुभव होता है कि नेपाल के कविवर ने ही बादलो की रोटियाँ नही पकायी प्रत्युत् हम सब ने भी ऐसी रोटियाँ बनायी हैं।

जब तिब्बत का गीत बोल उठता है—

बायें हाथ में अँगूठी दायें हाथ दराँती

हमे अनुभव होता है कि प्रेम और परिश्रम के ये दोनो चिह्न युगो से हम सब निरंतर अपने हाथों मे लिये हुए हैं।

चकोस्लोवाकिया की आवाज़ गूँज उठती है—

सूरज मेरा कवि है
उस के कर-कमलों मे स्वर्णिम लेखनी है,
धरा उस का काग़ज़ है
उस पर वह सुंदर कविता की रचना कर रहा है।
वीर बाँकुरे परिश्रम करते हैं
नवयुवतियाँ रंगीन वेश धारण कर रही हैं
बच्चे नयी उपमाओं की भाँति हैं
और सूरज का गीत बढता जा रहा है।

हमें अनुभव होता है सूर्य हमारा सभी का कवि है। उस का कागज़ हमारी समस्त धरती का कागज़ है। उस के गीत में केवल धक बच्चे ही नवीन तुलनाएँ नही, हमारे बच्चे भी उस की नयी उपमाएँ हैं।

जब मैं ने कहा, "वैसे तो इतने बडे हिन्दी लेखक, दिनकर के समक्ष अशुद्ध हिन्दी मे बातचीत करना गुस्ताखी है परन्तु इस गुस्ताखी के मार्ग से गुजरकर ही मेरी बातें आप तक पहुच सकती हैं," तब दिनकर ने शुद्ध हिन्दी की उपेक्षा और हृदय की भाषा का आदर करते हुए कहा, "नही, अमृता! तुम्हारी हिन्दी अशुद्ध नही। तुम्हारे पास एक शैली है, शबनम की शैली, उस के लिए कोई भी भाषा हो, ठीक है।"

इतने उदारहृदय कवि को जब मोटर मे बठा, हमारे मेजबान बाजार से चीजें खरीदन के लिए चले गये, तो लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् दिनकर ने कहा, "इस प्रकार तो हम बैठे बैठे दलाई लामा बन जायेंगे आओ बाहर घूमे।"

"कितने बजे कोणार्क चलेंगे?" हमारे मेजबानो ने पूछा।

"सूर्योदय हम रास्ते मे ही देखेंगे।' मैं न कहा।

"इतनी प्रात जायेंगे कैसे!" दिनकर न पूछा।

"मैं जगा दूगी, मुझे रात को नीद नही आती।"

"हे भगवान् पहले तो मैं प्रार्थना करता था, 'जब मेरा भारत गुलाम होने लगे तो मुझे जगा देना, नही तो मुझे सोने देना।' आज प्रार्थना करता हूँ कि अमृता को प्रगाढ निद्रा प्रदान करना।'

दिनकर की नीद म मैं ने तो विघ्न नही डाला, परन्तु सूर्य ने ऐसा कर दिया। जब हम कोणार्क से होते हुए जगन्नाथपुरी पहुचे, तो पुरी के सागर के तीर पर खडे दिनकर कह रहे थे

> हम देर से आये हैं
> सागर हस रहा है
> आकाश का मुख खुला है
> और उस म झाग के सफेद दाँत दिखायी दे रहे हैं।

भगवान् के प्रथम अवतार मछली और राम पक्षी मुर्गे को बडे प्रेम से खानेवाले दिनकर के सामने आज उबले हुए मटर परोसे गये थे, क्योंकि पुरी, भगवान् की नगरी मे दिनकर ने मास नही खाया था।

दिनकर ने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा, "देखो, आज मेरी स्थिति क्या हो गयी है, मुझे यह भी दिन देखना था। आप सब की प्लेटो मे मछली और मुर्गा और मेरी प्लेट मे उबले हुए मटर' '

यह इस बात की सज़ा है, दिनकरजी, आप ने भगवान की धरती केवल पुरी की सीमाओ म ही सिकोड ली है हमारे लिए पुरी की सीमा के बाहर भी भगवान्

की धरती है।" मैं ने कहा।

"भई, क्या करूँ? यहाँ साखी गोपाल का मन्दिर है, कहीं उस ने मेरा उलटी साक्षी दे दी तो मेरा संस्कार "

"रात को भी आप यही खाना खायेंगे—उबले हुए मटर, दाल और चावल ?" मेजबानों ने पूछा।

"अरे रात को क्यों? पुरी से आठ बजे गाडी चलती है। आप डब्बे मे मछली और मुर्गा बन्द कर के दे दो, जैसे ही भगवान् की पीठ दिखायी देगी अर्थात् पुरी की सीमा पार हो जायेगी, मैं सब कुछ खा लूंगा।"

अभी भगवान् के बिलकुल सामने ही बठे थे। चाय का समय था, मेज़ के ऊपर केक पडा था। दिनकर ने कहा, "इस केक मे अण्डा पडा दिखायी ही नही देता। भगवान को भी दिखायी नही देगा, यह मैं खा लेता हूँ।" अन्ततोगत्वा संस्कारो की गाँठो ने एक चूल ढीली कर ही दी।

"ये हैं चिकन सैंडविचेज़, इन मे भी तो सब कुछ दोनो ओर से ढका हुआ है। यह भी खा लो।" किसी ने कहा। दिनकर ने बडे ध्यान से प्लेट की ओर देखा और कहा, "भई! किनारो से भगवान् को दिखायी दे जायगा।"

रात आठ बजे गाडी चली। जैसे जैसे पुरी पीछे छूट रही थी, भगवान पीठ करता चला जा रहा था, हम डब्बे खोल रहे थे। सामने भगवान् का प्रथम अवतार था राम का पक्षी था

चाहे दिनकर के एक संस्कार ने चाय के समय अपनी एक गाँठ ढीली कर ली थी, परन्तु दूसरे संस्कार ने ढील नही दिखायी "यदि मेरी धरती के साथ सम्बन्ध दोप हुआ तो।" अब चाहे हम हवाई जहाज मे नही बैठे थे, गाडी मे बठे हुए थे, जिस के पग पहले ही धरती को छू रहे थे, परन्तु कलकत्ता ही नहीं आ रहा था। रात व्यतीत हो गयी थी, दिन निकल आया था। लगता, अगला स्टेशन अवश्य कलकत्ता होगा। स्टेशन आता, पर वह कलकत्ता न होता। दिनकर कह रहे थे—'हे भगवान्! क्या अब इस ससार मे कलकत्ता किसी और जगह चला गया है?"

आँसुओ का रिश्ता

जुलफिया के दिल का जाम मुहब्बत से भरा हुआ था और जुलफिया के दस्तरखान पर शीशे का प्याला अनारो के रस से। दोनो प्यालो मे से मैं बारी बारी घूट भरती उजबेक की किताबो के पृष्ठ उलट रही थी। मेरे और किताबो के बीच भाषा की दीवार थी, परन्तु एक किताब की जिल्द पर बहुत ही सुदर लडकी की तसवीर थी, और एक आँसू उस लडकी की आँख मे लटक रहा था। मुझे महसूस हुआ, जाने वह आसू भाषा की दीवार फाँदकर मेरी झोली मे आ पडा था। मैं ने कहा

"जुलफिया! इन आसुओ का औरत की आँखो के साथ पता नहीं क्या रिश्ता है! कोई देश हो, यह रिश्ता चिरसहचर महसूस होता है"

"जब कभी दो व्यक्ति इस रिश्ते को समझ जाते हैं, इस समझ की बदौलत उन दो व्यक्तियों मे भी एक रिश्ता बन जाता है—अटूट रिश्ता। मुझे महसूस होता है कि अमृता और जुलफिया जाने एक ही चीज के दो नाम हो। इसी तरह, जैसे आसू और औरत की आँखें एक ही चीज के दो नाम हैं।"

इस किताब मे उजबेक औरतो का कलाम था, 19वी सदी की नादिरा कह रही थी

मेरे दोस्त,
यदि मेरे पास आने को
तुझे कोई बहाना चाहिए
तो मुझे दोस्ती का तरीका
सिखाने के बहाने आ जा,
तुझे हक़ है
हम इश्क़वालों को मारने का।
जफा का तीर पकड ले
और मेरे सीने को बेंध दे।

नादिरा के बाद इसी 19वी सदी की महिज़ूना ने अपना कलाम पढ़ा और उस के एक समकालीन फज़ली ने कहा

मैं ने तेरा मुँह नही देखा
तेरी आवाज़ सुनी है,
उस शीशे की क्या क़िस्मत
जिस ने तेरा जमाल नही देखा,
काग़ज़ भी एक शीशा है
और मैं ने तुम्हारे दिल का हुस्न देख लिया है।

महिज़ूना ने उत्तर दिया

लफ्ज़ों मे जमाल नही आता
जब तक दिल मे आग न जले।

फज़ली ने कुछ घबराकर कहा

सुखन की ख़ूबसूरती को
नक़ाबपोशी मुबारक हो,
मुझ से यह इतना जलाल
झेला नही जायेगा।

महिज़ूना ने आदर से उत्तर दिया

यदि मेरे लफ्ज़ो मे
पूरा आदर न हो
तो मुझे क्षमा कर दे,
पर यदि आकाश मे सूरज न चढे
इस धरती पर कुछ नही उगता।

फ़ज़ली ने एक प्रश्न किया

इतने सुखनोवाली,
तेरा रहबर कौन था?
किसी सूरज के बिना
कोई चाँद नही चमकता।

महिज़ूना ने एक लम्बी साँस ली और कहने ल[illegible]

जैसे छोटी नदियाँ मिलकर
दरिया बन जाता है,
जहाँ पत्ने सब्ज़ मिलते हैं
मेरे सारे दर्द मिलकर
मेरा दिल बन गया है
यहाँ से मेरे सुखन निकलते हैं

मैं ने महिजूना के पास खड़ी हुई नादिरा के चेहरे की ओर देखा। नादिरा कहने लगी

फूल खिल पड़े हैं,
बुलबुल, तू अपनी खामोशी तोड़ दे!
यदि तेरे पास गीत समाप्त हो गये हैं
तो इस नादिरा के कलाम म से
फरियाद ले जा।

नादिरा और महिजूना के पास उवैसी भी खड़ी हुई थी। मैं न प्यार से उस के चेहरे की ओर देखा। उवैसी ने एक शेर पढ़ा

सजदे म यदि तेरा माथा नहीं चुकता,
जाहिद! तो काफिर हो जा
मैं जफा से घबराकर
किसी और तरफ नहीं देख सकती।

20वी सदी ने 19वी सदी के शरीर पर पड़ी हुई समय की धूल को झाड़ दिया, परन्तु फिर भी हैरान होकर देखा, आसुओ का और औरत की आँखो का रिश्ता बड़ा घनिष्ठ था। जुलफिया ने इस रिश्ते पर नज्म पढ़ी—

ऐ सुन्दर युवती,
बहार के फूलो से सुन्दर तेरी आँखें
पर इन फूलो से
इन्तजार की खुशबू आती है।
तुझे इश्क और हिज्र की समझ आयी
तेरे दिल की धरती जरखेज हो गयी।

तेरी आँखें राहो पर जमी हैं
तुम किसी के वचनो से बँधी खड़ी हो
अति कोमल तेरे पैर
पर इस धरती के कड़े इकरार
तेरे पैरो मे बेड़ी छनकती
तेरे होठों का रग
उस दिल के रक्त जैसा
जिस की नाड़ियों म मुहब्बत बहती
एक मासूम आग जलती
तेरी आँखो मे एक सेंक

उस दर्द का
जो तू ने दिल मे गहरा छिपा लिया।

जुलफ़िया ने एक गहरी सांस ली और आगे कहा

एक भी धुएँ की रेखा
तेरे भीतर नही !
तू ने शिक्वे का धुआं घुखने नही दिया
वह निष्ठुर निक्दरा
अच्छा मैं उस का नाम नही पूछती
तेरी जबान छाला से भर जायेगी।

तू एक खाली आकाश था
उस के मेल ने इन्द्रधनुप डाल दिया
और फिर सातो रग खुर गये
आकाश और सांवला हो गया।

और जुलफिया ने मुझ से पूछा, "अमृता ! तू ने भी कभी उस आसमान का गीत लिखा है, जिस पर सतरगा झूला पडा हुआ हो ?"

—हाँ, अनेक गीत

तेरा खत हमे आज मिला है
जाने सातो आसमानो पर घटा छा गयी
दोनो मेरी आँखें झूम गयी
माथे म भाग्य का मोर नाच उठा।

"और फिर उस आसमान का गीत जिस पर से सातो रग खुर गये हों ?"

—हाँ, वहुत गीत

क्यो किसी की नीद का स्वप्नो न बुलावा दिया
तारे खडे रह गये अम्बर ने द्वार बन्द कर लिया
यह किस तरह की रात थी, आज जब भाग गुजरी
चाँद का एक फूल था
पैरों के नीचे रौंदा गया

"और फिर वह गीत जिस में शिक्वे का धुआं हो ?"

—हाँ, वह गीत भी

रात जाने पीतल की कटोरी थी
सफेद चाँद की कलई उतर गयी,
आज कल्पना कसर गयी है

स्वप्न जैसे कैंसर जाये
नींद जसे कड़वी हो गयी है।

"और अब?"

—अब एक चुप है

मन की इस घड़ोंची पर
सोचोवाली गागर खाली है,
चुप मेरी प्यासी बैठी हुई
होंठो पर जिह्वा फेरती
दो शब्द का पानी कहीं नहीं मिलता।

समरकन्द के एक कवि आरिफ लाला के दो फूल लाये और हम दोनों को एक एक फूल दे दिया। दोनों फूलो का एक जैसा लाल रंग था और दोनों की एक जैसी खुशबू थी। मैं ने और जुलफिया ने आपस में फूलों का विनिमय कर लिया जसे दो सहेलियाँ अपनी चुनरी का विनिमय करती हैं। और मैं ने कहा, "दो फूल, पर एक खुशबू।"

"दो देश, दो भाषाएँ, दो दिल पर एक दोस्ती।" और जुलफिया ने मेरी बाँहों मे अपनी बाँहें डाल दी।

"लाला फूलों का रंग हमारे दिलों के रक्त का रंग है।" मैं ने कहा।

"पर इन फूलों में दर्द का दाग कोई नहीं। हमारे दिलो में दर्द के दाग़ हैं।" जुलफिया ने जवाब दिया।

मुझे नादिरा का शेर याद आ गया है, उस ने बुलबुल को कहा था, "यदि तेरे गले मे गीत समाप्त हो गये हैं तो इस नादिरा के कलाम में से फरियाद ले जा।" मैं लाला के इस फूल को कहती हूं यदि इसे अपने दिल के लिए दर्द के दाग़ नहीं मिलते तो मुझ से अथवा जुलफ़िया से कुछ दाग उधारे ले जाये

जुलफिया को कुछ याद हो आया, वह कहने लगी, 'लाला के वे फूल भी होते हैं जिन की छाती मे काले दाग़ होते हैं—चल, खेतो मे वे फूल तोड़ें'

खेतों की ओर जाती कच्ची सड़क के किनारे-किनारे शीशम के वृक्ष थे, जुलफ़िया ने उन वृक्षों की ओर देखा और कहने लगी, 'यह ताल का वृक्ष शायद सफल मुहब्बत का वृक्ष है, पर इसी जात का एक वृक्ष होता है मजनूताल। यहाँ नहीं, वह केवल पानी के किनारे उगता है, पहले उस के पत्ते आसमान की ओर जाते हैं और फिर उस की शाखाएं झुककर धरती की ओर लटक जाती हैं जैसे पानी में अपने महबूब के चेहरे को तलाश कर रही हों हम जब असफल मुहब्बत की किसी वृक्ष के साथ तुलना करते हैं, तो उस मजनूताल के वृक्ष के साथ।"

आसपास गेहूँ के खेत थे। अभी पौधे छोटे छोटे थे, किनारे किनारे कई

स्थानो पर लाला फूल उगे हुए थे।

'इन फूलो के सीने मे काले दाग होते हैं, चल य दागदार फूल तोड़ें।"

मैं और जुलफ़िया फूल तोड रही थी कि एक बडा बाँका उज़्बेक मद लाला का बड -सा फल तोड लाया और मुझे कहने लगा, "इस फूल क सीन मे हिज्र के काले दाग नही, य रोशनी के दाग हैं।"

लाला फूल के सीने म उभरे हुए दाग सचमुच सिल्की रग के थे। मैं ने उस का धन्यवाद किया पर तु कहा

'दाग चाहे सियाह हो अथवा सिल्की—दाग दाग ही होते है। ये दाग शायद इसलिए रोशन हैं कि इन मे याद की बत्ती जग रही है"

जुलफिया मुसकरायी और कहने लगी, "क्या यह याद हमारी अपनी ही करामात नही ? नहीं तो यह मद "

"हाँ, हमारी अपनी करामात "

"क्या तुम और मैं इस तरह नही, जैसे आवाजें दो हा परन्तु बात एक ?"

'हाँ, और इस तरह जमे गिसरे दो हों, पर तु गीत एक " मैं ने कहा और मुझे महसूस हुआ, मैं ने औरतो के मुह की ओर देखा और दद भरे गीत लिखे

सामाजिक अ याय की चक्की मे पिसती औरतें, राजनीतिक अ याय के तीरो से बिंधी हुई औरतें और ये मरे सारे गीत दद भरे थे। पर जुलफिया मेरे जीवन की पहली औरत है, जिस के मुह की आर देख मैं मुहब्बत का गीत लिख सकती हूँ।

उस समय तो नही पर तु दूसरे दिन जब समरक द विश्वविद्यालय मे मैं जुलफिया की उज़्बेक कविता को पजाबी में पढ रही थी और जुलफिया मेरी पजाबी कविता को उज़्बेक में पढ रही थी, मैं ने दो देशो की, दो भापाओ की और दो औरतों दिलों की दोस्ती के बारे मे मुहब्बत की पहली कविता लिखी,

> चिर बिछुडी कलम जिस तरह
> जोर से कागज के गले लगी,
> इश्क का भेद खुल गया—
> एक पक्ति पजाबी मे
> एक पक्ति उज़्बेक मे
> तब भी काफिया मिल गया।

नाचते पानियो के किनारे एक शाम

साँझ की रोशनी मे भीगा हुआ तेरा बदन
आज मैं ने फिर देखा और आँख मे कुछ सँभाला
यह तेरा मरमरी बदन, यह मौसम की मखमली पोशाक
छाती की तरह धड़कता, गीत की तरह गुटकता
कुछ खिड़कियाँ बन्द हैं और कुछ खुली हुई
अभी पलकें झपककर कुछ बोली कुछ गुनगुनायी
मेहनत फल आयी, व दीयो की तरह जल रही
आशिक दिलो की दोस्ती का असूल बता रही,
सामने आकाश पर तेज हवाए चली
चाद बावरा हो गया और उस की जुल्फें बिखर गयी
मैं जीवित हू, जागती हू, नगमो म बसती
अफसानो मे बोलती, धरा का द्वार खटखटाती
इस जहाज ने आकाश के पैरो मे झाझरें डाल दी
तेरे हुस्न ने किस्मत के माथे पर झूमर लगा दिया !

स्तालिनाबाद से ताशकन्द आते कभी जुलफिया ने आधे आसमान मे यह कविता लिखी थी उस दिन जहाज की उड़ान ने आकाश के पाँवा मे झाझरें डाल दी थी, आज ताशकन्द से स्तालिनाबाद जाते हुए आधे आसमान पर मैं ने जुलफिया की इस कविता का अनुवाद किया और मुझे महसूस हुआ कि जैसे आज भी जहाज की उडान न आकाश क पावो मे झाझरें डाल दी हो।

मिर्जा तुरसन जादा, फातेह नियाजी, बाकी रहीम अब्दुस्सलाम देहाती, गुफार मिर्जा तथा और कितने ही ताजिकी लेखक हवाई अड्डे पर खडे हुए थे। सब को अपनी सलाम देते हुए मैं ने मिर्जा तुरसन जादा को कहा यह सलाम तो मेरा था, पर मैं एक और सलाम की कासद भी हूँ और यह सलाम जुलफिया का है, फैज के लफ्जो मे—

शायर सलाम लिखता है, तेरे हुस्न के नाम !

"एक सलाम जुलफिया का, दूसरे फज्र के लफ्जों मे, और तीसरा ऐसे कासद के हाथों—मेरा हाल क्या होगा ?" मिर्जा तुरसन जादा खुलकर हँसे।

नगर से लगभग बीस मील दूर पहाड के दामन मे कानदरा है। नदी के किनारे किनारे रास्ता जाता है। जब कभी नगर से ऊब जाते हैं, मिर्जा तुरसन जादा अपने एक और दोस्त मिस ईद मिश्ताकार का साथ लेकर इस दर्रे म चले जाते हैं। सारा दिन अपने हाथ से पकाते, खाते और लिखते हैं। आज वे इस जगह हम सब को ले गये थे।

यह एक हजार एकड से भी विस्तृत एक स्थान है जहाँ मैदानी और पहाडी वृक्षो को मिलाकर पहाड पर नये वृक्ष उगाने का प्रयोग किया जा रहा है। पहाड तथा जगल की छाती म एक बूढा कश्मीरी और नीली आँखोवाली उस की रूसी प्रेमिका—ये दोनो भी रहते हैं। गत बीस वर्षों से इस तरह दानो आशिकों ने अपने निवास के लिए यह स्थान चुना हुआ है। इस समय दोनों की उमर साठ साठ वष से ऊपर है। मद का चेहरा बडा हँसमुख और औरत की आँखें बडी चमकीली हैं। दाना घास के नीले फूल ताड लाये और शीशे की सुराही म नदी का ठण्डा पानी भर लाये।

'लिखारी घर हम राह मे छोड आय हैं, अब हम वहाँ जायेंगे।" मिर्जा ने कहा, 'ये लिखारी घर जिस नदी के किनार पर बन हुए हैं, उस नदी का नाम है वरजआब (नाचते हुए पानी)।

शीशे के बरामदोवाले ये सात घर हैं और आठवाँ घर सम्मिलित रूप स सगीतमय शामे गुजारने के लिए बाकियों स बडा और अलग से बना हुआ है। इस घर के बरामदे मे बहुत बडी मेज सजी हुई थी। बाहर टीन की छत के नीचे बडे बडे तीन चूल्हे बने हुए थे, जहाँ कुछ लेखक हाँडियाँ चढा रहे और पुलाव पका रहे थे।

अमन के, दोस्ती के और कलमा की अमीरी के नाम पर जाम भरते हुए मिर्जा तुरसन जादा ने कहा, "आज नगमा के पाँव लगाकर तुम ने जो पवत चीर लिये हैं कभी मैं ने भी इन पवतो को कहा था कि तुम राह मे कितने भी तन कर खडे रहो, मेरा सलाम तुम्हारे ऊपर से गुजर जायेगा।"

आज के युवक और बडे मकबूल शायर गुफार मिर्जा ने पास स कहा, "दिल की मुट्ठी म लाखो दोस्तियाँ समा सकती हैं, पर तु इतने बडे आकाश म एक भी दुश्मन की उडान नहीं समा सकती।"

कुछ थोडी दूर पहाड की कटाई हो रही थी। कभी कभी बारूद की आवाज से धमाका उठता था। मिर्जा तुरसन जादा ने कहा, 'पहाड का दिल कितना भी पत्थर क्या न हो, लावे को अपनी छाती म नही सँभाल सकता, आशिक का

दिल कितना भी दर्द से छलनी हुआ हो हिज्र की आग को सँभाल लेता है।"

'और कभी जो कुछ नहीं सँभाला जाता, वह कविता बन जाता है।" मैं ने कहा, सब ने इस का समर्थन किया और मैं ने फिर मिर्जा तुरसन जादा से कहा, "कभी जो कुछ आप से न सँभाला गया हो, और वह किसी कविता मे प्रवाहित हो गया हो, यह देखने का हमे अधिकार है।"

"तेरी इस तीखा फरमाइश की हम कद्र करते हैं और अपनी फरमाइश भी साथ मिलाते हैं—" पहले नियाजी और फिर सब ने इस सवाल को ऊँचा कर दिया।

"अमृता ने सवाल बडा गहरा डाला, परन्तु मुझे जवाब देना ही पडेगा।" मिर्जा ने कहा और कविता पढी—

उजबेक सुन्दरी! जरा देख
यह केवल मेरी भटकना नही
शौक तेरा इलहाम लाता है,
तेरे देश को सिजदा करता है—
काश मे एक रौदकी होता
तेरे हुस्न का नगमा लिखता
तेरी पाकदिली का गान करता,
रूह मे भीगा हुआ हर एक मिसरा
आज तेरे हुस्न के बराबर तुलता।

मिर्जा तुरसन जादा की कविता मे हम सब अभी खोये हुए थे कि गुफार मिर्जा ने कहा, "मैं ने अपनी नयी कविता मे बहार को कहा है कि तू कभी मान जाती है और कभी रूठ जाती है, पर हम अब धरती पर अपने हाथो से वह बहार ले आये हैं जो कि हम से रूठकर कभी नही जाती।"

बाकी रहीम ने बहार की बात को आगे चलाया और जवाब दिया, "इसी बहार को कायम रखने के लिए मैं ने बूढी उमर मे भी नया इश्क किया है और नयी नज्म लिखी है, चाँदवाली रात है।"

मिर्जा तुरसन जादा बहुत हँसे और कहने लगे, "बाकी रहीम के इतने मोटे शरीर से यह अन्दाजा मत लगाना कि इस के पास नजाकत नही है इस के शेरो मे नाजुक से नाजुक खयाल होता है"

'मैं अब क्या कहूँ—मैं तो शायर नही। मेरे नावलो ने मेरे लिए बडा नाम कमाया है, पर आज मेरा दिल कर रहा है कि काश मैं शायर होता" नियाजी ने कहा।

'नियाजी अपने लोगो का बहुत बडा उपन्यासकार है," मिर्जा तुरसन जादा ने एक मीठी चुटकी ली और कहने लगे, 'एक बार किसी को मिट्टी मे से सुगन्ध

आयी और वह मिट्टी से पूछन लगा सुगध तो फूलो से आती है पर तुझ मे सुगध कसी ? मिट्टी न जवाब दिया मैं गुलाब की झाडी के नीचे पडी हुई थी अत, नियाजी, आज तुम मे से भी शायरी की सुगन्ध आ रही है, क्योंकि तुम शायरो के कधो से जुडे बैठे हो—'

फिर सब ने मिलकर एक ऊँचा स्वर निकाला और एक ताजिक लोकगीत ने इन कन्धो को और जोड दिया

फूलों के इस आँगन मे
एक तू, एक मैं और एक शराब का प्याला
आज सारा जमाना खिला हुआ
बन्द कली की एक पोशाक
पर पत्तियो के बदन अलग-अलग हैं
तेरे और मेरे मन पर मुहब्बत की एक ही पोशाक।

ताजिक शायरो की आवाज मे पता नही क्या जोर था, आकाश के बादल हिल गये और बूदें पडने लगी।

"हम आज इस मिट्टी म दोस्ती का बीज डालते हैं। बूदें पानी देने आ गयी हैं।" मिर्जा तुरसन जादा ने कहा।

"अमृता एक शेर ?" नियाजी न फरमाइश की।

"मैं जानती हूँ कि यह एक नामुराद इश्क़ के बीज हैं, पर बीज आखिर बीज है, यह फल भी सकते है।" मैं ने जवाब दिया। सभी के स्वर म फिर एक *ताजिक लोकगीत भर गया*

मैं राख दिखायी देता हूँ
पर इस राख म आग दबी है,
मैं किसी को दुखाता नही
मरा एक ही दोष है,
मैं न तुम्हे प्यार किया
और अब इस आग को
राख म छिपाये फिरता हूँ।

बादल गरजे और वर्षा तीखी हो गयी। ताजिकी शायरो म एक उजबक युवक भी था, कहन लगा, 'हिज्र की घडी नजदीक आ गयी, आकाश जोर-जोर से रोन लग पडा है।"

बिजली चमकी और मिर्जा तुरसन जादा ने कहा, "एक सौदागर घोडे पर नमक लादकर ले जा रहा था। मह बरसा और नमक गल गया। बादल गरजे और घोडा डरकर भाग गया, फिर बिजली चमकी तो सौदागर कहने लगा, 'हे आसमान की बला, पहले तू ने मरा नमक ले लिया, फिर घोडा। और अब हाथ

मे दिया लेकर मेरी तलाश मे आयी है ?" आज का मेह बादल और अब ऊपर से बिजली "

सारे मेज पर हँसी की वर्षा होने लगी, उजबेक युवक ने पानी की तरह विह्वल ऊँचा स्वर निकाला और एक हिन्दुस्तानी गीत छेड़ा "तू गगा की मौज, मैं यमुना की धारा " और फिर उस ने मुझ से पूछा, "मैं न सुना है कि आप के देश मे एक आशिको का दरिया है, उस का नाम क्या है ?"

"चनाव।"

"स्तालिनाबाद की इस नदी का नाम है 'वरजआब' और दोनो का काफ़िया मिलता है।" मिर्जा तुरसन जादा न कहा, और पानियो का नाच और तीखा हो गया।

पैंतालीस वर्षीय शहर यिरेवान

'पत्थर जैसी छाती मे फूल जैसा दिल' आरमीनिया की राजधानी यिरेवान को देखकर उस दिन कई बार ये शब्द मेरी जबान पर आये। सारे का सारा शहर दूधिया और स्लेटी पत्थरो की ऊँची-ऊँची इमारतो का बना है—वास्तु कला के कई नमूनो मे। इस शहर की रचना चाहे दो हजार सात सौ पचास साल पुरानी है, पर इस का अस्तित्व भयानक हमलों से बहुत बार बन-बनकर मिटा है, मिट मिटकर बना है। आज से पचास साल पहले 1915 मे यह घमासान युद्ध का मैदान था। टर्की ने इस के अस्तित्व को अपनी तरफ से मानो खत्म ही कर दिया था, पर 1921 म इस ने सोवियत शक्ति के साथ अपनी शक्ति जोडकर शांति और सुरक्षा का मार्ग तलाश कर लिया। कई छोटी छोटी पहाडियो के पहलू मे यह शहर इस तरह फैला है कि किसी भी पहाडी पर खडे होकर किसी भी ढलती शाम के वक्त इस का जगमग करता हुआ सौन्दर्य देखा जा सकता है। पत्थर की इमारतो के इस नये पैंतालीस वर्षीय शहर की बाँहो में जगह जगह फूलो की क्यारियाँ और पानी की झीलें बनी हुई हैं। फूलो की क्यारियो और पानी की झीलो के किनारे कोई पचास कैफे होगे, जिन मे से कई को बहुत सीधे सादे शब्दो म 'शीशे के कमरे' कहा जा सकता है। वास्तु कला के ये प्रयोग शायद इसलिए भी बहुत प्यारे हैं कि आरमीनिया की वास्तु कला का अतीत बहुत पुराना है। दुनिया का सब से पहला चर्च आरमीनिया म बना था—चौथी शताब्दी के आरम्भ मे। और आठवी शताब्दी मे फ्रांस ने आरमीनिया का एक वास्तुकार बुलाकर अपने देश म एक चर्च बनवाया था।

आरमीनिया के लोगो के पास अपनी विरासत को सँभालने और उसे प्यार करने के अजीब तरीके हैं। मुश्किल घडियों मे ये लोग दुनिया के बहुत सारे हिस्सो मे बिखरते रहे हैं, पर एक सचाई सब जगह पायी गयी है कि ये लोग जहा भी गये हैं, इन्होने सब से पहला काम उस देश मे जाकर यह किया है कि अपना छापाखाना स्थापित कर अपना साहित्य हर वक्त मुद्रित किया (छापा)

और उसे सभाला है। पुरालेखागार सग्रहालय मे जहाँ इ होने विद्वान् माशटोटस की यादें सँभालकर रखी ह जिस न पाँचवी शताब्दी म आरमीनियन लिपि बनायी थी, वही तामिल भाषा म लिखे इन के इतिहास क व पष्ठ भी सँभालकर रखे हुए हैं जो इ होने कभी दक्षिण भारत मे वसन के समय लिखे थे। वतमान शहर का श्रृगार इ होंने अपन दाशनिको और लेखका की मूर्तियो से किया है। सयातनोवा इन का बहुत प्यारा कवि हुआ है। पेड पौधो और फूलो से ढकी एक बगिया म सफेद पत्थर की दीवार बनाकर इ होंने सयातनोवा की बहुत खूबसूरत—बहुत प्यारी मूर्ति बनायी है, जिस के नीचे उस की कविता की एक पक्ति लिखी है 'मैं न इस धरती का वह पानी पिया है जो किसी न नहीं पिया। मेरा अतीत रेत का नही, मेरा अतीत एक चट्टान का है।'

यिरेवान के सब से बडे होटल 'आरमीनिया' मे उस रात जो सगीत बज रहा था, इन के एक कवि की रचना है 'ऐ श्वेत पक्षी! तुम किस देश स आय हो? तुम उडते उडते मरी खिडकी के सम्मुख बैठ गय हो, तुम निश्चित ही मर देश से आये होगे। आओ मेरी इस खिडकी म बैठ जाओ, और मुझे मरे देश का हाल सुनाओ।' यह गीत कामितास ने अपन देश से दूर फ्रास मे रहते हुए लिखा था।

इटली के साथ इस देश की दोस्ती दो हज़ार साल पुरानी है। इस दोस्ती की निशानी, एक बहुत बडे पत्थर म तराशे दो हाथ—एक इतालवी और एक आरमीनियन!—कुछ पहले इटली ने इस देश को उपहारस्वरूप भेजे थे। यह निशानी—दो हाथ—आज इ हान बहुत ही सु दर बगिया म सजाकर रखे है।

"हमारी दोस्ती हि दुस्तान के साथ भी उतनी ही पुरानी है। क्या मालूम हमारे परदादा, लकडदादा के दादा कभी एक ही होग। तभी ता आज हम न तुम्हे आरमीनियन स्त्री समझ लिया था।", मेरे मेजबान हँसकर मुझ से कह रहे थे। उस दिन सचमुच ऐसा ही हुआ था कि सवेरे हवाई अड्डे पर मेर मज़बान जब मुझे लन आये तो मुझे देखकर भी उ होन मुझे नही पहचाना। मुझे उ होन अपने ही देश की कोई आरमीनियन स्त्री समझ लिया और हि दुस्तान से आनवाली परदशी स्त्री को तलाश करने के लिए कितनी देर तक वे चारो तरफ देखते रह।

'तुम्ह कभी किसी देश के लोगा मे कोई खास तरह की समानता लगी है?' तबिलिसी म बरतानिया के एक लेखक न मुझ से पूछा था और मैं न उन्ह जवाब दिया था, इस तरह मुझे किसी दश म कभी नही लगी, पर कई बार कई किताबो के कई पात्रा म जरूर महसूस होन लगती है" और उसी दिन आरमीनिया क अजाबी शहर के वीरान कान मे एक पहाडी पर बनी आर्क क बीच खडे हुए मरी आँखें आस पास का कुछ समेटकर अपने अ दर जाडन लग

गयी थीं। पैरो मे मोह की एक कँपकँपी सी उतर आयी थी—यह शायद सामने बर्फ से लदे हुए पहाड की ठण्ड थी। सामने दूरी पर एक बडा सा पहाड, इस आर्क की बाँहों मे लिपटी हुई किसी चीज की तरह हैं, शायद चीज की तरह नही, एक खयाल की तरह बाँहो के बीच भी है और बाँहों से बहुत दूर भी। नजदीक के पहाडा पर कोई पेड नही है, उन के शरीर की नग्नता उन की अपनी ही बाँहो मे लपेटी हुई लगती थी। हलकी सी धूप उन के बदन को छूती और काँपती-सी महसूस हो रही थी

कुछ दूर तेरहवी सदी का एक चच है—एक ऊँचे शिखर को काट तराशकर बनाया हुआ चच। यह रविवार था, इसीलिए लोगो का एक मेला सा यहाँ लगा हुआ था। छोटी छोटी ढोलकियाँ और बाँसुरियाँ बिक रही थी, बडे और लाल बेरो की तरह किसी फल के हार पिरोकर लडकियाँ उन्हे बेच रही थी। चर्च के बाहर कई लोग भेडो की बलि देने के लिए हाथ मे चाकू पकडे खडे थे और कई लोग चच के अन्दर मोमबत्तियाँ जलाकर कम्पित होठो से क्रॉस को चूमते हुए प्राथना कर रहे थे। एक स्थान पर चच के घेरे मे एक छोटा सा चश्मा है। लोग उस मे सिक्के फेंकने मन्नतें मानते और चुल्लू भरकर उस का पानी पी रहे थे। मैं सब कुछ एक मेले की तरह देख रही थी—वशी की आवाज मे भेडो का लहू, मनुष्य के झुके हुए माथे का विश्वास एक ऊँचे से चबूतरे पर एक छोटी-सी सीढी पत्थर की एक कन्दरा (गुफा) म जाती है इस के प्रति मेरा एक मोह सा हो गया था और मैं ने झिझकते हुए किसी से पूछा था, "मैं इस चबूतर पर चढकर, उस पत्थर की सीढी को लाँघकर उस कन्दरा मे जा सकती हू ?" "शायद नही" मैं ने स्वय ही झिझककर कह दिया था, क्योंकि मैं देख रही थी कि उस चबूतरे को कई लोग होठो से चूम रहे थे। पर नजरें कन्दरा के उस दायरे मे मे बाहर नही निकल रही थी और मुझे जवाब मिला था, "उस कन्दरा मे दीया जलाकर हमारे लेखक कभी इतिहास लिखते थे और प्राचीन दस्तावेजा, पाण्डुलिपियो की नकल उतारते थे। तुम इस चबूतरे को लाँघकर उस कन्दरा मे जितनी देर चाहो, बैठ सकती हो ' सोच रही थी कि किताबो के पात्र ही नही, कोई कोने किनारे भी इस तरह के होते हैं जो कि अजनबी देश मे बरबस ही कुछ अपने से जान पडते हैं।

दुनिया का सब से पहला चच चौथी शताब्दी के शुरू के वर्षों मे बना था, समय के साथ इस का ढाँचा अपना आकार प्रकार बदलता रहा है, पर इस के पैरो के नीचे जमीन वही है। इस जमीन की मिट्टी ने पता नही मनुष्य की कितनी प्राथनाएँ सुनी हैं, पर इस के कानों के पास कोई बहुत बडा धैर्य लगता है लोग हजारा की गिनती मे मिलकर आज भी प्राथनाएँ कर रहे हैं और यह बडी धीरज के साथ चुपचाप उन्हें सुन रही है। यहाँ हर समय मोमबत्तियो की रोशनी काँपती

रहती है, पता नहीं लोगों की प्रार्थनाओं के भार से या मिट्टी के धैर्य को देखकर।

इस चर्च के सब से बड़े पादरी की इस पदवी के लिए उस दिन ग्यारहवीं बरसी थी। प्रार्थना समाप्त हुई तो मैं मशालों की रोशनी में एक पालकी के आगे आगे चलते पादरी के प्रभाव की ओर देखती रही—माथे पर चमकीला ताज, गले में मलमल का चमकीला चोगा, पैरों में मलमल के स्लीपर और हाथ में मोतियों से जड़ित क्रॉस। छोटे पादरियों के गलों में काला वेश और काले वेशों पर पड़े हुए ज़री के चमकीले चोगे। सिर पर काले कपड़े और गले में सोने के क्रास।

संगमरमर की सीढ़ियां चढ़कर एक बहुत बड़ा हॉल है—सिंहासन पर सब से बड़ा पादरी बैठा हुआ था—बहुत गम्भीर चेहरा, बहुत गम्भीर नजर। सामने दो कतारों में शेष सारे पादरी खड़े हो गये और एक एक कर के देश के इतिहास में इस गिरजे की देन को दोहराते हुए कुछ विद से पढ़ते रहे और फिर बारी-बारी आगे होकर क्रॉस को चूमते रहे। बहुत से लोग आस पास खड़े थे, नम्रता के साथ झुके हुए। मुझे कुरसी पर बैठने के लिए कहा गया—मेरे परदेशी होने का लिहाज़। बड़ा महरबान सलूक था, पर सारा वातावरण किसी इतिहास का वह हिस्सा लगता था जिस हिस्से में खड़ी हुई भी मैं उस हिस्से से बाहर थी—बिलकुल अजनबी और अकेली। कमरों के बल्ब जलते थे और बुझ जाते थे—कई शताब्दियां मानो मिलकर एक स्थान पर खड़ी हो गयी हों और इन शताब्दियों में चौथी शताब्दी भी थी और बीसवीं शताब्दी भी। मानवीय हृदय की आवश्यकता के इन सामने दीखते पृष्ठों को मैं पढ़ने की बहुत कोशिश करती रही, पर इस पृष्ठ का हर शब्द मेरे लिये उस विदेशी सिक्के की तरह था, जिस को मैं अपने मन की सीमा में आकर न ही खर्च कर सकती थी, न ही बदल सकती थी। घबराकर मैं ने पृष्ठ पलटा, पर अगला पृष्ठ अभी खाली था। सोच रही थी इस अगले पृष्ठ पर पता नहीं कोई कलम कब कुछ लिखेगी और जिस के शब्द उस सिक्के की तरह होंगे, जो कि मेरे जैसे अजनबी मन के देश में भी खर्च किये जा सकेंगे

पर ऐसा सोचना भी शायद बहुत ठीक नहीं है—विदेशी सिक्कों की कीमत अपने स्थान पर होती है। मजहबी मन के शासन में चलनेवाले सिक्के, मैं या मेरे जैसे कुछ लोग यदि खर्च नहीं कर सकते तो न सही—हरेक के लिए उन्हें खर्च करना ही क्यों आवश्यक है? उस दिन शाम के वक्त अमरीका में रहता एक आरमीनियन मिला था, पचीस साल के बाद अपने देश लौटा था वह भी कुछ दिनों के लिए। शहर की हर गली का मोड़ वह परदेशियों की तरह देख रहा था, पर वह मेरे जैसा परदेशी नहीं था। नयी इमारतें और उस के माथे पर लगी रोशनी की झालरें उस के लिए नयी थीं, पर इन इमारतों की बुनियादों

मे जो कुछ था, वह उस के लिए बडा पुराना था, बडा अपना था। "1915 के क़त्लेआम मे अपने सारे खानदान से मैं अकेला बचा था " वह बता रहा था और फिर उस की खामोशी मे युद्ध की भयानकता सिसकने लगी थी।

एक ऊँची पहाडी पर खडे होकर उस ने जगमग करते शहर को देखा, मैं ने भी देखा, और फिर हम ने अपने यिरेवानी दोस्त से पूछा था, "इस देश की सीमा अब कहाँ तक है?"

"वहाँ तक, जहाँ तक रोशनी फैली हुई है। दूर जहाँ अंधेरा शुरू होता है, वहाँ से टर्की की सीमा शुरू होती है।"

इस उत्तर मे एक स्वाभिमान था—खून की नदियो को तैर तैरकर तलाश किया हुआ स्वाभिमान, पर मैं देख रही थी, इस स्वाभिमान के अर्थ, जो कुछ मेरे लिये थे, अमरीका से आये आरमीनियन के लिए इस के अर्थ उस से बहुत गहरे थे। अर्थों का सिक्कों की तरह सभी के लिए एक जैसा होना शायद जरूरी नही, सम्भव भी नही

खामोशी का गीत

टॉलसटाय की कबर पर से लाये गये कुछ पत्ते अब भी मेरे सामने पडे हैं। इन का हलका पीला रग एक धीमे से स्वर की तरह है। मैं अब भी मन को एकाग्र करूँ तो यह स्वर धीमे धीमे मेरे कानो में गूजने लगता है।

मास्को से दो सौ किलोमीटर का लम्बा रास्ता लम्बे पेडो से घिरा हुआ था। यह अक्तूबर का महीना था। पेडो के पत्ते सुनहरे पीले सोने के चौडे पत्तो की तरह पेडो से झूलते लगते थे। कई जगह पेडो के तने सफेद थे—चाँदी की तरह। और आखो को एक परी की कहानी का भ्रम होता था जसे चादी के पेडो पर सोने के पत्ते उगे हो।

टॉलसटाय की निजी जमीन की सीमा लाघते ही परी कहानी का सारा रूप बदल गया। हवा तेज हो गयी थी और कई एकड तक धरती पर उगे हुए ऊँचे पेडो से पत्ते इस तरह झर रहे थे जैसे तालबद्ध किसी आकाश गीत के स्वर धरती के कानो म गुजरित हो रहे हो।

टाल्सटाय के घर का हर कमरा उसी तरह है, जसे 1910 मे टालसटाय के आखिरी दिनो मे था। मा के उस काले दीवान से लेकर जहाँ टॉल्सटाय का ज म आ था, बाईस हजार किताबो की लायब्रेरी और उस के साथ लगा हुआ वह कमरा, जिस मे उस की मेज भी है वसे का वैसा ही पडा है जहाँ टालसटाय ने 'वार एण्ड पीस' लिखा था। सोने के कमरे मे पलग के पास टॉलसटाय की सफेद कमीज टँगी हुई है। एक कँपकँपी की तरह मुझे याद है कि मैं इस कमीज के पास खडी हुई थी टॉलसटाय के पलग की पट्टी पर एक हाथ रखकर— खिडकी मे से हलकी-सी हवा आयी और कमीज की बाँहें हिलकर मेरी बाँह को छू गयी। एक पल के लिए समय की आगे बढती सुइयाँ पीछे पलट पडी थी, इतनी तेजी से कि 1966 अपनी पलक झपककर 1910 बन गया था और मैं ने देखा कि गले मे सफेद कमीज पहनकर अपने पलग की पट्टी पर हाथ रखकर टालसटाय खडा है।

यह पल देखा जा सकता था, पकडा नही जा सकता था। और यह इतना अकेला पल था कि और कोई पल इस के साथ मिलाया नही जा सकता था। खून की हरकत मेरे माथे का कनपटियों मे बज रही थी। पर सामने समय के अधेरे का एक दरिया बह रहा था और यह पल उस दरिया मे एक छोटे-से दीये की तरह अभी अभी दीखा था और अभी ही लोप हो गया था। खून की हरकत ने मेरे माथे की कनपटी मे से गुजरकर मेरी आँखो पर बडा जोर डाला, पर अब मेरी आँखो के आगे सिर्फ ठण्डे और मटमले अधेरे का एक बडा दरिया बह रहा था। फिर मेरे खून की हरकत ने शान्त होकर देखा—कमरे मे कोई नही था और सामने दीवार पर पलग की पट्टी के पास सिफ एक कमीज टँगी थी।

कितनी ही पगडण्डियाँ पडों की घनी गुफाओ मे जाती हैं। एक गुफा मे टॉलसटाय की क़बर है। चारो तरफ खामोशी थी पर लगता था कबर की खामोशी इद गिद की खामोशी से टूटा हुआ एक टुकडा था। अपने आप मे पूर्ण और किसी भी आवाज के अस्तित्व से बेनियाज—पडों से झरते पीले पत्तो की आवाज से भी।

मैं इद गिद की खामोशी का हिस्सा थी। मेरी हरेक साँस पेडा से झरते हुए पत्तो की तरह भर रही थी। मेरी झरती साँसो मे भी एक गीत था—शायद एक कारलीना का

बडी दूर बैठे कुछ लडके पत्तो को पिरो-पिरोकर सिर के सुनहरी ताज बना रहे थे। लडकियाँ पत्ता की पेटियाँ बनाकर अपनी कमर मे बाँध रही थी। ये सारे पत्ते टॉलसटाय की किताबो के वरक (पन्ने) लगने लगे, जो पेडो से थरकर धरती की ओर धरती के लोगो की झोली मे गिरते, धरती को जरखेज करते और फिर पेडो पर नये सिरे से उगते।

यह झरने और उगने का गीत था, जो मैं ने उस खामोशी म सुना था—खामोशी को किसी भी तरह तोडता या ढाता नही, पत्तों मे पत्तो के रग की तरह बसा हुआ खामोशी का अपना हिस्सा।

चुप की बन्द गली

मन बहुत अच्छी रौ मे था, पजाबी टप्पे की लय पर एक टप्पा मुह से निकल रहा था—

सुका पत्त वे तम्बाकू दा
वही वरयाँ दी होई बावला
मेरे हुस्ना दा रग सावला

कल आखरिद से मसेडोनिया की राजधानी स्कोपिया जाते हुए रास्ते में जितने भी गाँव आये थे, सब घरो के आगे तम्बाकू के पत्ते सूखने के लिए डाल रखे थे। पत्तो का रग सूर्य की धूप पी पीकर ताबे जैसा हो रहा था। धरती के इस टुकडे को स्वतन्त्र हुए कोई बीस बरस हुए हैं और स्वतन्त्रता बीस बरसो की युवती की तरह, पहाडो की हरियाली मे, मक्का की सुनहरी बालियो म, और सेबा व आड्ओ से लदी टहनियो मे झूमती दिखती है। सिरो पर लाल पटके बाधे कई लडकियाँ सडक के किनारे सुख तरबूज बेच रही थी। इस सारी वादी का नाम भी इस के बाबल क नाम पर है—'टीटो वैलेस। उसी सुबह इस के लागा की आरामगाहें देखकर आयी थी—छोटे छोटे टापुओ मे बनी आरामगाहे। प्यारा सा रश्क भी कर रही थी, और खुशी भी।

उसी सुबह सुना था कि आज के लेखक मिलकर एक छोटा सा शहर बनाना चाह रहे हैं—अन्तर्राष्ट्रीय लेखक शहर। एक पत्र-प्रेरक मुझ से पूछ रहा था कि यह शहर कसा बनाना चाहिए? जवाब दिया था—पत्थरो और फूलो के सुमेल से। पत्थर जिन्दगी की हकीकतों की नुमाइन्दगी करेंगे, और फूल मनुष्य की कल्पना की।

मन की उसी रौ मे थी कि एक बहुत बडे सरकारी अफसर ने हँसकर मुझे कहा था, "आप ने अपने देश म एक औरत का प्रधान मन्त्री चुनकर हम मर्दों की मर्दानगी को एक ललकार दी है।' और मैं ने हँसकर जवाब दिया था, "मैं खुश हू कि हम ने आप को ईर्ष्या का कोई मौका दिया है"

मेरे पास आखरिद से बेलग्रेड पहुँचने के लिए हवाई जहाज का टिकट था — टिकट पर तारीख और हवाई जहाज के चलने का वक्त लिखा हुआ था, पर यह पता नहीं कि टिकट देते समय किस ने और किस तरह यह लिख दिया था, क्योंकि उस दिन आखरिद से कोई जहाज बेलग्रेड नहीं जाता था। आखिर आखरिद से स्कोपिया पहुँचने के लिए कार का इंतजाम हुआ, और फिर अगली सुबह स्कोपिया से हवाई जहाज से बेलग्रेड पहुँचने का। यूथोपिया का एक शायर अबरा जम्बेरी और यूथोपिया का प्रिंस महातमा सल्लासी कार में मेरे साथी थे।

"नज्मा का मेला तुम्हें कैसा लगा ?" यूथोपिया का शायर मुझे पूछ रहा था, और मैं कह रही थी, "किसी भी जबान की कोई नज्म मुझ तक नहीं पहुँची, पर मेरे लिए इस मेले की तीन रातें इस तरह थीं जैसे मैं इस शहर में एक नहीं दो झीलें देख रही हूँ। एक नीले पानी से लबालब और दूसरी इनसानी आवाजों और मानवीय जज्बातों से छलकती "

और वह हंस रहा था कि इनसानी दिल कई बार कैसे एक सा सोचते हैं। उस ने उस रात एक नज्म लिखी थी, जिस का भाव था कि दरिया के पुल पर खड़े होकर जब कई देशों के शायर नज्में पढ़ रहे थे तो उसे लगा था कि एक दरिया पुल के नीचे बह रहा था, और एक दरिया पुल के ऊपर !

इस बड़ी साँझी खुशगवार रौ में हम सब थे और कार का ड्राइवर भी। उस ने सिर पर एक सफेद टोपी पहन ली और मुझे कहने लगा, "आज मैं गांधी टोपी पहनकर कार चलाऊँगा। हिंदुस्तान को मेरा सलाम !" और उस ने अपनी जबान में एक गीत गाया, जिस का भाव था मेरे सूरज ! मेरे महबूब ! मेरी रूह की ताकत के लिए मुझे थोड़ी सी धूप दे दे '

कार का मालिक एक मेहरबान दोस्त भी था और अलबानिया जबान का विद्वान् भी। मसेडोनिया की छाती में एक दर्द है कि उस का हिस्सा बलगारिया के अधीन है और एक हिस्सा अलबानिया के अधीन। अलबानिया से एक लम्बी अदावत चली आती है। वहाँ बसते कुछ मैसेडोनियन लोग अब भी वहां हैं, पर कुछ इस ओर आ गये हैं। यह हमारा अलबानिया जबान का दोस्त कोई बीस साल हुए इस ओर आ गया था, पर इस के माँ बाप अब भी वहाँ हैं, और उन्हें देखे इसे बीस साल हो गये हैं। "जाने अब वे कितने बूढ़े हो गये होंगे " उस ने कहा और सब के मन की रौ एक मोड़ पलट गयी।

यूथोपिया के प्रिंस ने अभी तक अपने बारे में कुछ नहीं बताया था। रास्ते में एक जगह खड़े होकर बीयर का एक एक गिलास पीते हुए उस के होंठ छलक पड़े, "तुम शायर लोग बड़े खुशनसीब हो। हकीकत की दुनिया नहीं बसती तो कल्पना की दुनिया बसा लेते हो मैं बीस साल वायलिन बजाता रहा हूं, साज के तारों

से मुझे इश्क है। पर जग के दिनो मे मेरी दायी बाह पर गोली लग गयी। अब उस हाथ से मैं वायलिन नही बजा सकता मैं किसी क-सट (गोष्ठी) मे नही जाता क्योकि वहा किसी वायलिन की आवाज सुनकर मुझ से अपना 'स्वय' झेला नही जाता सगीत मेरी छाती मे जमा हुआ है "

सगीत के आशिक़ हाथो को गोलियाँ क्यों लगती हैं ? इस का जवाब किसी के पास नही। तवारीख चुप है। हम भी चुप थे। और मन की रौ चुप की एक ब-द गली की ओर मुड गयी

एक गीत का जन्म
एक अवस्था का जन्म

खलील जिबरान ने एक दिन अपने हाथ म पकडा हुआ जाम अपने माथे से भी ऊपर उठाया और फिर मेरे नाम पर उस ने जाम म से एक लम्बा घूट भरा। जानती हूँ कि मेरी इस बात मे अभिमान की गध आती है, पर वास्तव मे यह स्वाभिमान के रस मे भरे हुए अगूरो की खुशबू है, जो पक-पककर शराब की घूंट की-सी तीखी गध बन गयी है।

खलील जिबरान ने अपने जाम मे से यह घूट भरते हुए कहा था, "मैं अपन हाथ का जाम अपने सिर से भी ऊपर उठाता हूँ, और फिर होठो से लगाकर एक लम्बा घूंट उन के लिए भरता हूँ, जो अपनी जिन्दगी के जाम को अकेले पीते हैं।' सो उस ने यह घूट मेरे नाम पर पिया था, आप के नाम पर पिया था—आप सब, जो अपने जिन्दगी के जाम को अकेले पी रहे हैं।

मुझ म इस अपनी प्यास के लिए हजार शिकवे जागे होगे, आप न अपनी इस प्यास को हजार बार कोसा होगा, पर खलील जिबरान मुझ स और आप से इसीलिए बडा है कि वह इस प्यास का शुक्र कर सका। 'अपन जाम को अकेले ही पीना, भले ही आप को इस मे से अपने खून का और आँसुओ का स्वाद आये। और प्यास की इस सौगात के लिए जिन्दगी का शुक्र करना। क्योकि इस प्यास के बिना आप का दिल उस सूखे हुए समुद्र का किनारा बन जाता था जिस मे न कोई गीत होता है, न कोई लहर।'

यह समय जिन्दगी के बहुत से रास्तों से गुजरने के बाद आता है। आप की और मेरी तरह खलील जिबरान ने वे पहले वक्त भी देखे थे, 'कभी वह समय था जब मैं ने मनुष्यो का साथ चाहा था, उन के साथ मिलकर दावतें सजायी थी, और फिर उन के जाम से अपने जाम को टकराया था, पर वह शराब मेर माथे की नाडियो मे नही पहुची। वह शराब मेरी छाती मे नही लहरायी। वह

केवल मेरे पैरो तक ही उतर सकी थी। मेरी प्रतिभा सूखी रह गयी थी। मेरा मन ढका रह गया था।'

जिस के पास दिल की दौलत होती है, उस दौलत के न खर्च जाने का दद केवल वही जान सकते हैं। खलील जिबरान के इस दर्द ने कहा था, 'मेरी आत्मा अपने ही पके हुए फल के भार से झुकी हुई है। क्या एसा कोई नही जिसे वडी भूख लगी हो, वह आये, अपना व्रत तोड द, इस फल को चख ले और मुझ इस भार से हलका कर दे।'

इस दद की जो जलन मैं ने और पाल पॉटस ने देखी है, उसे पढते हुए लगता है कि लिखनेवाले ने तो क्या, अगर पढनेवाले ने भी इस आग को कई वष अपने अग सग न रखा हो, तो वह इस की पहली लपट से ही झुलस जाये। यह रोशनी की वह दीवानी तलाश जिस के अधे मोडो से हज़ारो के पैर टकराये हैं, और वे निराशा की, शिकायतों की, सनक की या मौत की गहरी खाइयो मे जा पडे हैं। यह केवल कभी-कभी ही होता है कि एक बीमार और रोऊ रोऊँ करता बालक बडा होकर राजेन्द्रसिह बेदी बन जाता है, मा की ममता के लिए तरसा हुआ एक बच्चा बालजाक बन जाता है, गरीबी और यातना के झक्झोरे खाता हुआ एक लडका गोर्की बन जाता है। यह दद जब सृजनात्मक हो जाता है तो करामाती बन जाता है और स्वय को पहचानते पहचानते इनसान पॉल पाट्स बन जाता है खलील जिबरान बन जाता है।

पॉल पॉट्स ने जिस औरत से मुहब्बत की, उस ने पॉल को पहचाना नही था। न पहचाने जान के दद ने पॉल को एक जनून दे दिया कि वह अपन मा की खूबसूरती को ऐसे शिखरो की ओर ले जाये कि जब कभी वह औरत जान या अनजाने ही उस खूबसूरती की ओर देखे तो उस के अन्दर पॉल के दद जसा ही एक दद जाग उठे, कि उस ने ऐसे आदमी को पहचाना नही था। परो से य रास्ते बाँधकर पॉल सारी उम्र उस शिखर की ओर चलता रहा और चलत-चलते वह जो कुछ अपने से बातें करता रहा, आज वही बातें दुनिया भर के आशिको का वेद बन गयी हैं, ... बन गयी हैं

"जब त[illegible] को [illegible]
इनकार
मैं ने चो
तुम्हारे [illegible]
अपन

उस दिन हमारी भाषा के शब्द भी
कराह रहे थे,
जिस दिन मैं ने तुम्हें अलविदा कही।

जैसे हमारी तवारीख दो हिस्सों में बँटी हुई है
ईसा के जन्म से पहले, और ईसा के जन्म के बाद
मेरी जिन्दगी भी दो हिस्सों में बँटी हुई है
तुम्हें देखने से पहले, और तुम्हें देखने के बाद।

एक दिन मैं ने गली में मौत को देखा था।
वह बिलकुल इस जिन्दगी जैसी है,
जो जिन्दगी मैं तुम्हारे बिना जी रहा हूँ।

ईश्वर! लोग तुझे करामाती कहते हैं
क्या तुम इतना नहीं कर सकते
कि मेरे दिल की खूबसूरती में से
एक चुटकी भर निकाल लो
और वह चुटकी मेरे जिस्म में डाल दो।

तुम्हें फिर से देखना ऐसा होगा
जैसे अन्धा होने के बाद कोई आँखों को पा ले।

अगर तू मेरे साथ चलती
मैं सारी उम्र अपने मन की अमराइयों में
तुम्हारा हाथ पकड़कर चलता रहता।

माइकेल ऐंजेलो जब किसी खूबसूरत पत्थर को देखा करता था तो उस की आँखों में बैठी हुई तसवीर आँखों में से उतरकर सामने पत्थर पर जा बैठती थी, और जिस की ओर देखते-देखते उस के हाथों में पकड़ी हुई छेनी उतावली हो उठती कि वह इस तसवीर के आसपास लगा हुआ पत्थर छील दे ताकि वह प्रत्यक्ष होकर सब को दिखायी देने लगे। इस तरह के इश्क से माइकेल ऐंजेलो पत्थरों को गढ़ा करता था, पॉल पाटर्स ने इस तरह के इश्क से अपनी शख्सियत को गढ़ा।

एक बड़ी छोटी सी बात है। जिन दिनों जंग छिड़ी हुई थी, दियासलाई

की डब्बिया नही मिलती थी । पाल ने एक दुकानवाले का कुछ पैसे पेशगी देकर कुछ डब्बिया सुरक्षित करवा ली थी । एक दिन जब वह अपनी डब्बिया लेकर लौटने लगा तो एक औरत बडी जरूरत से आयी और दुकानवाले से एक डब्बी मागने लगी । दुकानवाले के पास सचमुच ही और डब्बी नही बची थी । औरत का मुह उतर गया । पॉल ने अपनी जेब से एक डब्बी निकाली और उस औरत को दे दी । औरत जवान थी, खूबसूरत थी, पर जब वह डब्बी लेकर लौट पडी तो पाल ने उस लौटती औरत की पीठ की ओर भी न देखा, ताकि जाने या अनजाने उस औरत की खूबसूरती का सराहता वह अपनी डब्बी की कीमत न वसूल कर रहा हो । यह एक छोटी-सी बात है, पर इतना बारीक खयाल एक बडे कलाकार को ही आ सकता है ताकि उस के व्यक्तित्व के बुत मे ज़रा सी कसर भी न रह जाये ।

एक वह समय था जब मैं ने 'कम्पन' नज्म लिखी थी

धरती को आज व्रत तोडना है
दिल का थाल कैसे परसू
गीतो का धान कूटते हुए
कांपन लगी ओखली ।
किस्मत न है रुई पिंजाई
ज्या ज्यो चरखा गूज सुनाये
कांप रही है प्राण जुलाहिन
काप रही है तकली ।

आज गगन की सीढी कापे
तारे उतरे एक एक कर
मन के किन महलो म सहसा
मची हुई है खलबली ।

किस पापी ने तीर चलाया
इश्क का जगल सहम गया है
डरती और
यादो की

मुझे याद है कि इस
पढन लग गयी थी, पर
था । और मैं
कहा था "

कभी फिर सही।" मैं गिरने की हुन्नर म थी। मुझे किसी से कोई शिक्वा नहीं था, अपनी प्यास से शिक्वा था।

दो वर्ष बीत गये, मन की हालत कुछ इस तरह ही रही

रात जैसे पीतल की कटोरी है
चाँद की सफेद कलई उतर गयी

आज कल्पना कसरा गयी है
और सपना कड़वा गया है।

इश्क की देह ठिठुरती जाये
गीत का कुरता कसे सीय

ख्यालों का टाँका खुल गया है
कलम की सुई टूट गयी है।

आत्म-परिचय का यह वही लम्बा रास्ता था जिसे पॉल पाट्म भी काट रहा था

तू ने इसलिए यह शराब न पी
कि गिलास सुन्दर नहीं था।

उस औरत की उपस्थिति मे
जिसे तुम प्यार करते हो
ईश्वर इस धरती पर विराजा लगना है
पर अगर वह औरत कभी तुम्ह प्यार करती हो
तो क्या होता है, यह मुझे पता नहीं—
क्योंकि मरे साथ कभी यह घटा नहीं।

शहर की गलियों मे अकेले घूमते
मैं कई बार गलियों के नुक्कडो पर
उसी औरत को देखता हूँ—

जिस मैं प्यार करता हूँ
वह भी अकेली होती है, नितान्त अकेली
और उस आदमी को खोज रही होती है—

हम भरे समुद्र म
उन दो जहाजों की तरह हाते हैं

जो अपने अनचाहे दिलो मे झण्डे
एक पल के लिए एक दूसरे के आगे झुकाते हैं—
और फिर एक दूसरे के पास से गुजर जाते हैं।
इस तरह एक दूसरे के पास से गुजरते जहाज
एक-दूसरे के बन्दरगाह नही बन सकते।

किसी उस से प्यार करना
जो तुम्ह प्यार न करता हो
किसी उस देश का नुमाइन्दा बनना है
जिस मुल्क का अस्तित्व ही कोई न हो।

कभी गुजरा तो शायद इसी राह से ही होगा परअब खनील जिबरान बहुत आगे पहुँच चुका था, दिखायी नही देता था। दूर कहीं से उस की आवाज आयी "मैं तुम्ह इनकार की राह नही पकडन दूगा। पूर्ति की राह की ओर आओ। थकान तुम्ह नही रास आयेगी। इस थाह को पाना पडेगा। और वह भी हँसते होठो से।" यह विराट अन्तर की आवाज थी, इसलिए शिक्वे की आँखें नीचे झुक गयी। वह थक भी बहुत गया था, रास्ते मे ही रह गया। मैं उस से मुक्त होकर आगे चल पडी। और देखा, पॉल पॉट्स भी आगे चल रहा था।

पॉल कह रहा था

अगर तुम किसी उस औरत से प्यार करते हो
जो औरत तुम्ह प्यार न करती हो
उस समय एक ही ईमानदार बात हो सकती है
कि तुम दूर चले जाओ,
दूसरे शहर मे दूसरे देश मे दूसरी दुनिया म
कही भी चले जाओ।

पर जिन्दगी का वास्ता है, चले जाओ।
तुम चाहे पूरी तरह टूट जाओ,
पर उसे न यह देखने देना।
वह तुम्ह एक भिखारी बना क्यो देखे
वह जो तुम मे एक बादशाह देख सकती थी।

अगर मुझे अपनी सारी जिन्दगी का
एक शब्द मे वर्णन करना हो
तो मैं कहूँगा 'एकाकीपन'
और फिर इस शब्द को दोहरा दूगा।

अपने अगले रास्ते के गीत को मैं इसीलिए एक गीत का जन्म नही कहती, एक अवस्था का जन्म कहती हूँ, जिस अवस्था मे एक आशिक उस चारपाई पर भी निश्चिन्त होकर सो सकता है जिस के चारो पाये हादसो के बने हो, और जिस चारपाई को पीडाओ की मूज ने बुना हो और इस चारपाई पर सोनेवाला मुहब्बत की आग को हुक्के की पालतू आग की तरह अपने सिरहाने रखकर सो सकता है।

इस अवस्था की देन है कि एक दिन जब मैं ने सामने देखा, खलील जिबरान ने अपने हाथ मे पकडा हुआ जाम अपने माथे से भी ऊपर उठाया और फिर एक लम्बा घूट भरा, मेरे नाम पर, पॉल पाट्स के नाम पर, और आप सब के नाम पर जो अपनी जिन्दगी के जाम को अकेले पी रहे हैं।

मुझे अपने जाम से अपने खून का और अपने आंसुओ का स्वाद आता है, इसी तरह, जैसे आप को अपने जाम से अपने खून का और आंसुओ का स्वाद आता होगा। पर आज मैं प्यास की इस सौगात के लिए जिन्दगी का शुक्र कर सकती हूँ, अपनी ओर से भी और आप की ओर से भी, क्योकि इस प्यास के बिना मेरा या आपका दिल उस सूखे हुए समुद्र का किनारा बन जाता जिस मे न कोई गीत होता है और न कोई लहर।

दुब्रोवनिक (छब्बीस थियेटरों का शहर)

शायद हल्की सी धुंध का जादू था कि रोम से यूगोस्लाविया जाते हुए राह का सागर और आसमान, एक दूसरे मे अपना रग मिलाकर कुछ पलो के लिए एक हो गये लगते थे, अहसास होता था कि आधा आसमान पैरो के नीचे है आधा सिर के ऊपर। या आधा सागर के नीचे बह रहा है और आधा सिर के ऊपर।

हेनरी मिलर के लिए उस के एक समालोचक ने कहा था कि वह किसी पारदर्शी ह्वेल मछली के पेट मे पडे हुए उस इनसान की तरह है जो अपनी जगह से हिल नही सकता, पर मछली के पेट से बाहर जो कुछ घटित हो रहा है उसे देख जरूर सकता है। देख सकता है और लिख सकता है। यह केवल हेनरी मिलर का नही, हर लेखक के भीतर के हेनरी मिलर का भुगता हुआ अहसास है। चिह्नात्मक मछली के पेट मे पडे होने का अहसास हम सब जानते है, पर जिन पलो की यह बात कह रही हूँ, वे पल फिजां की मदद से सिर्फ अन्दर की ही नही, बाहर की हकीकत भी बने हुए थे।

आखो के सामने सिर्फ अपना अस्तित्व था—जिस्म के हाथ सिर्फ इसी तक पहुँच सकते थे पर सोच के हाथ बहुत लम्बे होते है, वह इस अस्तित्व का दुनिया के उस सब कुछ से अपना सम्बन्ध ढूढ रहे थे, जो 'सबकुछ' इनसान की पकड मे आ सकनेवाली बहुत खूबसूरत घटनाओ की शक्ल मे भी घटित होता है, और भयानक घटनाओ की शक्ल मे भी।

'सागर की हरी नीलाहट कितनी शायराना है, पर मैं क्या करूँ मेरी आँखें इस पतली, कोमल और झिलमिलाती सतह के नीचे जाकर उस सतह के नीचे पडे हुए मगरमच्छ भी देख लेती है"—मेरे हाथ के पास पडी हुई सात्र की एक किताब का एक पात्र सोच रहा था, और मेरे साथ की सीट पर बैठा हुआ एक बुजुर्ग चेहरा मुझे कह रहा था, 'मैं इज़रायली हूँ, हम ने पीढी दर पीढी जाने की जद्दोजेहद की है पर अभी अभी हुई अरब लोगो के साथ हमारी लडाई बडा उदास हादिसा है। हम जीना चाहते हैं—मरना और मारना नही चाहते, पर' इस

'पर' के पीछे जो कुछ है, यह कहने की जरूरत नही थी। पिछले दिनो मैं ने एक नज्म लिखी थी —' इजराइल की ताजी मिट्टी और अरब की पुरानी रेत जब खून मे भीगती है, तो उस की गन्ध एशाहमरशाह महादन के जाम म डूब जाती है।" —यह इजराइली भी एक खामोश-सा जिक्र इसी 'ग्शाहमग्शाह' का कर रहा था। इजराइली लोगो की महनत और अक्लमन्दी म किसी को शक नही पर लोगों की धरती छीनकर, अरबवासियो को हमेशा के लिए उन के विरोधी बना देना, वह 'पर' है जो सागर की हरी और नीली सतह के नीचे एक मगरमच्छ की तरह पडा हुआ है

हलकी धुप का जादू था या रगों की साजिश, या मेरी अपनी नजर का कुछ। पल लम्बे होते गये। किसी ह्वेल मछली के पेट मे पडे होने का अहसास सीधा होता गया। बाहर जो कुछ हो रहा था, भयानक घटनाओं की शक्ल म भी दिखता रहा और खूबसूरत घटनाओ की शक्ल मे भी। कल हिन्दुस्तान से आते समय एक अखबार के नुमाइन्दे ने एक सवाल पूछा था, "इस पन्द्रह अगस्त को हम ने पिछले बीस सालों की समालोचना करनी है इन बीस सालो मे हम ने क्या कुछ पाया और क्या कुछ पाने से रह गया ? तुम्हारा क्या जवाब है ?" जवाब दिया था, "सब से बढ़कर जो कुछ पाया है वह इसी सवाल का अस्तित्व है। यह सवाल एक लेखक से आजाद देश मे ही पूछा जा सकता है। लिखने की, बोलने की और सोचने की स्वतन्त्रता हम ने पायी है। जो नही पाया वह यह है कि इस के काबिल उतरनेवाला अखलाक नही पाया। मौके विशाल हुए थे, हैं, पर इन्हें इस्तेमाल करनेवाले हाथ देश की समूची कमाई के लिए मिलकर आगे नही हुए, बल्कि जल्दी मे उन्हें अपने अपने दायरे मे समेटने के लिए सिकुड गये हैं, जिस का नतीजा है दिन पर दिन बढ़ती हुई कीमतें, और दिन-पर दिन निरुत्साह होती हुई जिन्दगी। पर इस सब कुछ म भी यह आस बची है कि शायद यही सबकुछ किसी दिन तलवार बन जायेगा और आज भी सोच रही थी —हिन्दुस्तान का परदेशी मुल्कों से सांस्कृतिक आदान प्रदान केवल इसी आजादी की देन है। हम अपने मुल्क की सख्त लफ्जों म आलोचना करते हैं क्योंकि हमारे सपने उस के साथ जुडे हुए हैं—सिर्फ उसी के साथ जुडे हुए हैं और वह हमारी आलोचना को सहता है, क्योंकि यह अपनत्व का तकाजा है। यही अपनत्व हमारी कमाई है

'फ्राम इण्डिया ?' डुब्रोवनिक के एयरपोर्ट पर जब मेरे मेजबानो ने पूछा, तो सब से पहला शुक्र मेरा जिन्दगी के साथ यही था कि आज मेरा मुल्क आजाद है, और मैं एक आजाद मुल्क के लेखक की हैसियत से यहाँ खडी हूँ।

डुब्रोवनिक बिलकुल सागर के किनारे, सरू और चीड के पडो से लदी एक ढलान है। शहर का घेरा सिर्फ दो किलोमीटर है, पर इस दो किलोमीटर का

चौगिरदा मीलों तक सरू के पेड़ों तक फैला हुआ है। यूगोस्लाविया छह रिपब्लिकस में बँटा हुआ है, यह दुब्रोवनिक क्रोएशिया रिपब्लिक की हद में है। इस के उत्तर और पूर्व में पहाड़ है, दक्षिण और पश्चिम में सागर।

शहर को घेरे में लानेवाली पुरातन दीवारें 2,121 गज लम्बी हैं, और इन दीवारों का भीतरी हिस्सा 1,77,299 गज है। ये सब कोई बत्तीस गाँव हैं। और कुल आबादी साठ हजार है। लेकिन तेईस हजार की शहरी आबादी में से, कोई छह हजार लोग पुरातन दीवारों के भीतरी हिस्से में रहते हैं, बाकी साथ लगती बस्तियों में।

इस शहर की जहाजी तिजारत बहुत पुरानी है। कोलम्बस के नये ढूँढे अमरीका में सब से पहले इसी शहर ने तिजारती जहाज भेजे थे। इस शहर की बढ़ती अमीरी के साथ जहाँ इस के लोगों का अपना शहर दुनिया के बहुत खूबसूरत शहरों की तरह बनाने का वलवला पैदा हुआ वहाँ जिन्दगी की अमीरी को मनाने के लिए उन्होंने नाच, नज्म और नाटक भी बड़े उत्साह से अपनी जिन्दगी में शामिल किये। कोई बता रहा था, "दुब्रोवनिक के ताले दुनिया में बहुत मशहूर हैं।" और मैं हँस रही थी 'ताले भी और नाटक भी। ताले कमाई हुई दौलत को सँभालने के लिए और नाटक जिन्दगी के बन्द भेदों को खोलने के लिए।"
कहा जाता है कि पुराने वक्तों में भी कोई मेला या ब्याह, नाच और नाटक के बिना नहीं हो सकता था। इस समय इस शहर में छब्बीस ओपन एयर थियेटर हैं। हर साल नाटकों का एक 'समर फैस्टीवल' मनाया जाता है। वैसे भी इस शहर की कमाई को शुरू से 'समन्दरी रोजी' कहा जाता है। तिजारती जहाजों की कमाई के अलावा, इन के किनारे जो अमरीकन, फ्रांसीसी, इतालवी और जरमन लोग गरमी की छुट्टियाँ मनाने आते हैं, उन से हुई कमाई भी इस की 'समन्दरी रोजी' में शामिल है। हर साल लोकगीतों और नाटकों का मेला भी परदेशियों के लिए आकर्षण का एक कारण है। यह मेला कोई डेढ़ महीना लगातार मनाया जाता है।

मेलों के प्रबन्धकों की तरफ से दिया गया सुनहरी बैज 'लिबरतास' अपनी कमीज से टाँककर, इस लफ्ज स्वतन्त्रता के साथ धरती के इस टुकड़े का पुराना इश्क भी देख सकती थी। जब नेपोलियन ने इस को अपनी जीत में शामिल कर लिया था और फिर नेपोलियन की मौत के कुछ सप्ताह बाद आस्ट्रिया ने ता इस के निहत्थे हुए नौजवान अमीरों ने एक सौगन्ध ली थी कि वह बिन ब्याह मर जायेंगे ताकि उन की औलाद को गुलामी न देखनी पड़े

शहर के मुख्य दरवाजे के साथ लगते भीतरी दरवाजे पर एक सतर खुदी हुई है "दुनिया भर के सोने के मोल पर भी स्वतन्त्रता बेची नहीं जा सकती।" यह सतर इस दरवाजे की पाँच सौ साला बरसी मनाते हुए सन 1922 में लिखी

गयी थी।

"हमारे पास छह रिपब्लिक्स हैं, पांच कौम, चार जबानें, तीन मजहब, दो लिपियाँ और एक सामसा हमेशा स्वतन्त्र रहने की'—यूगोस्लाव लोग यह मुहावरा अक्सर दोहराते हैं। यह ठीक है कि यह सब कुछ यूगोस्लाविया का अपना है, पर इस सब कुछ को मुनव्वर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया था, और इस के लिए व नेहरू के शुक्रगुज़ार हैं

पुरातन दीवारों के घेरे से बाहर बिल्कुल नयी इमारतें हैं—पहाड़ों के इर्द-गिर्द मीलों तक फैली, शीशा के दरवाज़ोंवाली और जिन दरवाज़ों के सामने देश देश की कारें पंक्तियाँ बांधे खड़ी हैं—पर तवारीखी शहर की गलियाँ, तवारीख के भारी क़दमों से मसली, आज भी केवल पैदल चलते पैरों के लिए खुली हैं। बड़ी गली के पहलू से निकलती छोटी गलियों के सिर चुपचाप उस सागर की ओर तकते रहते हैं, जिस के पानियों पर कभी दौलत भी आया करती थी और हमलावरों की तलवारें भी

एक खम्भे के पास की वे तीन सीढ़ियाँ आज बहुत थकी हुई लगती हैं, जहाँ कभी शाही फरमान सुनाये जाते थे—पहली सीढ़ी पर खड़े होकर शहरवासियों पर किसी नये लगे टैक्स का फरमान, दूसरी सीढ़ी पर खड़े होकर कोई उस से अहम मामले पर सुनाया जाता फरमान और सब से ऊपरी तीसरी सीढ़ी पर खड़े होकर सब से बड़ी बात—जंग के एलान जैसी—के बारे में सुनाया जाता था। आज इन सीढ़ियों के चौगिर्द की चुप में जो सरसराहट है, लगता है वह उन लाखों और करोड़ों सांसों में भीगी हुई है, जो गरम सांस कभी इन फ़रमानों को सुनते हुए लाखों और करोड़ों होठों से निकले थे

चर्च के आँगनों की छाया उदासी हुई है। जाने कितने हाथों की प्रार्थना इस ने सुनी है। इस की छाया में उनींदे-से कबूतर हर वक्त बैठे रहते हैं—शायद लोगों के जुड़े हाथों का चिह्न बनकर बैठे रहते हैं।

इन पुरानी तवारीखी इमारतों के दरीचे और उन के खण्डहर, और किलों की चारदीवारियाँ, नाच और नाटक खेलने के लिए अजीब साज़गार हैं। पत्थरों और झाड़ियों की ओट से निकलते नाटकों के पात्र, और पुराने पहाड़ी वेशों में—फूलदार कढ़ाई के चोले, मोहरों के हार और लाल-काली कुरतियाँ पहने और सिरों पर पटके बाँधकर निकलती, नाचियाँ, वर्तमान का हाथ पकड़कर उसे बीते समय के घर बुलावा देने लगती हैं।

इस समय शहर में, इसी शहर की सोलहवीं सदी में हुए एक शायर और नाटककार, मारिन दरचिच के समय की धूल में दब गये नाटकों को, झाड़-पोंछकर फिर से पढ़ने और उन पर बहस करने के लिए एक सभा बनी है। अमरीका से भी कुछ साहित्य विज्ञानी आये हुए हैं, यह बहस एक हफ्ता रहेगी।

इस लेखक के दो नाटक इस समय शहर मे खेले जा रहे हैं। एक नाटक परी कहानी है। इसे खेलने के लिए सागर के किनारे एक पहाडी स्थान चुना गया है। पेडो का बहुत बडा एक घेरा है और उन म से निकलते ऊँचे नीचे कितने ही रास्ते हैं। परियो के अलोप होने के लिए, या प्रत्यक्ष होने के लिए, और पेडो पर चढ़ने के लिए, या उन पर पडे हरे पत्तो के झूले झूलने के लिए, अजीब कुदरती माहौल है।

शेक्सपीयर के नाटक भी बहुत मकबूल हैं। एक पुराना किला इन नाटको को खेलने के लिए इतना योग्य स्थान बन गया है कि वह सिर्फ शेक्सपीयर के नाटको के लिए सुरक्षित रख लिया गया है।

'ऑथेलो' और 'हैमलेट' के पात्र, किले की लम्बी और अँधेरी सीढियो मे से निकल के झरोखा से लालटेनें लेकर झाँकते, मुंडेरो पर मशालें लेकर चलते और लकडी के बडे बडे पुरातन दरवाज़ो के ताले खोलते और बन्द करते अपनी पूरी भयानकता स दर्शको को मोह जाते।

समूची वादी के एक ओर जल थल करता सागर है और दूसरी ओर मरे सागर (डैड सी) की जीती पसली पहाडो मे खुबी हुई है। वादी का एक हाथ खुली हथेली की तरह लगता है जिस पर कुदरत की खूबसूरती जगमग करती लगती है और वादी का एक हाथ बन्द मुट्ठी की तरह लगता है जिसे सिर्फ बहुत होले होले खोला और जाना जा सकता है। इतिहास की जद्दोजेहद इस मुट्ठी मे बन्द है

इस बार किसी देश को देखने का मेरा तजरबा बिलकुल अलग किस्म का है। दुभाषिये की जरूरत नही, उस के बिना शहर म चल जाता है। होटल शहर के दरवाज़े से बाहर है, बिलकुल सागर के किनारे। मेज़बानो ने कमरा ल दिया है पर रोटी खुद खरीदनी है। उस के लिए वह 7,500 दीनार रोज़ के मेहमान को देते हैं, पर साथ यह कहकर हमे मालूम है, यह काफी नहीं होंगे, बडे होटल मे इस से रोटी नही खरीदी जायगी, पर अगर एक वक्त रोटी किसी सस्ती जगह से खा ली जाये " और शहर मे सस्ती जगह ढूढने के लिए पलातसा के बाज़ार मे और उस मे से दायें बायें निकली पत्थरो की गलियो मे घूमते हुए, लोगों से सीधा वास्ता पडता है। नये दीनार चालू हो गये हैं (सौ पुराने दीनार एक नये दीनार के बराबर) पर अभी तक पुराने दीनारो मे गिनती करनी लोगो को आसान लगती है। वे इसी मे कीमत बताते और पूछते हैं।

अभी एक बडी उम्र की औरत ने बाँह पकड ली थी कि मैं उस से बाँस का बना एक छोटा सा बैग जरूर खरीदू। कीमत पूछी, पता चला पाँच हज़ार दीनार। पास कोई लाल धागो के कढ़ाईदार थैले बेच रहा था। उस का तकाज़ा था कि मैं एक थैला जरूर खरीदू। कीमत पूछी, छह हज़ार दीनार। सुबह-सुबह

चाय के प्याले की जरूरत थी, बाजार बहुत दूर था, वैसे भी वहाँ चाय नहीं मिलती। इसलिए होटल में ही चाय पीनी थी जिस का बिल 1,440 दीनार था

रोज समर समारोह के किसी नाटक का टिकट मुझे मेजबान भेज देते हैं, वैसे उस टिकट की कीमत पाँच हजार दीनार है सिर्फ एक शो का।

देख रही हूँ—सामने चर्च में, माथे से छाती से और घुटनों से बहते खून-वाली ईसा की पेन्टिंग लगी हुई है। बाहर दीवार के साथ पीठ टिकाये आज के आर्टिस्ट अपनी पेन्टिंग्स फर्श पर रखकर बेचने के लिए बैठे हैं। गिन्सबर्ग की नज़्म याद आ रही है—"दुआ कर सिर्फ मर्द और औरत के लिए, जो अहसासों के बादशाह होते हैं और अपनी जीती हड्डियों के ईसा"

शहर की पुरातन पथरीली दीवार पर चढ़कर सारे शहर के गिर्द घूमना एक अजीब तजरबा है—दीवार से जरा नीचे पर बिलकुल पास लगते घरों को यह एक खलल जरूर लगता होगा क्योंकि उन के कमरों में बिछे बिस्तर, मेजों पर पड़ी रोटियाँ और आँगनों में सूखने डाले गये कपड़ों की कतारें दर्शकों की आँखों के सामने बिछी रहती हैं। आधे शहर की दीवार पर घूमते हुए एक ओर सागर दिखता है और एक ओर घरों की कतारें। और आधे शहर के एक ओर पहाड़ और नयी बस्तियाँ, और एक ओर पुराने घरों की कतारें। सारी वादी अपनी विशालता में लेकर अपने भीतरी कोनों तक सब कुछ दर्शकों को दिखा देती है।

कबूतर वादी के लोगों की तरह ही इस वादी की रौनक है। चहलकदमी करते कबूतर, शहर के सब से बड़े चौक में, बिलकुल निश्चिन्त रहते हैं। इनसानी हाथों से कोई खतरा उन्होंने कभी सूघा नहीं लगता, इसलिए बड़े इतमीनान से, वे लोगों की हथेलियों पर से भी दाना चुग लेते हैं

पिछली जंग में मैं ने लोगों की जिन्दगियों से बड़ा उधार किया था। जंग के दिनों ने, और उस के बाद की नयी उसारी ने, लोगों की उम्र के कीमती साल खर्च लिये थे, पर अब जब वह उधार चुकाने लगी है तो उस पीढ़ी के लोग ढलती उम्र को आ पहुँचे हैं। जिन्दगी को खुलकर खर्चने का वक्त नहीं रहा। वे आज के जवान बच्चों को बड़े प्यार और रश्क से देखते हैं—जिन के साथ जिन्दगी बड़ी नकद सौदा करती लगती है। दिन ढलते ही आज की जवान लड़कियाँ और लड़के किसी गिरजे की सीढ़ियों पर कतारें बाँधकर बैठ जाते हैं। बारी से कोई गिटार बजाता है, कोई गाता है और फिर सुबह होनेवाली हो जाती है। ये जवान बच्चे नीले और भोले कबूतरों की तरह जिन्दगी की हथेली पर से दाना चुगते लगते हैं

"आज जिस किले में 'हैमलेट' खेला जा रहा है, यह फासिस्टों के वक्त एक

जेल थी। मैं तीन साल इस किले मे कैद रहा हूँ। आज जब अपने देश के लडके और लडकियो को इस किले की दीवारो के पीछे से किसी नाटक के पात्र बनकर निकलते देखता हूँ तो मेरे हाथ अनायास अपने कन्धो की ओर चले जाते कैद के तीन बरस इन कन्धो पर नील बनकर पडे हुए हैं"

शहर के एक म्यूजियम का डायरेक्टर मिस्टर जोसिप लूएतिच आज मुझे कह रहा था, और मुसकरा रहा था। उस की मुसकराहट म्यूजियम की दीवारो पर लगी उन तसवीरो की तरह थी जो कभी जहाजो के कप्तानो ने, किसी समुद्री तूफान से बचने के बाद खुद के शुकराने म बनवायी और गिरजो को अपण की थी

आग के फूल आग की लकीर

सागर के किनारे सूय डूबता नहीं लगता, आग की एक लपट पानी म बुझती लगती है। और फिर सागर उस कटोरे के पानी की तरह काला नीला हो जाता है जिस मे बहुत स कोयले बुझाये हो। पर अम्बरी आग बुझती नही। कुछ घडियाँ ही गुजरती हैं कि आग का वह टुकडा मल मलकर पानी मे नहाया हुआ, और आगे से भी ज्यादा चमका हुआ, फिर पानी म से निकल आता है। आज कुछ सतरें अनायास होठो पर फड़कने लगी—

"आग का टुकडा मैं ने अभी पानी म बुझाया था
और फिर अभी जलता हुआ पानी मे से निकल आया है
शायद तेरा इश्क भी अम्बर की आग है
कि जिसे बुझाने के लिए आज कोई सागर भी काफी नही।"

सोच रही थी—नज्म आग के फूल होती है। ये मनुष्य की छाती मे खिलती हैं, माथे मे खिलती हैं, और यहाँ तक कि रीढ की हड्डी पर भी इन के फूल पड जाते हैं। और वह मनुष्य एक अमानुषिक हद तक मनुष्य हो जाता है, पर मनुष्य-जाति से बिछुड जाता है। यह बिछुडन उस पर कहर भी करती है और करम भी। वह बाँह पसारकर सारी धरती को गले से लगाना चाहता है, पर धरती की चचलता फूलो से नही बहलती, वह ताकत के और जग के शोख खेलो स बहलती है। और उस की बाहें खिलाव म फैल रह जाती हैं और फूल एक एक कर के जि दगी की अथहीनता की काली खाई मे गिरत रहते हैं

'जो कभी आजकल हमारी वेसना पारुन यहाँ होती। वह हमारी बहुत बडी शायरा है।" दुब्रोवनिक का एक शायर लुका पालीऐतक अभी मुझे कह रहा था, "पर धरती का कोई टुकडा भी उस के पैरो को थाम नही सकता। वह कभी किसी गाँव प होती है, कभी किसी शहर, कभी किसी देश मे। सारी जिन्दगी उस ने अकेले गुजारी है इसी तरह, पैरो म सफर के छाले पहनकर"

अब पालीऐतक ने उस के खयालो म खोकर उस की एक नज्म की कुछ

"आज मैं ने अपनेआप से कहा कि वह मेरी बात सुने।
मुझे वहाँ ले जाये—जहाँ कुछ जाना-पहचाना न हो
सिफ पार का बादल सुबह सवेरे रास्ता दिखाये
और रात का चांद मेरा पहरन बुने
आज मैं न अपनेआप से कहा कि वह मेरी बात सुने।"

पर कोई सिफ तब ही तो नही होता, जब दिखता है। वैसना पारुन वही थी मेरे पास बेंच पर बैठी हुई। पालीऐतक उस की नज्म पढ़ रहा था

"जिस्म सागर के बहुत गहरे पानी की तरह होता है,
इस मे सिफ कुछ मछलियाँ होती हैं—
जो कुलबुलाती हैं और चमक जाती हैं
मेरा इश्क गुफा मे से निकलते पानी की तरह है—
कौन जाने वह कहाँ से आया, और कहा पहुँचेगा।
अभी अभी रोशनी का पैर एक पवत से फिसल गया
और पत्ते, जो मेरी छाती से उगे, अब छाती पर झर रहे
वह जो इस राह कभी नही आया
मैं उसे एक चुप अदब भेज जाऊँगी
और आज मैं एक वजित पीडा गान गाऊँगी।"

इस जिन्दगी का कोई क्या करे जहाँ सिफ खुशियाँ वजित नही होती, पीडा भी वजित होती है। कल रात तो मेलिओव के पेश किये हुए लोक नृत्य देखे थे, जिस मे मैसेडोनिया का एक लोक गीत था

"हो मोरे सुन्दरी! हो मोरे सुन्दरी! मैं कासद बनकर आया
मखमल दे दे धागा दे दे, मुझे अभी लौटकर जाना
मालिक मेरा विरागी बठा तेरा पहरन सीता
कहाँ से आया कासिद बन्दा कौन है मालिक तेरा?
मैं ने कभी आख न देखा नाम न जाने मेरा
ओ मारे सुन्दरी! ओ मोरे सुन्दरी! यही तो कहना मेरा
उस ने तेरी परछाइ देखी, नाम जानता तेरा"

कहते हैं बारह दासियो के घेरे म कोई सुन्दरी हमाम की ओर जा रही थी कि एक कपडो के कारीगर ने उस की परछाइ देख ली, बुत खयालो मे बस गया था, इसलिए नाप की जरूरत नही रह गयी थी, उस ने अपने एक शागिद को सुन्दरी के पास भेजा था कि उसे सिफ कपडा चाहिए, नाप नही चाहिए। परछाइयो को भी इश्क करनेवाले लोगो का कोई क्या करे? ऐसे लोगो का और कुछ नही बनता सिर्फ गीत बनते रहे हैं

एक और नाच का गीत था—

"ऊँचे झरोखे खड़ी सुन्दरी तरकीब बना
गज गज लम्बे बाल काट के एक रस्सी लटका
एक बार तेरा हाथ चूम लूं
एक बार मैं तुझ तक पहुँचूं
फिर चाहे मर जाऊँ "

आज, सिर्फ आज, बस एक घड़ी जीने की कामना करता गीत था रान ता मेलिओव ने बताया था कि वह शायद इस साल के आखिर में अपने लोक नाच लेकर हिन्दुस्तान आयेगा। वह अपनी नाची लड़कियों को किसी पंजाबी या हिन्दी गीत की एक दो पंक्तियाँ सिखलाना चाहता था। पंजाब की एक बोली मैं ने उसे याद करवा दी

"दो दिन घट जिअना पर ज्जिअनामटक दे नाल "

वह खुश था कि जीन के फलसफे से भरी हुई यह सतर उन के किसी लोक नृत्य में खूब उतरेगी

और आज इन गीतों की बात करने, और वैसना पारुन की नज्म पढ़ते हुए पालीऐतक ने अपनी नज्मों के कुछ वरक पलटे—

'आज की रात बहुत भारी है
तेरा बदन—सागर के पानी की तरह सिल्की और सलेटी
शायद माँ ने सागर की सेज पर तुझे कोख में डाला था
मैं ने तेरे हुस्न का एक घूँट पिया है और दर्द चखे है
और इस नज्म का जन्म पीड़ा की गुफा में हुआ है
एक मासूम बच्चे की तरह इस ने धरती पर पाँव रखे हैं
' मैं कोई आधे साल से—
तेरे आँगन के पेड़ की परिक्रमा में खड़ा हूँ
और मेरी जन्महारी, सब कुछ जानती,
एक गहरी साँस भर रही
और पिछली कोठरी में बैठी चुप एक प्रार्थना कर रही
आज की रात बहुत भारी है
रात की छाती में एक सितारी आत्मा
और मेरे सीने में तेरे इश्क की दौलत
और एक गीत आज दबे पाँव आसमान में चल रहा
प्रभात अभी बिलकुल क्वारी है
कि अभी उस ने वासना नहीं सूँघी
और तेरा बदन कवियों की तरह मेरे बदन पर बरस रहा

झरनो की कमर मे पानी का लहँगा है
और मेरी पलको पर तेरे हुस्न के साये
और तेरा बदन सगीत की तरह मेरे बदन से ऊपर रहा
सितार, आँगन की बेल पर अगूरो की तरह लगे हैं
तू—हवा मे लहराता चैरी का पट
और मैं - एक पड, बेनाम फलो से लदा
नही, हम पड नही, हम सिफ दो खामोशियाँ "

नज्म के भीतर की खामोशी बहुत गहरी थी – नज्म को पढकर या सुनकर भी उसे तोडा नही जा सकता था

दुब्रोवनिक से थोडी दूर एक बहुत खूबसूरत टापू है—लोकरम । इस समय हम इस टापू मे थे। नज्म की खामोशी को तोडा नही जा सकता था, इसलिए कुछ देर बाद पालीऐतक ने सिफ इतना कहा, "इस टापू मे सिगरेट पीना मना है, मैं सिगरेट नही पी सकता । चीड के पेडो के रूखे तिनको को आग का खतरा रहता है ।

हँसी भी आ गयी, सिफ इतना कह सकी, "पर नज्मे तो आग के फूल होती हैं, और हम सारा वक्त इन चीड के पेडो के नीचे नज्मे पढते रहे हैं।"

पालीऐतक की मदद से बसों और ट्रामो मे घूमते हुए मैं ने दुब्रोवनिक की राह भी देखी हैं और क्रोएशियन काव की कुछ पगडण्डियो पर भी चली हूँ।

या इस तरह कहूँ कि काव सागर की जल थल करती गहराई को तरजुमे की छोटी सी बेडी मे बैठकर देखा है । कोई लहर बहुत पास से छू जाती थी, जस यूरै काशरेलान की एक सतर—

"मैं ने उसे अपनी रूह की तरह आज नग्न देखा
और खुद असम्भव हो गया एक असम्भव की प्राप्ति के लिए '

कहते हैं तीनऊर्जेविच एक इमोतस्की नाम के बडे निमाने से गाँव मे पदा हुआ था । पर उस के पैरो म जाने सफर की कितनी लकीरें थीं, वह सारी उम्र (सन् 1891 से 1955 ई) घूमता रहा । दुनिया की बारह जबानें सीखी, जिन मे सस्कृत भी थी । सारी उमर घर नही बसाया । तीन साल सिर पर एक हैट पहने रखा और गलियो मे और पुलो के नीचे सोकर सारी उमर नज्म लिखी (उस ने महाभारत के कुछ हिस्से तरजुमा भी किये थे) जिन्दगी से कोई भी समझौता उसे मजूर नही था—यहा तक कि आखिर जब मुल्क ने उसे डॉक्टर की डिगरी देनी चाही उस ने लेने से इनकार कर दिया था। उस की नज्मे सुनते हुए समय के काले अथाह पानियो से कई बार उस का चेहरा उभरता रहा

'यह मेरे सीने का जलाल है कि मेरा माथा आग की तरह
चमकता है
पलको की नजर का पसीना, और हर सोच सपना से लदा
लगता है—मैं अपने इस हुस्न के हाथो बहुत जल्द मरूँगा
मैं अपनेआप का आखीर हूँ
छाती मे चुभी एक सुई के बिना
कहीं कुछ भी नहीं, जिसे मैं अपना कह सकू
मैं सपनो के बोझ-तले एक पत्ते की तरह काँपता
और हूँ—जहाँ पहुँचकर एक परी-कथा खत्म होती है
जो एक बार मैं तर होठ छू लू
मैं खुदा को यह जन्म देन का कुसूर माफ कर दूँगा
यह मेर लफ्ज अपनी गहराई, सदका लिये बहुत काले हैं
मैं अपनेआप के लिए एक अजनबी हूँ
और शायद बहुत बडे अँधेरे से टूटा, अधेरे का एक टुकडा।
पर आत्मा की छाया म कुछ रग खेलत हैं
छाती जब हिलती है कुछ किरमिजी लकीरें मचलती हैं
मुझे चाँद पर जाना है, और सूरज को पार करना है
और फिर सब से दूर के सितारे पर पहुँचना है
मैं खुद, खुद पर, एक पुल की तरह बिछूगा।
मरा खयाल है—मैं एक तीर हूँ
कमान से निकला—अम्बर मे घूम रहा
एक तीर—सिफ आग की लकीर।"

रात गहरी हो गयी है। सामन किले की दीवार सागर मे कोहनी की तरह खुबी है। दीवार पर जहाजो के निशान दने के लिए लाल बत्ती लगी हुई है—और वह पानी मे एक लम्बी लकीर डाल रही है—लाल जलती आग की लकीर।

और लग रहा है, यह तीनऊजेविच की कलम है—हर बन्दरगाह पर पानी म काँपती आग की लकीर

एक बैठक एक दुपहर

एअर रेड की आवाज़ थी, फिर गिरते हुए बम्ब की, और फिर उस की आग की चमक देखकर, हैरानी से मस्त हुए बच्चों की आवाज़ें 'मम्मी ! क्रीम बम्ब, डैडी ! क्रीम बम्ब।' और फिर बम्ब के फटने की आवाज़, और बच्चों की वे आवाज़ें जो मुरदा माँ, और मुरदा बाप के सीने से लिपटकर रो रही थीं, 'मम्मी ! आई डोण्ट लाइक क्रीम बम्ब डैडी ! आई डोण्ट लाइक क्रीम बम्ब।'

कमरे मे वह टेप लगा हुआ था जिस मे कुछ देर पहले, एक अमरीकन शायर माइकल ने मेरे घर आकर वियतनाम पर लिखी अपनी नज़्म गायी थी।

शिव के हाथ मे से चाय का प्याला गिरते गिरते बचा। हलवे की भरी हुई प्लेट को एक तरफ सरकाते हुए कहने लगा, 'दीदी ! कुछ भी गले से नीचे नही उतरता, यह नज़्म सुनकर कुछ भी नही खाया जायेगा।'

सब के गले मे इस नज़्म का धुआ था। और साँसें कडवी होती चली गयी। अब टेप पर एक अमरीकन लडकी जौनबेज़ गा रही थी, "हम मरे हुओ की गिनती नही करते, जब खुदा हमारी तरफ है," जौनबेज़ की आवाज़ हमारे कानो मे चुभ रही थी, दिलो को टीस रही थी। उस का व्यग्य तेज़ छुरी की तरह मार कर रहा था

मैं जिस देश मे रहती हूँ, खुदा उस की तरफ है
तारीख बतायेगी—खून बतायेगा
कि घोडो के दस्ते भागते हुए गुज़रे
औ' रेड इण्डियन कुचले गये
फिर घरलू जग औ शहीदो के नाम
मुझे ज़बानी याद करने पडे

हाथ मे बन्दूकें, साथ खुदा खडा हुआ
पहली जग आयी, गुज़र गयी,

औ' जग के कारण का मुझे आज तक पता नही चला।
पर मैं ने उसे स्वीकारना सीख लिया है,
वह भी गुरूर से
मरे हुओं की गिनती नही करते, जब खुदा हमारी तरह है
फिर दूसरी जग भी आयी, औ' गुजर गयी
हम ने जरमनो को माफ कर दिया, और उन्हें दोस्त कहा
भले ही उन्होंने साठ लाख लोग कत्ल किये थे
अब जरमन भी हमारे साथ हैं,
और खुदा उन की तरफ है
मैं ने महान् रूसियो से नफरत करना सीखा
औ' यह भी कि हम उन से जरूर लड़ना है
अब हमारे पास बड़े हथियार हैं, हम उन पर चलायेंगे
आप सवाल मत पूछें, पूछ नही सकते।

मैं ने क्यों यह बात सोची है
ईसा मसीह रोया, तो हम ने एक चुम्बन म उसे दगा दे दिया
मैं कुछ नहीं कहती, आप सोचें!—खुद सोचें
मैं बेहद थक गयी हूँ—
मैं ने, जो दुविधाएँ जानी हैं,
वक्त उन का पता नहीं दे सकता
शब्द मेरे मस्तक मे जमा होते हैं,
औ' फिर जमीन पर फिसल जाते हैं
मगर खुदा मेरी तरफ है—तो जग नहीं होगी
नही होगी

शिव ने हवा मे बाजू फहराया, 'ऐसी आवाज कभी नही सुनी, कभी नही सुनी, मैं मर गया " जौनबेज की आवाज मे नीनों काल लिपट हुए प्रतीत होते थे—काल, जा लागो क खून मे भीगता रहा। काल, जो लोगो के खून म भीग रहा है। और काल, जो लोगो के लहू म भीगता रहेगा, तब तक, जब तक खुदा सचमुच इस आवाज की बगल मे आकर नही खडा हो जाता, और हर उस आवाज के पहलू मे नही खड़ा हो जाता, जो जिन्दगी के लिए तडप रही है

मेरा बेटा एक टेप उतार रहा था, एक लगा रहा था। वह किंग लूथर के दश का गीत सुनाना चाहता था, 'यह आज हमारा नही पर कल हमारा होगा।" टेप मे से आवाज आने मे देर लगी तो शिव का सब्र काबू म न रहा। उसे बताया गया कि टेप उलटा है, थोडी देर लगेगी, शिव ने हैरान होकर टेप की तरफ देखा,

'अभी यह सीधा था, अभी उलटा कैसे हो गया ?"

मेरा वटा हँस पडा - "अकल ! यह तकनीकी बात है।"

"इसी तक्नीक का तो मुझे पता नही चल सका," शिव मन की आग से पिघला हुआ था। कहने लगा, 'मैं मुहब्बत को हमेशा सीधा रखता रहा, पर वह हर बार न जाने किस वक्त उलट जाती थी अच्छी भली आवाज़ न जान कहाँ गुम जाती थी फिर मैं वजाता कुछ था, बजता कुछ था "

टेप मे किंग लूथर के दश का गीत अभी नही मिल पाया था—कि अमरीकन मछुओ का गीत बज उठा, 'मद का ज म मेहनत करने के लिए हुआ है, औरत का रोने के लिए" - गीत के मछुए समुद्र मे डूब जात हैं, और किनार पर उन की औरतें रोती हैं

"दीदी ! हम सब इस गीत की तरह, आधे समुद्र मे डूब जाते हैं, और आधे किनारे पर बठे रोते रहते हैं,' शिव की आवाज़ दाशनिक हो उठी, "शायर के दिल मे मद भी होता है, औरत भी। वह मद की तरह महनत करन के लिए ज म लेता है, और औरत की तरह रोने क लिए "

सामने मेज़ पर 'अफरो एशियन राईटिंग्ज़ का नया अक पडा हुआ था। शिव कभी अपनी कांपती हुई उँगलियो मे दबे हुए सिगरेट को जलाता और कभी सामने पडे अक के प ने पलटता सभलने की कोशिश म था कि अचानक बोल उठा, "थान हे मिल गयी" वियतनामी शायरा थान हे की नये अक म तसवीर भी थी और नज्म भी।

"सुनो दीदी !" शिव ने थान हे की नज्म पढनी शुरू की, "स तरे के पेडो पर मैं जब चिडियो की चहक सुनती हूँ, तुम याद आते हो, और मेरे हाथ मे से चरखे की हत्थी छूट जाती है। मैं इस तरह तुम्हारा इतज़ार कर रही हू, जैसे स तरे का पेड फल लगने का इन्तज़ार करता है "

थान हे के हाथ मे से चरखे की हत्थी फिसली तो शिव के हाथ मे से उस का अपनाआप फिसल गया। उस की आवाज पहले गले मे कापी फिर दीवारो से टकरायी, 'मैं और सूरज फिर घर के पीछे चले जाते हैं, उसे घर की मरी हुई धूप दिखाता हू "

पाकिस्तान की रशमा ने जैसे शिव की बात का साथ दिया, टेप म से उस की आवाज़ बिलख पडी, "हाय ओए रब्बा ! नहीओ लगदा दिल मेरा " (हाय खुदाया ! मेरा दिल नही लगता)

'देखो दीदी। रेशमा की धूप भी मरी हुई है, थान हे की धूप भी मरी हुई है जौनवेज़ की धूप भी मरी हुई है, माइकल की धूप भी और दीदी ! तुम्हारी धूप भी मरी हुई है। तुम ने जैसे लिखा था—मैं थी, रात थी, खयालो की शराब थी, और बडे दोस्त पर एक कोई यह था, जा बहुत बार बुलाने पर भी नहीं

आया था " और शिव ने कांपकर पूछा, "यह जो एक होता है, वह कहां होता है?"

"इसी एक की तो सारी बात है, शिव?" मैं ने शिव को गरम चाय का प्याला दिया और कहा, "यह एक अपनाआप भी है, अपना महबूब भी, और जगह जगह पर व्यथ मर रहे लोगो की सांस भी "

शिव को डेढ बजे की गाडी पकडनी थी, डेढ़ बज चुका था, गाडी जा चुकी थी। वक्त अपनी रफ्तार चला जा रहा था, सिफ शिव मरी हुई धूप के पास बैठा हुआ था और रेशमा उस लाश के सिरहाने थी यान हे बेहद उदास थी माइकल बहुत चुप था और जोनबेज, उस लाश के पास खडी व्यग्य से कह रही थी, "हम मरे हुओं की गिनती नही करते "

और मैं—हम सब—इन्तजार कर रहे थे कि ख़ुदा सचमुच कब हमारी तरफ होगा? ?

इतालवी धरती

वैसे तो हर देश एक नज्म की तरह होता है जिस के कुछ अक्षर सुनहरे रंग के हो जाते हैं और उस की आबरू बन जाते हैं। कुछ अक्षर उस में लाल हो जाते हैं, उस की अपनी या बेगानी बन्दूकों से लहू-लुहान होकर। और कुछ अक्षर उस की हरियाली की तरह हमेशा हरे रहते हैं, जिन में से उस के भविष्य के नये पत्ते फूटते हैं और इस तरह हर देश एक अधूरी नज्म सरीखा होता है। पर इतालवी धरती को छुआ तो लगा—जैसे एक नज्म के पूरे या अधूरे होने के अमल को बड़ा प्रत्यक्ष देख रही हूँ। इस धरती के चप्पे चप्पे पर संगमरमर के बुत ऐसे लगते हैं जैसे इस धरती में से बुत उगते हों। लगा—नज्म के जो अक्षर खानों में गिर गये वे संगमरमर बन गये, और जो अक्षर धरती में बीजों की तरह पड़ गये वे माइकल ऐंजलो के तथा और कलाकारों के हाथ बनकर उग पड़े और इन सफेद अक्षरों के इतिहास से लाल खून से रंगे अक्षरों का इतिहास भी बहुत लम्बा है—जब स्पार्टेकस जैसे हजारों गुलाम, शासक रोमनों की तमाशबीनी के लिए एक-दूसरे की जान पर खेलते थे

और इस नज्म के अक्षर पीले भी हैं—खौफजदा—पोप के वैटीकन शहर की ऊँची दीवारों से टकराते और गुच्छा होकर खुद ही अपने अंगों में सिकुड़ जाते। इतालवी धरती एक ऐसी होनी की धरती है, जहां कई अक्षर उस के हरे जंगलों की तरह भविष्य की शाखाएं भी बन गये हैं—और कई अक्षर हमेशा के लिए खो भी गये हैं—शायद पहली बार तब खोये थे जब 'डिवाइन कमिडी' का दांते जलावतन हुआ था और उस के साथ वे भी जलावतन हो गये थे

और इस नज्म के कुछ अक्षर वे भी हैं जो किसी सैलानी से नहीं पढ़े जा सकते—यह सिर्फ लिनार्दोडिवेंसी की मोनालिसा की तरह मुसकराते हैं—रहस्य भरी मुसकान।

●
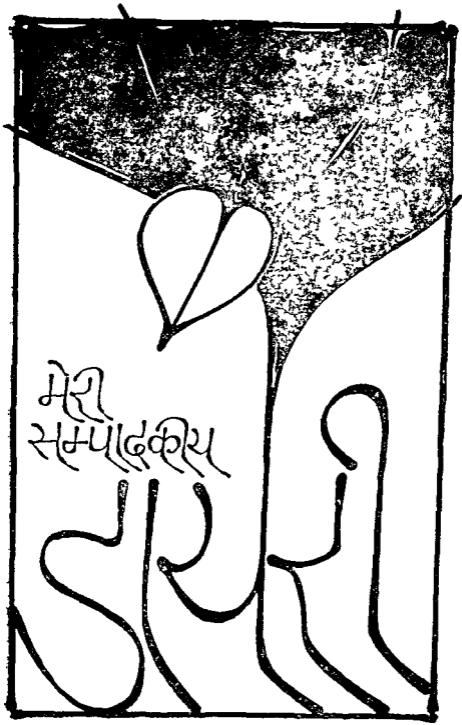
मेरी
सम्पादकीय
डायरी

हैलो ! प्यारे माइक !

प्रसिद्ध रूसी साहित्यकार बोरिस पास्तरनाक जब अपनी महबूबा ओल्गा एवनिस्काया से बातें किया करता था, उन दोनो को अपने बीच एक तीसरी चीज का एहसास हमेशा रहता था। दोस्तो ने उन्हे सावधान कर रखा था कि उन के घरो की दीवारो मे माइक्रोफोन जरूर चिने हुए हैं। सो, पास्तरनाक कई बार हँसकर 'डीयर लिटल माइक' को याद किया करता था यह माइक किसी न-किसी सूरत म हमेशा एक साहित्यकार और दुनिया के बीच छिपकर बैठा रहता है—चाहे इसे किसी समाज ने रखा हो, चाहे किसी मजहब ने या चाहे सियासत ने—और समय समय पर दुनिया के कई कवियो और साहित्यकारो का इस से वास्ता पडता रहता है।

सत्रहवी सदी मे एक पजाबी कवि हुआ—सुथरा। वह सब से ज्यादा अपने बेबाक स्वभाव के लिए जाना जाता था। उन दिनो काजी लोग किसी हिन्दू के माथे पर लगा हुआ तिलक जीभ से चाट कर मिटा देते थे, और वह आदमी दूसरे मजहब में शामिल समझ लिया जाता था। सो, कहते हैं सुथरा ने अपने माथे पर गन्दगी का टीका लगा लिया और दिल्ली की गलियो म घूम घूमकर जोर-जोर से आवाज लगाने लगा—"अब आये कोई क़ाजी और चाटे इसे।" पर उस के माथे पर लगे हुए गन्दगी के टीके को कौन चाटता ! सो, इस तरह सुथरा ने माइक को हाथ मे लेकर उसे ललकारा था।

ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दुस्तान मे जिन कवियो की रचनाएँ जब्त हुई थी (उन 117 कविताओ की अब किताब छपी है—'जब्तशुदा नज़्म') उनका सम्बन्ध आजादी की तडप से था जो उन कवियो ने गुलामी के दुख से खौलते हुए लहू से लिखी थी, और उन नज़्मों का जब्त होना शायरो का इस माइक से खेला हुआ एक खेल था। पर इतिहास मे ऐसी सैकडो वारदातें हैं जिन म यह माइक छिपकर शायरो लेखकों पर वार करता है। मैं हगरी मे कई शायरो से मिली थी। उन मे से एक ऐसे शायर ने, जिसे चार बरस साइबेरिया मे एक जगी कदी

के तौर पर रहना पड़ा था, खास तौर से मुझे इस माइक की कथा सुनायी थी। वह जब 1948 मे रिहा हुआ तो उस की जेबें टटोली गयी। उन में उस ने कुछ नज्मे लिखकर डाली हुई थी। सो, नज्मे पढकर उसे एक बरस के लिए फिर क़ैद मे डाल दिया गया। आज इस शायर को मुल्क का सब स बड़ा एवाड मिला हुआ है, पर इस की पहली नज्म 1953 म, लिखने के नौ बरस बाद, छप सकी थी। हगरी का नेशनल एवाड आज जिस शायर के नाम पर है, वह आतिला योज़ेफ सचमुच एक बहुत बढ़िया शायर हुआ है। पर उस समय तत्कालीन चिन्तन का न जाने कैसा भयानक माइक हवा म लटक रहा था कि उस शायर को, उस से घबराकर, रेलवे लाइन पर लेटकर आत्महत्या करनी पड़ी थी।

हेनरी मिलर की किताब 'सेक्सस' (Sexus) के जब्त होन पर उस ने अपने वकील को 27 फरवरी, 1959 म एक लम्बा खत लिखा था, जिसकी दो-तीन पक्तिया यह थी—"मैं विद्वानो, साहित्यिक पण्डितो, मनोवैज्ञानिको और डाक्टरो जैसे समझदार आदमियो के शब्दाडम्बर और बनावट से भरे हुए वणन से ज़रा भी प्रभावित नही हुआ। कचहरी मे खड़े किये जानेवाले मुलजिम का फसला समय के सयाने लोग नही, बल्कि उस के मर हुए पुरखा करत है।

दुनिया मे शायद वह वक्त कभी भी नही था, और न होगा, जब समय के चिन्तको को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष माइक से वास्ता नही पडता था, या पडेगा। हा, एक वक्त जरूर था जब दागिस्तान की एक कहावत क अनुसार, पहला शायर सृष्टि की रचना स एक सौ साल पहले जन्मा था। तब उस शायर क मन मे शायद यह कसक ज़रूर उठी होगी कि उस की शायरी को सुननेवाला कोई नही है, पर इस बात की तसल्ली भी ज़रूर हुई होगी कि उस के घर की दीवारो मे चिना हुआ, या दीवारो की ओट म कान लगाकर बैठा हुआ, कोई माइक नही है।

आज एक रोमानियन शायर मारिन सोरैस्कू लिखता है 'मैं शाम पडने पर अपने पडोसियो के घर जाता हू और कुछ कुर्सियाँ माँगकर ले आता हूँ और फिर खाली कुर्सियो को अपनी नज्मे सुनाता हू। बहुत अच्छी शाम होती है क्योंकि खाली कुर्सियो के पास न उत्साह का दिखावा होता है, न कोई सेन्सर।" यह नज्म बहुत प्यारी है। भले ही यह कविता किसी मसले का हल न हो, पर मसलो की भयानकता की ओर यह इशारा करती है जिससे हम सब का वास्ता है। हल सिफ यही है कि हर चिन्तक मुसकरा सके और मानसिक बल से ज़ोर से कह सके "हैलो ! प्यारे माइक !"

वार्दो होद

इन्ही दिनों एक लड़का मिलने आया और उस ने मुझ से पूछा—वार्दो होद के बारे में आप का क्या खयाल है ?" क्या कह सकती थी, हँस पड़ी। कहा—"भई, यह एक तिब्बती कल्पना है। लेकिन मैं तो जो लिखती हूँ अपने निजी तजुर्बे से लिखती हूँ या किसी भी देखी सुनी के आधार पर। लेकिन तुम्हारे साथ एक इकरार कर सकती हूँ कि *तुम्हारा सवाल याद रखूंगी और अगले जन्म में अपना* पहला नाविल वार्दो होद के बारे में लिखूंगी और उस का नाम रखूंगी 'उनचास दिन'—और इस बात पर वह भी और मैं भी खुलकर हँस पड़े थे।

इस तिब्बती कल्पना के बारे में डॉक्टर जुंग लिखते हैं "यह वार्दो होद का काल प्रतीकात्मक रूप में उन उनचास दिनों का वर्णन है जो मौत के बाद और पुनर्जन्म से पहले बिताने पड़ते हैं।" सो, इस दशा को प्रतीकात्मक रूप में हम और क्षेत्रों में भी आरोपित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक लेखक के अरचनात्मक काल को हम वार्दो होद कह सकते हैं—और अपने निजी अनुभवों से देख सकते हैं कि हम सब इतने दिन कैसे बिताते हैं

हम सब जानते हैं कि हेमिंग्वे ऐसे दिनों में या तो शिकार खेलते थे या गहरे समुन्दर में जाकर मछलियाँ पकड़ते थे या मशहूर स्पेनी खेल बुलफाइटिंग के दर्शक होते थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जो दिन रचना काल के नहीं होते थे, उन में वह रमते फकीरों के गीत (बाउल) सुना करते थे।

दोस्तोएव्स्की अपने खाली दिनों में सिर्फ जुआ खेलते थे, और नीत्शे पहाड़ों की चढ़ाइयों और उतराइयों में कई कई दिन खो जाना चाहते थे।

कृश्न चन्दर कहानियों की तलाश में घूमते हुए सोचा करते थे कि सड़कों की पटरियों पर रहनेवाले लोगों में वह रात को जाकर चुपचाप सो जायें और उन के बिलकुल निजी दुखों और सुखों को कानों के रास्ते अन्तर में उतारकर उन के यथार्थ की कहानियाँ लिखा करें।

मुझे याद है एक बार मैं ने देखा गुणवन्त सिंह अपने कमरे में मेज पर कागज रखकर हाथ में ली हुई पेंसिल का सिरा कभी ऊपर की ओर और कभी नीचे की ओर कर रहे हैं। बोले, "कुछ लिखा नहीं जा रहा"। यह पेंसिल मैं पेरिस से लाया था। इसे उलटा करें तो इस पर मुद्री हुई औरत के शरीर पर से पहने हुए कपड़े उतर जाते हैं। मैं सोच रहा हूं, शायद इसे देख-देखकर ही लिखने की कोई प्रेरणा मिल जाये।"

प्रसिद्ध यूगोस्लाव कवि आस्कर दावीचे से मैं मिली तो उन्होंने बताया कि जिन दिनों उन के हाथ में कलम नहीं होता उन दिनों बन्दूक होती है और वह जंगल में जाकर सिर्फ शिकार खेलते हैं।

जैसे विलियम स्टफर्ड एक कविता में लिखते हैं "कभी धरती के इस टुकड़े पर कोई पुरातन कथा सरकती हुई दिखायी दे जाती है।" सारे लेखक अपने-अपने ढंग से घूमते भटकते अचानक रचनात्मक पल को सरकते हुए देख लेते हैं, और उस का कम्पन अपने शरीर में सँभालकर रख लेते हैं।

सचमुच नयी रचना का आरम्भ लेखक का नया जन्म होता है। जिस प्रकार तिब्बती कल्पना है कि बार्दो होंद के तीन भाग होते हैं—पहला मारफिक अहसास, मृत्यु के समय का, दूसरा सपने की-सी दशा, और तीसरा पुनर्जन्म की चेतना। जो पहली दशा में शरीर की कैद से मुक्ति की सम्भावना होती है, और दूसरी दशा में चमकती हुई रोशनी के पल-पल मद्धिम होने पर अँधेरे का-सा, अनुभव होता है जिस में आँखों के आगे उभरते हुए कल्पना चित्र भयानक और डरावने होते जाते हैं। और तीसरी दशा में चेतना का वह कम्पन होता है जो पुनर्जन्म का समय निकट आने पर अनुभव होता है। उसी प्रकार ठीक यही दशा लेखकों के उन दिनों की होती है जब पहली कृति को समाप्त कर लिया होता है, और नयी अभी आरम्भ नहीं की होती।

पर लेखकों में एक श्रेणी उन लेखकों की भी होती है जिन्हें पुनर्जन्म का विश्वास नहीं होता और वे घबराकर पहले जन्म की वास्तविकता का भ्रम पाले जाना चाहते हैं—अर्थात पहली कृतियों के सहारे जिन्दा होने का यकीन करना चाहते हैं। सो, वे केवल इनामों तमगों को हासिल करने के लिए अपना सारा जोर लगा देते हैं, उस के लिए चाहे कोई भी रास्ता अपनाना पड़े। स्पष्ट है कि उन की आंखों के आगे चमकती हुई रोशनी पल पल पर मद्धिम पड़ती जाती है, और गहराते हुए अँधेरे में कई भयानक और डरावनी परछाइयों के आकार दिखायी देने शुरू हो जाते हैं। वे अपने डरे हुए दिलों की इस दशा को भुगतते हुए कोई विश्वास अवश्य चाहते हैं जो कह सके कि वे मरे हुए नहीं हैं। और इस प्रकार वे अपने आप को किसी न किसी इनामदाता के तरस के हवाले कर देते हैं।

कला वृक्ष

'कल्प वृक्ष की कल्पना कहाँ खत्म हुई थी, और उस की हकीकत कहाँ से शुरू हुई थी, पता नही। यह आज हमारे लिए सिर्फ मिथहासिक कहानी है।

'बोधी वृक्ष' ऐतिहासिक सत्य है, पर जिस के नीचे सिर्फ कोई महान् गौतम ही कई वर्षों की साधना कर सकता है।

'इश्क वृक्ष' हमारी पुरातन जानकारी का भी सच है और हम मे से कइयो के लिए उन के वर्तमान का भी सच है। इस वृक्ष की बात करते हुए मैं इश्के-हकीकी और इश्के मजाजी की जोड घटा नही करूगी, क्योकि इस वृक्ष के नीचे बैठनेवाले का तप असल मे उस 'स्वय' की पहचान तक ले जाता है, और 'स्वय' की पहचान, इश्के-हकीकी और इश्के मजाजी की जोड घटा मे नही पडती। इस वृक्ष के नीचे बैठनेवाले के लिए खुदा 'यार' बनता है, और रांझा खुदा बनता है।

पर दोस्तो! आज मुझे इन वृक्षो की बात नही करनी है। इन जैसा एक और वृक्ष होता है 'कला वृक्ष'। आज सिर्फ उसकी बात करूगी, उन के लिए जिन्होंने इस वृक्ष की साधना को चुना है।

दोस्तो! वृक्ष तो और भी बहुत होते हैं, 'मोह वृक्ष' भी, 'माया वृक्ष' भी, पर जिन्होंने और सब वृक्षो को त्यागकर 'कला वृक्ष' को चुना, उन्होने कुछ तो इस आकर्षण का भेद पाया होगा।

और यह भेद पानेवालो! फिर क्या कारण है कि आज कला के वृक्ष पर कोई फूल पत्ते नही लगते, कोई उस के फल को चख नहीं सकता, कोई राह चलता मुसाफिर घडी दो घडी के लिए उस की छाँह मे नही बैठ सकता

दोस्तो! जैसे योग दो तरह का होता है—एक सबीज योग, और एक निर्बीज योग, कला की साधना भी दो तरह की होती है—एक सबीज साधना और एक निर्बीज साधना।

यह बीज सिर्फ 'स्वय होता है, जिस ने साधना की मिट्टी मे पडकर हरिया-

यल को भी जन्म देना होता है, रगों को भी और सुगन्धों को भी।

पर पजाबी मे आये दिन जो बहुत सारा कुछ छप रहा है, किताबों के माध्यम से अधकचरा साहित्य, और अखबारों के माध्यम से निन्दा-साहित्य, क्या यह सब निर्बीज साधना नही है ?

सबीज साधनावाले अपने पेड़ों को हसद और नफरत की दीमक नही लगने देते, और न दूसरे पेड़ो के लिए उन के हाथो मे पत्थर होते हैं, यह सब कुछ निर्बीज साधनावालो के हाथों होता है।

दोस्तो ! साधना चुननी है, तो सबीज साधना चुनो !

यह निन्दा साहित्य की बात एक आँख से दिखायी देनेवाली वीरानी की बात है, और वह भी पजाबी पत्रकारी तक सीमित। पर एक और वीरानी है जो पहली नजर मे वीरानी नही दिखायी देती, पर उसका कलर और भाषाओ की पत्रकारी तक भी फैला हुआ है। वह कलर 'आदेश रचना' का कलर है।

'आदेश रचना' के फीके रग को चाहे 'समाजवादी' लफ्ज़ के गहरे रग के नीचे छिपाकर दिखाया जाय, पर वह काग़ज के फूलो की तकदीर है, धरती के फूलों और फलो की नही।

'स्वय' के बीज बिना कोई समाजवादी फूल नही उग सकता। और न कोई 'स्वय' किसी के आदेश से धरती मे उगता है।

जैसे अच्छे फल का अस्तित्व अच्छे बीज पर निर्भर करता है, कलाकार का अस्तित्व प्रबुद्ध और स्वतत्र 'स्वय' पर निर्भर है।

सजीवनी विद्या

महाभारत मे कहानी आती है कि शुक्राचार्य को सजीवनी विद्या आती थी। वह असुरो के राजा वृषपर्वा के गुरु थे। एक बार देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति के ज्यष्ठ पुत्र कच को सजीवनी विद्या सीखने के लिए शुक्राचाय के पास भेज दिया। वह बडे प्यार से कच को विद्या सिखाते रहे, पर दैत्यो को यह बात अच्छी नही लगी, वह कच को किसी तरह मार देने की साज़िश करने लगे।

एक बार कच गाएँ चराने के लिए जगल मे गया हुआ था कि वहाँ दैत्यो न उसे पकडकर मार दिया, और उस का खुरा खोज मिटाने के लिए उस का मास एक भेडिये को खिला दिया। कच जब वापस नही आया तो गुरुजी न सजीवनी विद्या से उसे जीवित करके उसे पुकारा। उस ने भेडिये के पट से बाहर आकर सारा हाल सुनाया।

इस तरह एक बार नही, अनक बार हुआ। दैत्य उसे मार दते, पर गुरु शुक्राचाय उसे फिर जीवित कर लेते। एक बार दैत्यो न तग आकर कच का मार-कर, उसकी राख शराब मे मिलाकर खुद गुरुजी को पिला दी। फिर रात हो गयी, कच नही मिला तो शुक्राचाय न सजीवनी विद्या के बल से उस जीवित कर लिया तो वह उन के पट मे से बोलने लगा कि मैं यहाँ हूँ।

गुरुजी ने उस बहुत सारी विद्या सिखायी हुई थी, बाकी वहीं पेट मे ही सिखाकर कहा—'बेटा! तुम मेरे शरीर को चीरकर बाहर आ जाओ। बाहर आकर फिर इसी विद्या के बल से तुम मुझे जीवित कर लेना।"

पता नही महर्षि व्यास ने इस कथा को किन प्रतीकात्मक अर्थों मे लिखा था, पर इस के जो अथ मेरे सामने एक एक अक्षर करके खुल रहे हैं, वे आज के—मेरे और आप जैसे साधारण इन्सान की साधारण ज़िन्दगी के अनुसार है।

विश्वास से कह सकती हू कि एक छोटी सी सजीवनी विद्या इन्सान के पास भी होती है हो सकती है, मेरे पास भी, आपके पास भी।

कच, हर दिल के हुस्न, इल्म और ईमान का प्रतीक है, जिसे ज़िन्दगी के

दैत्यों जैसे हालात आये दिन क़त्ल करते हैं, पर आप के और मेरे जसे इसानों की तरह ही कुछ इसान होते हैं जो अपनी सजीवनी विद्या के बल से उसे फिर जीवित कर लेते हैं।

कच को आर्थिक मजबूरियाँ भी आये दिन उसकी रीढ की हड्डी की ओर से तोडती रहेगी

कच को सामाजिक गठन भी उसके दिल की ओर से बीधकर उसे घोर उदासियों के खड्डो मे फेंकती रहेगी

कच को राजनीतिक जुल्म भी उस की शाहरग पर हाथ डालकर सलाखों के पीछे भेजते रहेगे

पर कच है—रहेगा, क्योंकि इन्सान के पास सजीवनी विद्या है।

यह या कोई भी विद्या, मास के अगों की तरह नही होती जो इसान के जन्म के साथ पैदा हो जाये। विद्या को प्राप्त करना होता है—साधना से, तपस्या से, विश्वास से।

यहाँ मुझे सिर्फ यह कहना है कि यह विद्या है, और इसकी प्राप्ति की सम्भावना हर किसी के लिए है। कच की कोई मौत अतिम मौत नही, सिर्फ अगर इसान इस विद्या की प्राप्ति के काबिल हो सके।

तर्क का शिष्टाचार

अभी हाल मे लन्दन मे एक किताब छपी है—'चूज लाइफ।' यह सारी किताब दुनिया की समस्याओ को लेकर दो लेखको के बीच की हुई बातचीत है, एक पश्चिम का लेखक है एर्नाल्ड टॉयनबी और एक पूरब का जापानी लेखक है दाइसेकू इकेदा। यह किताब दुनिया के कुछ लेखको को जापान की ओर से भेंट स्वरूप भेजी गयी है, सो मुझे भी मिली है, पश्चिमी लेखक के इस विश्वास के साथ मानव इतिहास के पिछले पृष्ठो मे सारी दुनिया मे जो पश्चिम का नेतृत्व था, अब भविष्य मे यह नेतृत्व पूरब के हाथ म होगा। तकनीकी स्तर पर कोई पाँच सौ साल से पश्चिम के लोगों न दुनिया के मनुष्यो को एक-दूसरे से जोडा है और अब इतिहास का अगला परिच्छेद, राजनीतिक तौर पर, और आध्यात्मिक तौर पर, मनुष्यो को एक-दूसरे से जोडेगा।'

पढकर लगा—जैस जेहन म स कोई सपना बाँहें पसारकर बाहर सफेद कोरे कागजो पर अनेक लकीरें बनकर बिछ गया हो और लगा, अगर आज कागजो पर बिछ सकता है तो कल धरती के बजर पर भी हरी घास की तरह बिछ सकता है

पर यहाँ, इस पृष्ठ पर, मुझे इस किताब के सिफ एक पक्ष को लेकर बात करनी है कि इस किताब की सारी बातचीत जिस धरातल पर स्थिर कदमो से बढ़ती है, वह एक शिष्टाचार की धरातल है, तक के शिष्टाचार की।

प्रत्येक व्यवसाय का एक निजी शिष्टाचार होता है। केवल व्यवसाय का ही नहीं, प्रत्येक अच्छे इसान का भी एक निजी शिष्टाचार होता है—जसे कहत हैं कि शहीद उधमसिंह को जब अदालत मे बयान देने से पहले गीता या किसी ग्रथ की शपथ लेन के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा, 'मैं सिफ वारिस शाह की हीर पर हाथ रखकर शपथ ले सकता हूँ।'' यह शहीद उधमसिंह के विश्वास का शिष्टाचार था, और इसीलिए वारिस शाह रचित 'हीर' का अन्य ग्रथो से अधिक पवित्र होना एक सत्य था—उन का निजी सत्य।

और जहां तक साहित्य का सम्बन्ध है, साहित्य-सम्बन्धी चिन्तन का, उस का निजी शिष्टाचार तक होता है। तक शब्द में वे सब गुण मिले हुए होते हैं— पहचान के, कद्रों कीमतों के, सोच सूझ के और उन से सम्बद्ध जिम्मेदारी के— जिन की तक को बुनियादी तौर पर आवश्यकता होती है। और यही शिष्टाचार, हम आज का सारा पंजाबी साहित्य ढूंढकर देख लें, हमें कहीं नहीं मिलता। किसी भी दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र-पत्रिका को सामने रखें, उस का इस शिष्टाचार से कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता। अगर किसी की प्रशंसा मिलती है तो उस का भी तक से कोई सम्बन्ध नहीं होता, अगर किसी का बिलकुल धिक्कारती और नकारती हुई आवाज है तो उस का भी तक से कोई सम्बन्ध नहीं होता। सब फतवे और फपल उठायी हुई लाठियों जैसे लगते हैं।

दोस्तो! चिंतन के इतिहास में हर भाषा का अपना योगदान देना है — पंजाबी का भी। वारिस शाह की और शहीद उधमसिंह की भाषा को। और आज इसकी पहली आवश्यकता यह है कि हम पंजाबी पत्रकारिता को तक का शिष्टाचार दें।

यह भी सच है कि ऐसी पत्रकारिता अनेक लोगों की रुचि को असह्य है, पर मैं उन्हें भी चुप रहने का दोषी जरूर कहूंगी। दोस्तो! आप की रुचि आप से आवाज मांगती है कि आप उसे एक नयी 'हां' करें। और अच्छे भविष्य के पैरों को अच्छे वर्तमान का धरातल दें।

सत्ता का सिर धारण करके, अगर, अंकुश का प्रयोग अपने सिर के लिए नहीं है तो वही नृशंस-राज हो जाता है।

नेता के हाथों में ग्रहण की हुई नैतिकता जब 'स्वयं' के लिए नहीं होती तो पाखंड राज चलता है।

मज़हब के मस्तिष्क को जब चिन्तन नसीब नहीं होता तो वह निरा वेश होता है।

लेखनी की शक्ति को यदि अपनी आलोचना का अंकुश प्राप्त नहीं है तो उसी शक्ति के हाथ सत्य के लहू से लथपथ हो जाते हैं।

गणेश का अपने धड़ का सिर, और अपने हाथ का अंकुश, ज़िन्दगी के एक महान अर्थ का चित्र बनकर खड़े हुए हैं। हमारे सारे विश्व का दुखान्त यह है *कि हमने उन दो प्रतीकों को संयुक्त करने की बजाय पृथक् कर दिया है।*

सिर हम अपने लिए चाहते हैं और अंकुश दूसरे के लिए।

गणेश नाम के साथ जुड़े हुए विष्णु का एक आदेश है—"सब कार्यों के आदि में इस का पूजन करो!" यही पूजन 'स्वयं' को पहचानना है—स्वयं शीश और स्वयं साधना के रूप में।

एक हाथी सिर का अपने ही हाथ में अंकुश लेकर बैठना—सचमुच विश्व का महानतम चिन्तन है।

हम गद्दार

मैं नहीं जानती —दुनिया म पहली कौन सी राजनीतिक पार्टी थी और समय का क्या दबाव था कि उसे लोगों को आंखों से ओझल होना पड़ा था। इसी तरह यह भी नहीं जानती कि दुनिया की वह कौन-सी वस्तु थी जिसकी लोगों को बहुत जरूरत थी, और कौन से पहले मुनाफाखोर ने उसे तहखानों मे डाल दिया था। पर यह यकीनी तौर पर जानती हूँ कि इतनी तकनीकी तरक्की के होते हुए भी, यह ऐसा समय है जब इन्सानी रिश्ते जमीनदोज हो गये हैं।

मर्द और औरत के बड़े निजी रिश्ते से लेकर, इन्सान और राज्य के रिश्ते तक म, एक ऐसा सम्बन्ध होता है, जो एक बहुत कोमल और सुन्दर चीज हो सकता था, पर वही आज अंग अंग को छीलता हुआ किसी से पहचाना नहीं जाता। यूँ तो ब्याह आज भी जश्न के साथ मनाये जाते हैं, चुनाव आज भी उत्साहपूर्ण नारों के साथ लड़े जाते हैं, और वफादारी की कसमे आज भी उसी तरह सजावटी रस्मों के साथ खायी जाती हैं, पर घरों की सजें भी उसी तरह चुप और उदास हैं जैसे हुकूमती कुर्सियाँ। मेजों और कुर्सियों ने जैसे अपनी-अपनी किस्मत के आगे हारकर सिर झुका दिया हो।

नहीं जानती—किस ने किस पर वार किया है, कोई चीज हर जगह मर रही है, और हवा म एक गन्ध भरी हुई है—जिस म हम सब साँस ले रहे है। और कोई चीज बहुत जोर से हँस रही है—यह उद्देश्य की हँसी है, पर कैसा उद्देश्य! लगता है उस की जून बदल गयी है, और उसी अभिशप्त उद्देश्य की हँसी बहुत भयानक हो गयी है। कोई ऊँची विद्या की प्राप्ति के लिए कमाइयाँ लुटाता है, पर किसी इल्म की खातिर नहीं, किसी उस साधन की खातिर जहाँ लुटायी हुई कमाई को गुणा दर गुणा करके लौटाया जा सके। कोई दोस्तियाँ गाँठता है, किसी के दुख सुख म शरीक होने के लिए नहीं या विचारों के किसी विनिमय के लिए नहीं, सिर्फ दूसरे के साधना पर पैर रखकर आगे बढ़ जाने के लिए। ब्याह की सेज भी तन और मन की साझेदारी के लिए नहीं होती, और

चाहे किसी भी उद्देश्य से हो, और चाहे सिर्फ इसलिए कि औरत का कानूनी-दर्जा बनना समाज की गठन में शामिल है।

जिन्दगी के बहुत क्षेत्र हैं जहाँ नित्य का इन्सानी वास्ता जिन्दगी की जरूरतों का हिस्सा है—पर हर वास्ता शंकाओं से भरा हुआ, और हर चीज बिकाऊ—इन्साफ से लेकर इन्सान तक।

तालियों की गूँज अभी कानों में ताजी होती है कि उद्देश्य का रूप बदल जाता है। कल की हार आज की जीत बनती है, तो बगावत जैसा लफ्ज उसी पल बदला बन जाता है। किसी के पैरों के नीचे कुचले हुए लोग बल पाते हैं तो सिर्फ जगह की अदला बदली के लिए, कुचलनेवाले पैरों की जगह पर खड़े होने के लिए। कल बगावत जिनकी आस्था होती थी, वही आज अगर जगह की बदली कर लें, तो सबसे पहले आनेवाले कल की बगावत का रास्ता बन्द करते हैं।

एक रोमानियन नज्म सामने आकर खड़ी हो गयी है, जिस ने एक भविष्य-वाणी की थी कि वह दिन जल्दी आयेगा जब हर चीज कागज की बनेगी—मनुष्य की चीखें कागज के सांपों की तरह रेंगेंगी और धरती कबाब खाकर उन लोगों से हाथ पोंछेगी जो पेपर नपकिन बन चुके होंगे—और वह दिन आ गया है

इस समय मैं ऐन्थनी विवन की आत्मकथा पढ़ रही हूँ, और इस सब कुछ के विद्रोह में उस की चीख सुनायी दे रही है— "हम सब गद्दार हैं—क्योंकि हम प्यार करना भूल गये हैं।'

भले ही यह सच है कि इन्सानी कद्रों और कीमतों की अन्तिम मौत नहीं है, पर इन्सानी आचरण की ऐसी गिरावट है कि कद्रें-कीमतें डरते हुए कहीं छिप गयी हैं। और इस मौत जैसी खामोशी में अब सिर्फ किसी एन्थनी विवन की चीख सुनायी देती है

सिरकाट राजा की बेटी

'रानी कोकिला' पंजाब की वह प्राचीन कहानी है जिसका काल अभी तक इतिहासकार निश्चित नहीं कर सके हैं। पर इस कहानी को शताब्दियों से ढोल-सांगी बजानेवाले गाते आ रहे हैं। और मनुष्य की कल्पना पर इसका अधिकार शताब्दियों से है। कहानी है—क्षत्रियों की एक सुन्दर लड़की एक दिन नदी में नहाने गयी तो वासुकी नाग से उस के गर्भ ठहर गया, और उस की कोख से सलवान का जन्म हुआ जो वासुकी नाग की सहायता से राजा बना। उस ने रानी इच्छरां से विवाह किया। उन्हीं दिनों एक बार परीज़ादी लूना और परियों के साथ धरती देखने आयी तो एक पेड़ से अटककर उड़ने की शक्ति खो बैठी। उसे एक चमार ने बेटी बनाकर पाला। बाद में उस के रूप पर राजा सलवान मोहित हो गया। वह राजा सलवान की दूसरी रानी बनी। पर राजा का बुढ़ापा कोकिला के दिल का दर्द बन गया। और वह अपने सौतेले पुत्र पूरन के रूप पर मोहित हो गयी। पूरन कैसे जती सती रहा और कैसे अपने राजा पिता के घर से दुत्कारा गया, वह एक अलग कहानी है, पर लूना के घर जो राजकुमार जन्मा उस का नाम रसालू था जिस के नाम के साथ दुनिया भर की बहादुरी की कहानियाँ जोड़ी जाती हैं। दूसरी ओर एक सिरकाट राजा था, जिस का राज्य अटक दरिया के किनारे की पहाड़ियों पर था। वह चौपड़ खेलता था और हारनेवाले से एक ही शर्त किया करता था जिस के अनुसार उस का सिर कटवा दिया करता था। इस तरह खोपड़ियों के ढेर लग गये तो उस का नाम सिरकाट राजा पड़ गया। रसालू ने इसी राजा के साथ चौपड़ खेली और जीतकर सिरकाट राजा की बेटी कोकिला को अपने महल में ले आया। कोकिला का जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन राजा रसालू जीता था। कोकिला को उस ने अपने हाथों से पालकर महलों का शृंगार बनाया। राजा रसालू को एक

ही शौक था, शिकार खेलने का। सो कोकिला सारे दिन हीरे मोती पहनकर अकेली महल की खिड़की में बैठी रहती। एक दिन कोकिला ने जगल मे अपने बाल खोले तो बालो की सुगध पर मोहित होकर जगल के हिरन आकर एकत्र हो गये। हीरा नामक हिरन इतना मुग्ध हो गया कि राजा रसालू ने ईर्ष्या वश उस हिरन के कान काट डाले। हीरा ने गुस्से मे आकर होडी नामक एक राजा को उकसाया और जिस समय रसालू जगल मे शिकार खेलन गया हुआ था उस समय उसे कोकिला की सुदरता की एक झलक दिखा दी। राजा होडी कोकिला का आशिक बना, पर महल के तोते और मैना ने उस की चुगली कर दी और वह रसालू के हाथो मारा गया। और फिर बदले मे होडी के भाइयो के हाथो रसालू भी मारा गया।

यह कहानी पता नही ऐतिहासिक या मिथक है, पर प्रतीकात्मक अवश्य है। और शायद प्रतीक इतने बलवान होत हैं कि बदलते हुए समय के साथ रूप बदलकर शताब्दियो के बाद भी मन को छील जाते हैं। यही कहानी पढ रही थी कि कोकिला सोये हुए अक्षरो मे से जागकर बोल उती—'मेरा—नाम राजनीति है" मैंने चौंककर उस के चेहरे की ओर देखा। पूछा—'क्या कहा? राजनीति?" वह हस पडी—"हाँ राजनीति। मेरी आयु मनुष्य के इतिहास जितनी है। मैं हर बार किसी-न-किसी सिरकाट राजा के घर मे जन्म लेती हूँ, कोई रसालू चौपड की बाजी जीतता है, और मुझे अपने महलो मे डाल लेता है। मैं उस से बहुत कहती हूँ—'जिन्होंने हमारी सुध ली, राजाजी! हमे उन्ही के साथ मरना जीना है' और एकात मे पूछती—'राजाजी! मैं तुम्हारी पत्नी हूँ या बेटी?' पर राजा शिकारी होत हैं, वे दिलो के रिश्ते क्या जानें—मेरा साज-सिंगार व्यथ जाता। फिर मैं अपनी सूखी जिन्दगी से घबराकर किसा होडी से इश्क करती तो महलो के तोते चुगली खाते और मेरा आशिक मारा जाता फिर राजा रसालू मेरे उसी आशिक का कलेजा निकालकर कबाब बनाता और मुझ से खाने के लिए कहता "

मैं हैरान होकर कोकिला से कहती हूँ—"पर तुम ने कबाब थूक दिये थे, और महल से कूद पडी थी " वह जवाब मे मुसकराती है, कहती है, "पर मैं मरी नहीं, सिर्फ घायल हुई थी, और मुझ घायल को किसी धीमर ने पट्टियाँ बाधकर अच्छा कर लिया था "

कहानी आगे चलकर मेरे मन में सूत्र जोडती है—हाँ, सचमुच फिर काकिला की कोख से धीमरो का वश चला था, और मैं उस से जल्दी से पूछती हूँ—"फिर दुखो की मारी राजनीति से ब्याह किया वह एक कमेरा था। यह श्रमिक और कमेरे तुम्हारी कोख से पैदा हुए हैं। बताओ, फिर आज तुम्हारी औलाद क्यों उन

एक आवाज

शायद अचेतन मन का काई विचार था जो साकार सपना बन गया। देखा—देवी सुन्दरी के समान एक औरत है, जिसकी ओर हैरान होकर देखते हुए मैं ने उस का नाम पूछा तो वह बोली—'मेरा नाम सीता है।' मेरे विचारो का सिरा इतिहास के प्रसिद्ध पात्रो से जुड गया। पूछा—'राजा जनक की बेटी सीता ?' वह हँस पडी। बोली—'कहानीकार ने मुझे एक आकार दिया था, प्रतीकात्मक आकार। अब सब मेरे अस्तित्व को उसी से पहचानते हैं। शताब्दियाँ हो गयी हैं, मैं उस प्रतीक से जुड गयी हू। पर मैं प्रतीक मुक्त होना चाहती हूँ' शायद मैं बहुत हैरान थी, बोल नही सकी। वह ही कहे जा रही थी, 'मेरा कहानीकार अगर मुझे मनुष्य का आकार न देता तो शायद मेरे दर्द की कहानी को कोई इस तरह कान लगाकर न सुनता। मैं उस की ऋणी हूँ। पर मुझे नही मालूम था न मेरे कहानीकार को, कि प्रतीक इस तरह वास्तविकता बन जायेगा कि उस मे लिपटा हुआ मेरा अस्तित्व खो जायेगा। मेरा नाम सीता है, पर लोग यह भूल गये हैं कि सीता हल की नोक को कहते हैं'

मैं ने हैरान होकर पूछा—'इतिहास यह तो कहता है कि तुम राजा जनक को खेतो मे मिली थी'

उस ने कहा, "देखो! वास्तविकता का इशारा कहानीकार ने कितने सुन्दर ढग से दिया था, पर लोग समझे नही। अन्न के लिए अगर हल की नोक चाहिए, तो और भी बहुत कुछ चाहिए—धरती चाहिए बीज चाहिए पानी चाहिए राजा जनक एक अच्छे दिल के राजा थे। उन्होने कमेरों और किसानो को जमीन दी, बीज दिये, पानी की नहरें दी—यानी लोगो को रोजी और रोटी देने के लिए मुझे अपनी छत्रछाया दी। राजा अपनी प्रजा का पिता होता है। उन्होंने लोगो की मेहनत के सिर पर अपना रक्षा का हाथ रखा"

'और राजा रामचन्द्र ?"

"वह भी अच्छे राजा के प्रतीक थे जिन्होंने लोगों के हक को और मेहनत को पहचाना। हक और मेहनत को महलों में जगह दी, उन्हें राज काज का अधिकारी बनाया।"

"पर चौदह बरस के बनवास का शाप?"

"लोगों के हक को तो राजा सदा से ही देश निकाला देते आये हैं "

"और रावण?"

"जिस ने मेरी कहानी लिखी है उस ने स्पष्ट लिखा है कि रावण अधराक्षस था। राक्षस राजा सदा ही लोगों के हक और लोगों की मेहनत चुराते आये हैं कहानी में साफ़ लिखा है कि एक बार रावण ने ब्रह्मा से वर लिया था कि कोई भी देवता उसे मार नहीं सकेगा। पर जब धरती पर उस के अत्याचार बहुत बढ़ गये तब विष्णु ने चिन्तित होकर विचार किया कि उसे मारने का क्या उपाय किया जाये। उन्हें ख्याल आया कि अब भले ही कोई देवता उसे नहीं मार सकता पर मनुष्य तो मार सकता है। इसी लिए उस ने मनुष्य के चोले में जन्म लिया। इस का अर्थ समझते हो?"

"खोलकर बताइये।"

"यही कि बुराई अपनेआप नहीं मरती, न केवल सोचने से खत्म होती है। उस के लिए मनुष्य को कर्म की आवश्यकता है—चेतन जतन की। उस से जूझना होता है। उस में लड़ते हुए घायल भी होना होता है—तभी तो कहानी में लंका जलायी जाती है जंग लड़ी जाती है, और लोगों के हक को स्वतन्त्र करवाया जाता है "

"तब फिर राम के हाथ से सीता की परीक्षा क्यों?"

"क्या धन को मेहनत की आग में से नहीं गुज़रना पड़ता? हर दर्शन को चिन्तन की आग से गुज़रना पड़ता है। हर ज्ञान को तपस्या की आग में से, हर हक को योग्यता की आग में से "

"पर अन्त में सीता को फिर महल त्यागने पड़े। उस के बच्चों का जन्म भी महलों में नहीं हुआ, ऋषि-कुटिया में हुआ "

"यही तो कहानी का सार है—समय का चिन्तन महलों में जन्म नहीं लेता मेहनत की रूह वनों में भटकती है उस के पाँव में आज भी छाले हैं हाथों में आज भी काँटे हैं "

"तो ऋषि-कुटिया में जन्मे लव-कुश?"

"चिन्तन का प्रतीक हैं—समाज और राजनीति को बदलने के दो शाश्वत विचार, जिन की जननी हल की नोक है, और राजा पिता उस की क़द्र का और बेक़द्री का प्रतीक।"

"शायद इसी लिए कहानी में राजा रामचन्द्र के दो पहलू दर्शाये गये हैं "

"इसीलिए यह गाथा हर काल की है—दो पहलू दो सम्भावनाएँ हैं सारा इतिहास टटोल लो, यह सदा बनी रही हैं बनी रहेगी "

चौंककर आँखें झपकायीं तो सामने कुछ भी नहीं था। कमरे में रखी हुई किताबों में कहीं न कहीं वह किताब अवश्य है जिस में प्राचीन देवी-देवताओं के चित्र हैं, और उन में सीता का भी पारम्परिक चित्र है, पर यह अजीब आवाज जो कमरे में ठहरी हुई है, वह किसी किताब के अक्षरों में से उठकर नहीं आयी, पर एक स्थूल सी काया धारण कर के मेरे कानों के पास खड़ी हुई है, न जाने कहाँ से आयी है—शायद कहीं वहाँ से जहाँ हल की नोक के पास कोई जमीन नहीं है, कोई बीज नहीं है, और उस के गले में अड़ा हुआ अन्न का सपना बड़-बड़ाया है

छोटे-छोटे खुदा

वक्त की गर्दिश मे से कुछ क्षणो को पकडकर एक जगह पर खडा कर लेने का एहसास जो किसी शायर को होता है, या सफेद कागजो पर काली स्याही की लकीरो स विचारों और सपनो से भरे बडे ही जिन्दा लोगो की दुनिया बना लेने का एहसास जो किसी कहानीकार को होता है—वह सचमुच कुछ घडियो, पलो के लिए खुदा हो जाने का एहसास होता है, जिन्दगी का एक अजीब तीखा नशा, जो हर लेखक की हड्डियों मे रच जाता है।

पर यह 'महामद्यपी' जहाँ अपनी उम्र के सारे साल इस नशे को खरीदने के लिए खर्च कर देता है—वहाँ उस का चेतन मन यह जानता है कि उस के लिए तीन तरह की कच्ची शराब बिलकुल वर्जित है—एक वह जिस में शोहरत का नशा होता है, दूसरी वह जिस में पैसे का और तीसरी वह जिस मे ताकत का नशा होता है। घडियों पलो के लिए खुदा हो जानेवाली उस की रचनात्मक अवस्था अगर उसके लिए अत्यन्त जरूरी नशा है तो वह जानता है कि जिस भट्ठी से यह शराब निकलती है, उस आग को चेतनता का और इल्म का इधन नित्य चाहिए, जो वह कच्ची शराब पीकर अपने अपाहिज हुए अगों से कभी नही पा सकता। इतिहास मे पहली शताब्दी के सिमोनियनो की कही हुई एक कहानी मिलती है कि एक बार सात शासको ने समय की बौद्धिकता को बन्दी बना लिया और उन्होंने उसे ऐसी यन्त्रणाएँ दी कि अन्त मे उसे वेश्या बनने के लिए विवश कर दिया। और यह अवश्य समय के विचारकों का एक लम्बा सघर्ष रहा होगा कि शासकों के हाथो से बौद्धिकता को कैसे स्वतन्त्र कराया जाये। पर यह कहानी एक बीती हुई बात नही है, इसका बहुत सारा हिस्सा हर काल और हर देश का सच है। बौद्धिकता कहानी की वह नायिका है जिसे कई शासक अपने वश मे करने के लिए उस का अति का सिंगार करते हैं और फिर अपने राजदरबार की नतकी बना लेते हैं, और कई इसे जबरदस्ती मजदूरी के क्षेत्र में भेजकर उस का कस बल तोड देना चाहते हैं।

दोनो साधन भयानक हैं, पर पहला बाहर से वैसा नही दिखायी देता जैसा दूसरा, इसलिए पहले उस का ललचानेवाला रूप कई बार खुद लेखक को आकर्षित कर लेता है और यही उस कच्ची शराब जैसा होता है जो लेखक के चेतन अगो पर अन्तत कोई घातक वार बन जाता है।

पता नहीं 'सात' शासकों की गिनती कहानी मे क्या अर्थ रखती है, पर यह प्रतीकात्मक जरूर मालूम होती है। कुछ शासक तो सीधे अर्थों मे राजनीतिक शासक थे, पर कुछ जरूर बौद्धिकता की अपनी ही विलासितापूर्ण रुचियो के प्रतीक प्रतीत होते हैं—जो उसे कच्ची शराब के नशे की ओर बरबस खीच लेते हैं। और रूह से किये हुए समझौते के अनुसार टुकडे-टुकडे रूह बेचकर इस नशे को खरीदने की आदत फिर बौद्धिकता को इस तरह बन्दी बना लेती है कि उस के लिए वेश्या हुए बिना कोई रास्ता नही रह जाता।

एक लेखक के अग सिर्फ आँखें और हाथ पैरो की सूरत म ही नही होते वह उस के इल्म की, उस की ईमानदारी की, और अपने लोगो के प्रति उस के उत्तर-दायित्व के रूप मे भी उस के अग होते हैं। और वह अपना चुना हुआ पथ सिर्फ़ साबत और स्वतन्त्र अगो से चल सकता है।

भविष्य को विचारने और सिरजनेवाला पथ सिर्फ खुदा की रीस का नशा नही है, यह सचमुच मनुष्य के इतिहास को बदल सकने का बल रखनेवाली वह शक्ति है जिस का रत्ती भर गलत प्रयोग अपने खुदा को माफ नही कर सकता।

आन्द्रे वोज्नेसेंस्की की एक कविता बरबस याद आ रही है—हम शायर गानेवाली मछलियाँ हैं, समय के अधिकारी पानी मे जाल डालते, हमे पकडते, चीरते तलते और अपनी दावती मेजा पर सजाते हैं। पर हम मछली के काँटे की तरह जरूर उन के गले में अटक जायेंगे।' यह समय के गले मे अटक जाने वाला बल उस काँटे का बल है जो परिस्थितियो से, और मौत तक से भी निर्लेप होकर जीता है और यही एक लेखक का बल होता है। उस का एक खुदाई अश।

एक सतर—एक तकदीर

वारिस शाह ने हीर का किस्सा आरम्भ करते हुए एक सतर लिखी है 'जदो इशक़ दे कम्म नू हत्थ लाइए, पहिलो रब्ब दा नाम धियाइए जी !"[1] यह एक रस्मिया सतर नही है। यह विचार मनुष्य की होनी के साथ जुडा हुआ है, उस के व्यक्तित्व के वतमान के साथ, और इसलिए उस की रचना के भविष्य के साथ।

यहाँ इशक़ दा कम्म' दोहरे अर्थों म है—एक, जब किसी इन्सान को किसी के लिए मुहब्बत के पहले कम्पन का एहसास होता है, एक चमत्कार जैसी घटना का बहुत निजी अनुभव, और दूसरा, जब वह किसी अनदेखे व्यक्ति के साथ घटी इस घटना को अपने रोम रोम मे उतारकर इस का वणन लिखने के लिए हाथ म कलम पकडता है।

अधिक स्पष्ट करने के लिए जिगर मुरादाबादी की जिन्दगी की एक घटना दोहराती हूँ—एक बार एक गजल गो जिगर के यहाँ जाकर उन्ह अपनी गजलें सुनाने लगे। जिगर कुछ देर चुपचाप सुनत रहे, फिर अचानक खोलकर बोल उठे—'मियाँ! अगर इश्क करना नही आता तो गजलें क्यो लिखते हो?" वारिस शाह की इस एक सतर का आधा हिस्सा सचमुच कलम के उस व्यवसाय को एक जुम करार देता है जो अपने इस बुनियादी सच को छोडकर आरम्भ होता है। अगर आज के पजाबी साहित्य की एक एक सतर भी टटोल लें तो कितने कलम हैं जो हम इस बुनियादी सच से आरम्भ होते हुए मिलते है?

वारिस की इस सतह का दूसरा आधा हिस्सा 'रब्ब' के नाम को ध्याने की बात करता है। यहाँ 'रब्ब' शब्द आम प्रयोग मे आने के कारण बडा साधारण हो गया लगता है, पर जिस ने किसी सचमुच के लेखक के व्यक्तित्व का भेद पाया है वह जानता है कि यह शब्द यहाँ साधारण नही है। यहाँ वारिस शाह 'स्वय' शब्द को धरती और अम्बर से लँघाकर 'रब्ब' शब्द तक ले गया है, क्योंकि

1 जब इश्क के काम को हाथ लगायें, तब पहल ईश्वर के नाम को ध्यान कर ल।

इल्म की अगमता, ईमान और अदल की यकीनी सूरत, और रूह के हुस्न की अपारता के पहलू से अभी तक मानव की कल्पना में यह प्रतिम सच है। वारिस ने सचमुच 'स्वय' 'शब्द' को ही 'रब्ब' शब्द के अर्थों मे लिखा है। इस की पुष्टि के लिए हाशिम की एक सतर दोहराती हूँ—"हाशिम तिन्हाँ रब्ब पिछाता, जिह नाँ आपणा आप पिछाता।"[1] और इस रोशनी से अगर हम आज की कृतियां को देखें तो कितनी हैं जिनके बारे मे लगता हो कि उन्हें आरम्भ करते समय किसी ने पहले 'स्वय' को ध्याया है।

'स्वय' का ध्याना एक साधना है—हर पक्ष से। इल्म के, जज़बाती अमीरी के, और तकनीकी जाँच के पक्ष से भी, और उन कद्रो कीमतो के पक्ष से भी जो आज से कही बेहतर इन्सानी नस्ल की कल्पना मे से पैदा होती हैं।

यह 'कल्पना' शब्द किसी भी यथार्थ से बचाव और विमुखता के अर्थों म नही, यह आज के यथार्थ की पीडा म से पैदा कल के यथार्थ का अनुमान है। अनुमान भी और विश्वास भी। अनुमान और विश्वास की सामर्थ्य ही बुरे यथार्थ को कभी अच्छे यथार्थ मे बदल सकती है।

वहम या भरम कही जा सकनेवाली एक लोककथा है कि बच्चे के जन्म के समय घर का बुज़ुर्ग प्रसूता की कोठरी मे एक कागज़ और कलम दवात रख दिया करता था और प्रार्थना किया करता था—'विधि माता। आप जब बच्चे के जन्म पर इस कोठरी म आयें तो बच्चे की तक्दीर अच्छी लिखकर जाये।" इस कहानी म कागज़ पर लिखे हुए अक्षरो म एक साधारण मनुष्य का 'विश्वास' देखने योग्य है (चाहे वह अक्षर वह पढ नही पायगा)—पर जो असाधारण है, साहित्यकार है, और जिसने अपने कलम से जिन्दगी के अँधेरे को एक लौ देनी है, क्या उसे अपने ही लिखे हुए म विश्वास का एक कण भर भी नसीब हुआ है?

वारिस की यह एक सतर एक निश्चित तकदीर की तरह है, जिसे भी नसीब हो।

इस सतर से दो ऐसे बुनियादी सवाल उठते है जिन का जवाब दिये जाने बिना किसी भी साहित्य की न कोई परख सम्भव है, न उस का भविष्य।

1 हाशिम। उन्होंने ईश्वर को पहचान लिया जिन्होंने स्वयं को पहचान लिया।

खट्टण गयो ते खट्ट के ले आयो[1]

जैसे हर रोज उदय होनेवाला सूरज आँखों की आदत बन जाता है, उस के लाल चमत्कार की ओर विशेष रूप से नजर नहीं जाती, उसी तरह कुछ लफ्ज होते हैं जो गा गाकर या सुन सुनकर जबान की या कानों की इतनी आदत हो जाते हैं कि उन के फलसफे की ओर कभी विशेष तौर पर ध्यान नहीं जाता। पर अगर कभी चला जाय तो हमारा 'चिन्तन' उन के मुंह की ओर देखता रह जाता है

पंजाब के बड़े आम और साधारण गीतों में एक सतर बार-बार आती है 'खट्टण गयो ते खट्ट के ले आयो' असल में गीत की अगली सतर अर्थों के लिए होती है और यह पहली सतर सिर्फ अगली के सहारे के लिए। इस पहली सतर का आखिरी लफ्ज लोटा, मुंदरी, घेला या कुछ भी तुकान्त का काम देता है, इसलिए हर अगली सतर के बोल से बदल जाता है। यह बाकी की सतर सिर्फ तुक की लम्बाई को पूरा करने के लिए होती है—लय बाँधने के लिए। सो, स्वाभाविक तौर पर सब का ध्यान अगली सतर की ओर जाता है, इस पहली की ओर नहीं।

पर इस का 'खट्टण' लफ्ज सचमुच सूरज की तरह है। जैसे धरती पर सब उगना विकसना सूरज के अस्तित्व से है, उसी तरह जिन्दगी की सब कद्रें कीमतें 'खट्टण' लफ्ज की फिलासफी से जुड़ी हुई हैं। पैसा जब खट्टण लफ्ज को छोड़कर किसी भी और लफ्ज से जुड़ता है—जैसे लेना', 'देना', 'माँगना', 'छीनना', 'बाँटना', 'चुराना', 'लूटना' या 'छिपाना' जैसे लफ्ज से, तो उस की शक्ल बदल जाती है। वह या तरस का साधन बन जाता है या पाप और जुल्म का। उस की पाकीज़गी सिर्फ 'खट्टण' लफ्ज में है और किसी लफ्ज में नहीं।

पंजाबी संस्कृति जरूर कभी ऊंची रही होगी, तभी यह लफ्ज अस्तित्व में आया और रोजमर्रा की जिन्दगी का हिस्सा बनकर आम साधारण गीतों का हिस्सा भी बन गया।

लगता है—जिस ने भी पैसे को हिकारत की नजर से देखा है उस ने इस के

[1] कमाने गया और कमाकर ले आया।

'खट्टण' लफ्ज के हुस्न का नही पहचाना है। यह एक ही लफ्ज है जो साभेदारी म विश्वास करता है—पूरा तोलने म, पूरा बोलने मे।

खट्टण लफ्ज की पृष्ठभूमि मे समझ और मेहनत जैसी ईमानदार शक्तियाँ होती हैं जो हर रचना की और हर ईजाद की बुनियाद होती हैं। खट्टण जरूरतों को अच्छी से अच्छी पूर्ति देने मे से पैदा हुआ हक होता है जिस की बुनियादी शक्ति इसान की समझ और योग्यता की जमीन म होती है। इसलिए पैस को नकारना समझ और योग्यता को नकारना होता है।

पैसे से हिकारत की जड इसके 'खट्टण' मे नही है, 'न खट्टण' म है, और जिस सामाजिक गठन मे इस का रुख उलटी तरफ मुड जाता है—मेहनत करनवाले हाथो की बजाय छीननेवाले हाथों की तरफ, वह गठन हिकारत के काबिल होती है क्योंकि उस गठन के कानून मेहनती हाथो की रक्षा नही करते बल्कि छीनने वाले हाथो की रक्षा करते हैं। और यह वह समय होता है जब सस्कृति गरीब हो जाती है क्योंकि पैसा गुण की उपज होता है, यह गुण को उपजा नही सकता।

साम्यवादिता लफ्ज को भी सही अर्थों मे किसी ने नही पहचाना है। यह हमेशा पैसे को बाटने के अर्थों मे लिया जाता है 'खट्टण' के अथ म नही। खट्टण के अथ योग्यता मे होते है, बाटने के योग्यता को नकारने मे। और इसीलिए अभी तक दुनिया के किसी हिस्से मे साम्यवादिता नही आ सकी है।

जब तक इसान का चितन पैसा कमाने की पहचान से और उसके आदर से नही जुडता, सस्कृति मानसिक तौर पर भी गरीब रहेगी और बौद्धिक तौर पर भी। सस्कृति की गरीबी न सही अर्थोंवाला कोई समाजवाद ला सकती है, न साम्य-वादिता।

एक लफ्ज का इतिहास

इन्सान के जन्म के साथ ही जो सब से पहला लफ्ज जन्मा था वह 'रक्षा' लफ्ज था—'स्वयं' से जुड़ा हुआ, भूख से और धूप पानी से 'स्वयं' की रक्षा।

और इस तरह इस लफ्ज का प्रयोग मेहनत से और मेहनत के फल से जुड़ा, उन की क़द्रों से।

और ज्ञान माल की क़द्र के साथ, इसका प्रयोग मानसिक विकास से भी जुड़ा और चारित्रिक मूल्यों से भी।

और इस तरह यह रक्षा लफ्ज अमन, इल्म और शऊर से लेकर हर तरह की कीमती चीज की क़द्र से जुड़ गया।

इस का सच सिर्फ़ यह था जो 'स्वयं' के साथ पैदा हुआ था, 'स्वयं' की आवश्यकता में से, 'स्वयं' की पहचान में से, 'स्वयं' की क़द्र में से। और इसलिए बाहर जो कुछ जहाँ क़ीमती था, सगहा था, उस की रक्षा की आवश्यकता भी अपने मूल रूप में थी—अपने पाक रूप में।

वह 'स्वयं' की नैतिकता थी

पता नहीं कब और कौन-सी भयानक घटना इसके साथ घटी, इस लफ्ज का कम उलट गया। यह हर तरह की ताक़त की बजाय हर तरह की कमजोरी की रक्षा के लिए प्रयोग किया जाने लगा। मेहनत की बजाय नाकारेपन की रक्षा के लिए, योग्यता की बजाय अयोग्यता की रक्षा के लिए, प्राप्ति की बजाय विवशता की रक्षा के लिए दलील की बजाय बेतुकी की रक्षा के लिए और उपज की बजाय आढ़त की रक्षा के लिए।

और जो भी इस उलट हुए कम के हाथों 'सुरक्षित' हो चुके थे व बहु-संख्या के आधार पर इस की पुष्टि करने लगे।

इसी 'पुष्टि' को कानून के लम्बे हाथ दे दिये गये, और इसी पुष्टि को नैतिकता की जबान की नकल उतारनेवाली जबान दे दी गयी।

दुनिया में जहाँ और जो भी भयानक है, उस की बुनियाद इसी एक लफ्ज

'रक्षा' के उलटे हो चुके अर्थों में है।

इस एक लफ्ज की तकदीर पूरी इंसानी नस्ल की तकदीर है, और इस एक लफ्ज का इतिहास पूरी इंसानी नस्ल का इतिहास है।

इसी उलट गये इतिहास का एक चीख थी, जैक लंदन के लफ्जों में—'मुझे सच के चेहरे की झलक देख लेने दो, मुझे बताओ कि सच का मुँह कैसा होता है?"

हर इंकिलाब भी एक चीख होता है, पर लहू की नदियों को चीरकर जब वह किनारे लगता है, हाथों को जरूर बदलता है, पर हाथों के कर्म को नहीं बदलता। और इसलिए यह चीख एक वक्ती चीख बनकर रह जाती है—फिर से एक चुप का हिस्सा बनने के लिए।

पर जो चीख जैक लंदन की आवाज के अर्थों में शाश्वत चीख है वह सच का चेहरा देखने के लिए है। और वह चेहरा सिर्फ तब दिखायी दे सकता है जब इस लफ्ज के उलटे हुए अर्थ सीधे हो सकेंगे। यह चीख हाथों को बदलने के लिए नहीं, हाथों के कर्म को बदलने के लिए है (सही अर्थों का इंक़लाब)—कि रक्षा के अमल को मानसिक गरीबी से जोडने की बजाय मानसिक अमीरी से जोडा जाय।

यह 'स्वयं' की नैतिकता है—हर स्वयं की नैतिकता।

रक्षा लफ्ज सिर्फ तब नैतिकता है जब यह सिर्फ अपनी जरूरत में से इस्तेमाल होता है। यह जब भी दूसरे की जरूरत के कारण बरता जाता है—अनैतिकता बन जाता है। क्योंकि वही वह जगह होती है जहाँ खडे होकर 'हक' लफ्ज दान बन जाता है और मान लफ्ज तरस हो जाता है, जो अपना भी निरादर होता है, दूसरे का भी—और इसीलिए अनैतिकता।

गुण और प्रतीक

चिन्तनशील लोगों ने कुदरत के भेदों को समझने के लिए और इन्सान को नैतिक मूल्यों का विचार देने के लिए, हर विचार को आकार दिया, यानी देवी देवताओं का स्वरूप चित्रित किया। मिथक मूर्तियाँ सामने हैं—कि कैसे भीतरी गुणों के प्रतीक खोजकर मूर्तियों के हाथों में थमाये गये ताकि साधारण व्यक्ति दृश्य से अदृश्य की कल्पना कर सके।

महाभारत के टीकाकार, द्रौपदी के पंच-पति (पाँच पाण्डव) को, उत्तरी भारत की बहु पति प्रथा को दर्शाने का प्रतीक कहते हैं। इसी तरह देवताओं की अनेक पत्नियाँ दक्षिण भारत की बहु पत्नी प्रथा को दर्शाने का ढंग कहते हैं। पर अगर इन से भी गहरी दृष्टि से देखा जाये तो अधिकांश पति या अधिकांश पत्नियाँ, अनेक गुणों का प्रतीक दिखते हैं।

जैसे समरूपता का आचरण हमें देवी-देवताओं के आचरण में बहुत प्रत्यक्ष दिखायी देता है। जैसे विष्णु के अनेक अवतार माने जाते हैं। यह एक ही तत्व के कई रूपों और कई नामों की समरूपता है। समुद्र मन्थन के समय देवताओं और दानवों के पाँवों को धरती के सहारे की आवश्यकता थी, इसलिए विष्णु ने कछुए का रूप धारण किया और अपनी कठोर विशाल पीठ पर देवताओं और दानवों के खड़े होने के लिए एक सहारा बन गया। इसी तरह वामन का, परशुराम का, राम का और कृष्ण का रूप धारण किया।

लक्ष्मी का आदि रूप पृथ्वी है, कमल के फूल पर बैठी हुई देवी। यह द्रविड कल्पना थी। आर्यों ने उसे आसन पर से उतार कर उसका स्थान ब्रह्मा को दे दिया। पर अनेक शताब्दियों तक साधारण लोगों में पृथ्वी की पूजा बनी रही तो लक्ष्मी को ब्रह्मा के साथ बिठाकर वही आसन उसे फिर दे दिया गया। लक्ष्मी का पहला रूप ब्रह्मा के साथ था, बाद में विष्णु के साथ हुआ। विष्णु के वामन अवतार बनने के समय लक्ष्मी पद्मा कहलायी, परशुराम बनने के समय वह धरणी बनी, राम के अवतार के समय सीता का रूप बनी, और कृष्ण के समय

राधा था। यह सब समरूपता का आवरण है।

इसी प्रकार ज्ञान और कला की देवी सरस्वती वैदिक काल म नदियों की देवी थी। फिर विष्णु की—गगा लक्ष्मी के सग एक और पत्नी के रूप म। और फिर ब्रह्मा की 'वाक् शक्ति' के रूप म ब्रह्मा की पत्नी। यह सब पति पत्नियाँ बदलने का रूप प्रतीकात्मक है। गुणों की समरूपता।

समरूपता का उदाहरण महादेवी भी है जो अपन पति से कुपित होकर अग्नि मे भस्म हो गयी थी और सती कहलायी थी। परन्तु महादेवी का वही एक रूप नही है, वह अम्बिका भी है हेमवती भी, दुर्गा, पार्वती और काली देवी भी।

काली देवी का मूल रूप भी अग्नि देवता की पत्नी के रूप म था। फिर महादेवी सती के रूप मे हुआ।

आधार, गुण होते हैं, मूल तत्त्व जिन के बाहरी प्रतीक खोजकर उन्हें चित्रित किया जाता है।

जैसे ब्रह्मा का आसन जल है जो जिन्दगी के मूल स्रोत— जल के रूप मे उत्पत्ति का प्रतीक है।

विष्णु का आसन कमल फूल है जो उगने-विकसित होन, और निर्लिप्त होन का प्रतीक है।

विष्णु का सुदर्शन चक्र एक अजेय शस्त्र का, गदा— राजसी सत्ता का, और शख दानवों पर विजय की घोषणा का प्रतीक है।

शिव के सारे बाहरी चिह्न, उसकी भीतरी बहुमुखी शक्ति के प्रतीक है। शेर की खाल का आसन गले की माला और घुमक्कड साधुओं का कमण्डल उस के सन्यासी पक्ष को दर्शाते हैं, और लम्बे बालो का जूडा, और चन्द्रमा की एक किरन, उत्पन्न होन की प्रवृत्ति को। यह जन्म और विकास के प्रतीक हैं। इसी तरह शिवलिंग सृजन शक्ति का प्रतीक है। शिव की जटाओ से निकलती हुई गगा (गगा का रूप विष्णु के चरणो से निकलने का भी है) जीवन के स्रोत—जल का सकेत है। शिव का शख—ध्वनि का अर्थात जीवन के सचार का प्रतीक है, और त्रिशूल जीवन के अन्त का, अर्थात मृत्यु का प्रतीक है।

त्रिमूर्ति—उगन, विकसित होन, और मुर्झाने के क्रम का साकार रूप है।

सरस्वती की चतुर्भुजाओ म से दो म ली हुई वीणा—लय और सगीत का प्रतीक है। तीसर हाथ म ली हुई पाण्डुलिपि उस की विद्वत्ता का प्रतीक है और चौथे हाथ म कमल फूल निर्लिप्तता का प्रतीक है। उसका वाहन हस है—दूध पानी, यानी सच और झूठ को अलग कर सकने का प्रतीक है।

ब्रह्मा द्वारा किये गय यज्ञ के अवसर पर सरस्वती के पहुँचन म देर हो जान के कारण ब्रह्मा का गायत्री से विवाह कर लेना, वास्तव म गायत्री मन्त्र से, अर्थात् चिन्तन से, जीवन के शून्य को भरने का सकेत है। गायत्री की मूर्ति म

उस के पाँच सिर दिखाये जाते हैं। यह एक से अधिक सिर मानसिक शक्ति के प्रतीक हैं। गायत्री चिन्तन मे कमल-आसन पर गायत्री मन्त्र भी लिखा हुआ मिलता है, जो मन्त्र को ही आकार के रूप मे दर्शाने का सकेत है।

इसी तरह गणेश का हाथी का सिर उस के इस गुण के आधार पर है कि वह घने जगलो की कठिनाइयो को भी चीरकर गुजर सकता है, पथ की बाधा बनकर खडे हुए पेडो को भी उखाड सकता है। गणेश की चूहे पर सवारी भी एक प्रतीक है—कि जहाँ बन्द दरवाजोवाले किले हैं वहाँ भी कोई बिल बना कर भीतर प्रवेश करने का साधन उसके पास है। उस के चारो हाथो मे थामे हुए चार शस्त्र—शख, चक्र, अकुश और पद्म उस के बाहुबल का प्रतीक हैं। (गणेश के हाथ मे जो पद्म है वह कमल फूल के अर्थों मे नही है, उसी के आकार के एक शस्त्र गुरज के अर्थों मे है)।

इसी तरह गणेश की दो पत्नियाँ—सिद्धि और ऋद्धि, उस की शक्ति और बुद्धि का प्रतीक हैं।

ये कुछ थोडे से उदाहरण मैं ने सिर्फ इसीलिए दिये हैं कि लेखको के हाथ मे लिये हुए कागज और कलम जैसे औजार उन की कैसी मानसिक शक्ति और बुद्धि के औजार हैं, इस अर्थ को पहचाना जा सके।

जब आन्तरिक शक्तियाँ समय पाकर बाहरी प्रतीको के अनुसार नही रहती तो वह सचमुच शक्तियों का भी निरादर होता है, और उन के बाहरी प्रतीकों या औजारों का भी।

जैसे विश्वकर्मा—तेसा, आरी और हथौडी जैसे लोहार और बढई के काम के औजारों का देवता समझा जाता है और औजारो के निरादर से अनुमान किया जाता है कि यही औजार उसे थामनेवाले को काट देंगे, यह कोई वहम या भ्रम नही है। यह काम से आदर को जोडने की विचारणा और साधना है। इसी तरह हाथ मे कागज और कलम लेनेवाले व्यक्ति का, कलम का अनुचित उपयोग करना, उस के औजारों का अपमान है। यह अनुचित उपयोग बदलाखोरी की भावना से निन्दा-साहित्य के रूप मे भी हो सकता है, और पैसे के लिए बेचे गये कलम से सच को झुठलाने के रूप मे भी। यह दोनो हत्या के रूप हैं और जिन्दगी के साधनो की कत्ल के रूप मे उपयोग करने का कर्म।

आज हमारे देश के कई कलमोवालों के नाम सी आई ए के तनखाहदार एजेन्टो के रूप मे गिनाये जाते हैं। खरीदार कोई भी हो—सिर्फ अमरीका का प्रश्न नही है, इस की जगह अपने-अपने देश की सरकारें भी हो सकती हैं। प्रश्न अपने पवित्र औजारो के अनुचित उपयोग का है।

विश्वकर्मा की हथौडी का अनुचित उपयोग अगर हाथो को काटकर रख सकता है तो दोस्तो! विश्वास रखना कि कलम जैसे औजार का अनुचित उपयोग भी अपनी ही आत्मा का क़त्ल सिद्ध होगा।

दीवारो मे चिनी हुई लडकियाँ

दुनिया के लोकगीत न जाने कैसा आँगन होते हैं, जहाँ सदियो से मर चुकी जिन्दगियाँ, रूहें बनकर एक साथ मिलकर बैठती हैं

उन के चर्खे—उन की भाषाएँ— एक दूसरे से अपरिचित होती है, पर अजीब सयोग कि उन चर्खों पर कातने के लिए दु खो की पूनियाँ एक सी होती हैं

दुनिया के अलग अलग देशो की भाषा शायद अलग-अलग जगलो की लकडी होती है, जिन की जमीन अलग अलग होती है, पर रूप गुण और कर्म एक सा होता है। और उन से बनाये गये जि दगियों के चर्खों मे से दद की एक जैसी आवाज सुनायी देती है।

अभी अभी मैंकेडोनियन भाषा का एक लोकगीत मुझे मिला है, जिस मे काँगडा के गीत 'कुल्ल कुल्ल' की कथा, बिलकुल ज्यों की त्यो वर्णित है।

काँगडा के गीत मे—गाँव 'चढी' के लोगों ने जब कुल्ल (नहर) निकाली तो पानी ऊँचाई पर नहा चढता था। मकेडोनियन गीत मे जब शतरगा का पुल बन रहा होता है, तो जो दीवार दिन मे बनायी जाती है, वह रात को गिर जाती है।

काँगडा के गीत मे राजा को सपना आता है कि कुल्ल का पानी तब चढगा अगर यहाँ किसी की बलि दी जाये। और मैंकेडोनियन गीत मे जो नौ भाई, नौ राज, पुल का निर्माण कर रहे हैं, उ हे अकस्मात यह खयाल आता है कि यह दीवार तब तक नही बनेगी, जब तक किसी को दीवार मे न चिना जाये।

काँगडा का राजा सोचता है कि बेटे की बलि दने से कुल का नाश हो जायेगा, इसलिए बहू की बलि दूगा, और बेटे को फिर से ब्याह लूगा। उधर नौ राज सोचते हैं कि अगली सुबह जिस राज की बीवी सुबह पहले खाना लेकर आयेगी, उसे दीवार म चिन देंगे।

काँगडा के गीत मे राजा बहू को मायके से बुला भेजता है, उस दिन बहू

जब शृंगार करती है उस की माँ के कलेजे मे हौल-सा उठता है कि मगलवार का जाना बुरा, पर बहू अपने ससुर का हुक्म नही टाल सकती। उधर मैकेडोनियन गीत म सभी राज घर जाकर अपनी अपनी बीवी से कह देते हैं कि वह सुबह खाना लेकर न आये। पर सबसे छोटी उम्र का राज 'मैनोल' अपनी बीवी से कुछ नही कह सकता, और वह सुबह खाना लेकर पहुँच जाती है।

कांगडा के गीत मे बहू जब कुल्ल की यात्रा पर जाने लगती है, सास के पाँव छूती है, तो सास के दिल मे हौल सा उठता है, मुँह से निकलता है, 'बुरी आयी जी '' और उधर मकेडोनियन गीत म मैनोल की बीवी जब खाना लेकर पहुँच जाती है, मैनोल फूट-फूटकर रोने लगता है

एक जवान सुदरी कांगडा के गीत के अनुसार दीवारो में चिनी जाने लगती है, और जवान हसीना मैकेडोनियन गीत के अनुसार और जिस तरह कांगडा के गीतवाली सुदरी तडपकर कहती है "अग्गे तां चिणने ओ, पिच्छे वी चिणने ओ, छातियां रक्खो लैणी नगी जी, इसा बत्ता अजन सुर्जन औंगे, चिचुए दा घुट्ट पियोंगे जी"—उसी तरह मैकेडानियन गीत की हसीना बिलखकर कहती है "एक न चिनना दायी बहियाँ, एक न चिनना बायी चूची, मैं बिटवा को दूध पिला लूं "

और मन भर भर आता है कि फर्क सिर्फ जमीन का होता है, काल का होता है, क्या मानवी चितन के दुखात की नीव हर स्थान और हर काल मे एक ही होती है?

मोहब्बत एक वक्री ग्रह

ज्योतिष शास्त्र मे वक्री ग्रह का स्वभाव इस तरह बयान किया जाता है कि इस ग्रह के समय, इन्सान के पाँव पहले लपककर आगे बढते हैं, फिर वही पाँव घबराकर पीछे हट जाते हैं

इतिहास गवाह है कि सदियो से औरत के लिए 'मोहब्बत' लफ्ज एक वक्री ग्रह बना हुआ है

कोई ग्रह वक्री ग्रह क्यो बनता है— इसका सम्बन्ध आसमानी मौसमों की हलचल से होता है "Critical states of various mixtures is the pres sure temprature composition'—जिसे ज्योतिषी अपने सीधे सादे लफ्जो मे बताते हैं कि सूरज के गिर्द घूमते हुए ग्रहो मे से जब किसी मोड पर कोई ग्रह जरूरत से ज्यादा सूरज के क्षेत्र मे आ जाता है, वह उस की कशिश से उस की ओर खिंच जाता है। पर सूरज का तेज उस की सहन शक्ति से अधिक होता है, अगली ढलान उस की मदद करती है, और उस के पैर पीछे की ओर लौट आते हैं

पर औरत जात के लिए 'मोहब्बत' लफ्ज वक्री कैसे बना इसका सम्बन्ध सदियो से चले आ रहे सामाजिक नजरिये की हलचल के साथ है जिसे RHODE आइलैंड यूनिवर्सिटी की साइकालोजी डिपार्टमेंट की प्रोफेसर बर्निस लाट (Bernice Lott) ने 'जैंडर रोल आइडियालोजी' का नाम दिया है।

कोई ग्रह कितनी देर तक वक्री रहता है—इसकी मियाद ग्रहो की चाल के अनुसार होती है। जसे मगल जो फासला डेढ महीने मे तय करता है, बृहस्पति तेरह महीनो मे करता है, और शनि ढाई साल मे। उसी हिसाब मे वह ग्रह वक्री रहते हैं— मगल और बृहस्पति थोडे से दिन और शनि कुछ महीने। पर शनि भी ज्यादा से ज्यादा छह महीने तक वक्री रह सकता है, इससे ज्यादा नही। पर औरत जात का दुखान्त यह है कि उस के वक्री ग्रह की मियाद उस की उम्र जितनी लम्बी होती है।

इस मियाद की तशरीह में आयें तो इसका सम्बन्ध हमारे सामाजिक नज़रिये के उस हलचली मौसम के साथ जुड़ जाता है, जिस ने औरत के रोमांस में दावेदारी के अर्थ को जोड़ दिया, उस की मोहब्बत के एहसास में कुर्बानी के अर्थ को, और उस की खुशी में दर्द के अर्थ को। और यही बुनियादी प्रशिक्षण, औरत की प्रत्यक्षवादी और प्रमाणवादी मोहब्बत में मायूसी और व्यर्थता मिला गया। इसी कारण उस की मोहब्बत में नफ़रत भी शामिल हो गयी, मजबूरी भी, और उस का नज़रिया वक्री ग्रह बनकर हमेशा एक लपकता हुआ कदम मर्द की ओर बढ़ाता है, और फिर सहमकर डरकर वही कदम पीछे हटा लेता है।

वर्निस लॉट की 'जेंडर रोल आइडियालोजी' उस चिंतन शैली के अर्थों में है—जो औरत को हमेशा नाबालिग अवस्था में रखती है। और यही बुनियाद होती है जिस के कारण मोहब्बत लफ़्ज़ के अर्थ मर्द के लिए और हो जाते हैं, औरत के लिए और।

यही फ़र्क मर्द को शक्ति के अर्थ दे जाता है, और औरत को कमज़ोरी के। और जहाँ मर्द की परख पहचान उस की काबलियत के साथ जुड़ जाती है, वहाँ औरत की सिर्फ़ उस की जवानी के साथ और जिस्मानी खूबसूरती के साथ।

औरत का यही वसफ़ (सब पहलुओं से सिमटकर सिर्फ़ एक पर आ गया वसफ़) औरत और मर्द की साझेदारी में औरत को उस का एक पक्ष बनाने की बजाय, एक वस्तु बना देता है।

ज़ाहिर है कि ज़हनी काबलियत की मियाद बहुत लम्बी होती है, और जिस्मानी कशिश की बहुत छोटी। इनका लेनदेन दोनों के लिए सिर्फ़ कुछ समय की तसल्ली बनता है, पर उस के बाद दोनों पक्ष थक जाते हैं, हार जाते हैं।

हमारे सामाजिक ढाँचे में क्योंकि आर्थिक क्षेत्र मर्द के हाथों में है, इसलिए मर्द की उदासी और थकावट उस के लिए घातक साबित नहीं होती पर औरत को वह तन मन से तोड़कर उस की बाकी ज़िन्दगी के लिए उसे अपाहिज बना जाती है।

इस तवारीखी दुखान्त की जड़ में वही 'जेंडर रोल आइडियालोजी' है जिस के कारण औरत—मोहब्बत के अर्थ रोटी, कपड़े और घर की हिफ़ाज़त में से खोजती है। जबकि हँसकर यह कीमत चुकानेवाला मर्द, कुछ देर बाद इसे बहुत महँगा सौदा समझकर खीझ उठता है। और मोहब्बत लफ़्ज़ दोनों के लिए (अलग अलग पहलू से) सिर्फ़ एक छलावा बन जाता है।

बालिग मोहब्बत छलावा नहीं होती। पर बालिग मोहब्बत के अर्थ हैं—बराबर शख्सियतवाले मर्द और औरत का मिलन। जिस में दोनों का अकेला-

पन टूटता है, पर दोनों में से किसी की भी शख्सियत नहीं टूटती।

दुनिया का साहित्य भले ही और हजारों बरस मोहब्बत की चमत्कारी कहानियाँ लिखता रहे, पर वह पलों का यथार्थ रहेगा, बरसों का यथार्थ नहीं बन सकेगा, जब तक खालिस मोहब्बत के चिंतन तक पहुँचने के लिए, सामाजिक नजरिये की दी हुई यह 'जेंडर रोल आइडियालोजी' नहीं बदलेगी।

कौवे-आदमी

पूर्वी आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की एक दन्त-कथा है कि किसी जमाने में आग का रहस्य सिर्फ सात औरतों को मालूम था, और किसी को नहीं। उन सात औरतों के पास सात छड़ियाँ थीं, जिन के एक ओर के नुकीले सिरों से वे जमीन की खुदाई, बुआई करती थीं, और दूसरे गोल सिरों में वे आग को सँभाल कर रखती थीं। और जब जमीन में से कोई फसल उगती पकती थी, उस के अन्न को वे आग पर पका लेती थीं।

इसी तरह जंगली जानवरों को भी वे छड़ियों के नुकीले सिरों से पकड़तीं, और गोल सिरों में रखी आग से लकड़ियाँ जलाकर, जानवरों को भून-सेंक कर खा सकती थीं।

बस्ती में एक कौवा आदमी था, जिसे हमेशा उन औरतों से ईर्ष्या होती थी, और वह सोचता रहता था कि किसी-न किसी तरीके से वह आग का रहस्य जान ले।

वह सात औरतें सारे गाँववालों को अन्न पका कर देती थीं, जानवर भून कर देती थीं, पर उस कौवे आदमी का दिल ईर्ष्या की आग में हमेशा जलता रहता था

एक दिन कौवे आदमी ने यह बात जान ली कि वे सात औरतें चाहे बहुत निडर हैं, सारा जंगल उनकी सेवा में रहता है, पर वे साँप से डरती हैं। सो कौवे आदमी ने जंगल में एक जगह बहुत सारे साँप घेर कर गड्ढे में भर दिये। वहाँ बहुत सी मिट्टी डालकर गड्ढा भर दिया। और जब वे सातों जंगल में गयीं, वह भी पीछे पीछे चलता गया। एक जगह जब वे पेड़ के नीचे आराम कर रही थीं, कौवा आदमी जाकर कहने लगा कि आज आपको शिकार नहीं मिला, इसलिए आप भूखी और थकी हुई हैं। मैं आपको एक खजाने का पता बताता हूँ, आप छड़ियों से यह खजाना खोद लीजिए और इस तरह वह सातों औरतों को उस गड्ढे के पास ले गया, जहाँ उसने साँप दबाये हुए थे।

औरतो ने जब छडियो से उस स्थान की खुदाई की, तो अचानक कई सांपो ने औरतो पर हमला कर दिया। उन्होंने घबरा कर छडियो से कई सांप मार डाले, पर फिर भी सांपों से डर कर वे जगल की ओर दौडीं, इस घबराहट मे उनकी छडियो के गोल सिरे खुल गये, और आग की कई चिंगारियां बाहर गिर पडी

कौवे-आदमी ने जल्दी से वह चिंगारियां इकट्ठी कर ली, और बस्ती म आकर आग का राजा बन गया

सातो औरतें कौवे आदमी की इस चालाकी से इतनी उदास हो गयी कि वे धरती को त्याग कर आसमान पर चली गयी। तब से व सात तारे बन कर आसमान मे रहती हैं (ये वही सात तारे हैं, जिन्हें हम अपने देश म सप्त ऋषि कहते हैं)।

कौवे-आदमी ने बस्ती के सारे लोगो को अपने से दूर हटा दिया। उन का अन्न पकाने से भी इन्कार कर दिया और उनका शिकार भूनने से भी।

लोग दुखी होकर कच्चा अन्न और कच्चा मास खाने लगे, और साथ ही कौवे-आदमी को गालियां देने लगे। एक दिन उन्होंने गुस्से मे कौवे-आदमी की झोपडी पर हमला कर दिया, और इस पर कौवे आदमी ने गुस्से में जब लोगों पर आग फेंकी, तो वह आग उसकी झोपडी मे लग गयी

इसी आग मे कौवे आदमी का, इन्सानी हिस्सा जल गया, और कौवेवाला हिस्सा उड कर पेड पर जा बैठा। वह कौवा, तब से पेडो पर बैठ कर कांव कांव कर रहा है

पौराणिक कथाओ में बुनियादी सच्चाई की वह शक्ति होती है कि सदियो बाद भी उस शक्ति की ताब बनी रहती है। यह आज भी सच है कि कौवा मनुष्यों का, मानवी-हिस्सा हमेशा उनके स्वार्थ की आग मे जल कर राख हो जाता है, और जो बाकी रहता है वह सिर्फ उनकी कांव कांव वाला हिस्सा होता है। आज हम चाहे समाज को सामने रखें चाहे साहित्य को, चाहे राजनीति को, जिन लोगो की, काम करने के बजाय, सिर्फ कांव कांव सुनायी देती है, वह इस पौराणिक-कथा के मुताबिक आज के कौवे आदमी हैं

एक कर्म अनेक रूप

जसे

सेक्स का कर्म अगर कमाई का साधन हो तो वह व्यापार हो जाता है जिसम औरत एक वस्तु होती है और मद एक खरीदार । यही कम अगर किसी खास उददेश्य की पूर्ति का साधन बने तो रिश्वत का एक रूप हो जाता है ।

यही कर्म अगर बाहु-बल के जोर से दूसरे की मजबूरी म से पदा हो तो बलात्कार हो जाता है ।

यही कम अगर एक व्यक्ति के लिए उम्र भर की सुरक्षा का और दूसरे व्यक्ति के लिए उम्र भर के स्वामित्व का साधन बन तो उसका रूप विवाह हो जाता है ।

यही कम अगर सिफ वश चलाने का वसीला बन ता एक मशीनी कम हो जाता है ।

पर यही कम अगर दो रूहा की पहचान बने, और एक-दूसरे के अस्तित्व के आदर म से पैदा हो, ता जि दगी का जशन हो जाता है । सैक्स के कम को प्रतीक के तौर पर उपयोग कर क तत्रविद्या ने इसे शिव और शक्ति का मल कहा है जिसके बिना शिव भी परम शिव नहीं बन सकता ।

उसी तरह

कलम का कम अगर बचकाना रुचिया म से निकल ता जोहड का पानी हो जाता है ।

यही कम अगर किसी प्रतिशाध म से ज म तो कूडे का ढेर हो जाता है ।

यही कम अगर मात्र पसे की कामना म स निकल तो नकली माल हो जाता है ।

यही कम अगर सिफ प्रसिद्धि की लालसा से उत्प न हो तो कला का कलक हो जाता है ।

यही कर्म अगर बीमार मन में से निकले तो जहरीली आबोहवा होता है।

यही कर्म अगर किसी भी सरकार की खुशामद में से निकले तो जाली सिक्का हो जाता है।

यही कर्म अगर रिश्वत के जोर पर एक नारा या प्रचार बने तो लोगों से दगा हो जाता है।

पर यही कर्म अगर चिंतन की साधना में से निकले तो एक चमत्कार हो जाता है। यहाँ इस कर्म के इस रूप को अगर तन्त्रविद्या वाली भाषा में कहूँ तो कह सकती हूँ—शुद्ध चिंतन—शिव है, और कला एक कर्म-शक्ति, जिन के मेल *के बिना कोई शिव परम शिव नहीं हो सकता।*

यहाँ परम शिव शब्द वास्तविक कलाकार के अर्थों में है।

एक नज्म का विस्तार

दुनिया की पहली नज्म—चढ़ते सूरज के पहले उजाले की स्तुति मे लिखी गयी थी जिसका बुनियादी कारण रात के अँधेरे का भय था। इसीलिए उषा ऋग्वेद की देवी है। सूरज इसीलिए पूज्य था क्योंकि वह इन्सान को अँधेरे से पैदा होनेवाले खतरो से बचाता था।

प्रागैतिहासिक काल का हमारे पास कोई हवाला नही है। पर ईसा काल से पहले का ऐतिहासिक समय अगर पाँच हजार बरस भी मान लिया जाय और ईसा काल की बीस सदियाँ उसमे शामिल कर ली जायें, और इस इतने लम्बे अर्से को चीर कर—जहाँ आज का साहित्य पहुँचा है, उसे सामने रख लें तो देख सकते हैं कि किसी भी देश का साहित्य भय मुक्त इन्सान की रचना नही है। बल्कि लगता है कि साधारण इन्सान के लिए हजारो बरस पहले जो खतरा सिर्फ रात के अँधेरे का खतरा था वह अब दिन के उजाले म भी फैल गया है।

आज अँधेरा जैसे एक अन्त-हीन चीज हो और उसे किसी प्रभात का उजाला कभी न चीर सकता हो।

यह अँधेरा चाहे आज एक लुटेरे वर्ग के हाथो साधारण इन्सान के लिए कमाई के साधन छीने जाने की शक्ल म है, चाहे किसी एक मजहब के अनुयायियो के हाथो किसी अन्य मजहब के अनुयायियो की पीठ मे घुपनवाले छुरे की शक्ल मे है, चाहे हाथ पैरो के लिए और विचारो के लिए हथकडियाँ और बेडियाँ बन चुके—जातियो, राष्ट्रो या रगो और नस्लों के भेदभाव म है, चाहे अन्धी ताकत की शदाई हाकिम श्रेणिया के हाथो जग के हथियारो से लाखो लोगो की बे आई होनेवाली मौतो की शक्ल मे है, और चाहे इन्सान के दिनो दिन बढते हुए अकेलेपन म है। पर एक अन्तहीन अँधेरा है और उससे खौफ़जदा इन्सान आज भी जो कुछ लिखता है, लगता है—जो पहली नज्म उसने रात क अँधेरे से डर कर लिखी थी, यह सब कुछ, अलग अलग स्तर पर, उसी एक नज्म का विस्तार है।

वाक्य-रचना

प्राचीन भारतीय सभ्यता का विश्वास था कि इंसानों में कुछ पवित्र तपस्वी रूहें होती हैं जिन्हें अदृश्य को देखने की अद्वितीय शक्ति का वरदान मिला हुआ होता है। इसी आधार पर कवि और तपस्वी में एक समानता मानी जाती थी। वह कल्पना शक्ति से देवताओं से सम्बन्ध जोड़ सकते थे, उन से बात कर सकते थे, और कविता के उच्चारण से उन्हें अपने पास बुला सकते थे, और इस तरह वेद-रचना को, कवियों के आत्म ज्ञान के आधार पर, काल की सीमा से स्वतंत्र समझा गया। मेरे खयाल में, यह कवि की शाश्वत महानता को वर्णन करने का एक बहुत प्यारा अन्दाज़ था।

प्रेरणा, चिन्तन और बुद्धि का आचरण भी प्राचीन कवियों ने शुरू से ही जान लिया था। एक प्राचीन उदाहरण है कि कवि एक उड़ती हुई चील की तरह आसमान में विचरता है, और इन्तज़ार करता है कि कब कौन से कीमती खयाल का टुकड़ा उस की नज़र की हद में आ जायेगा और इस के बाद वह एक बढ़िया बिम्ब के दर्शनवाले पल को अपनी कलम से समेट लेता है। मेरे खयाल में यह ज्ञान प्राप्ति की निरन्तर साधना का एक प्रेरणादायक उदाहरण था। इसी तरह कहा जाता था कि इन्द्र, अग्नि, वरुण और मित्र कवि के मन की एकाग्रता में सहायक होते थे। यह प्राकृतिक शक्तियां—अवश्य ही प्रेरणा, तीक्ष्णता, चेतनता और एहसासों की अमीरी का चिह्न होंगी। पुरातन काल में कवि का प्रभात को सम्बोधन करना भी उस के अपने मन में उठते हुए उजाले का प्रतीक होगा, और उस के धारण किये हुए सफ़ेद वस्त्र भी मन की निर्मलता के प्रतीक।

पुरातन हवालों में कवि के सपनों में होनेवाला देव दर्शन, मेरे खयाल के अनुसार, इंसान की पहली पीढ़ियों के तजुर्बों से विरासत में धारण किये हुए इल्म का प्रतीक था, जिसका विश्लेषण सदियों बाद आज के मनोवैज्ञानिकों ने कौलक्टिव नालिज के रूप में किया है।

पर प्राचीन भारतीय चिन्तन की जो बात सब से अधिक चकित करती है—

वह कवि की वाक्य-रचना के सम्बन्ध मे है। वाक्य को हमारे ऋषि कवियो ने उस स्त्री के रूप मे कल्पना की थी जो सिफ देखन और सुननेवाले को अपना तन मन अर्पित नही करती—वह सिफ उस मद को (उस कर्त्ता को या उस श्रोता को) अपना आप देती है जिसे वह अपनी रूह की गहराइयो मे से प्यार करती है।

मेरे खयाल मे साहित्य की शैली के बारे मे, नये-से-नये अन्दाज के बारे म, और हर समय बदलते हुए लहजे के बारे म, इससे ज्यादा खूबसूरत मिसाल नही दी जा सकती कि रचना की शैली (यह सुन्दरी) अपने कर्त्ता को भी अपनी रूह तब छूने देती है जब वह रूह की कद्रो कीमतो स उसे प्यार करती है और अपने अर्थों को दूसरे के दिल म उतारने के लिए अपने पाठक की मित्र भी तब बनती है जब वह पाठक की सूझ और शख्सियत की कदर कर सकती है

यह परीजाद औरत—यह कलम की शैली—जिस भी लेखक की महबूबा है, और जिस भी पाठक की मित्र—वह हर युग के खुशनसीब लेखक है, और हर युग के खुशनसीब पाठक।

नही तो—शैली को महबूबा बनाने की बजाय वेश्या बनानेवाले लेखकों का भी अन्त नही है—और उस का चीर हरण करनेवाले पाठकों का भी कोई अन्त नही है

स्वय कृष्ण और स्वय अर्जुन

इ॰ दिना एक प्यारे मासूम दिल की औरत मरे पास आयी जिसे एक खास पहलू से शिक्षित भी कह सक्ती हूँ—वह कुछ बरसो से प्रकृति विज्ञान के सम्बन्ध म ज्ञान प्राप्त करने का जतन कर रही है

उस के बड़े उदास मुह के पहले लफ्ज थे—"अमृता ! तुम मरा कृष्ण बन जाओ ! मेरा मन बहुत भटका हुआ है, मुझे गीता जैसा कोई उपदेश दो कि मेरा मन ठहर जाये "

'उपदेश' जैसा लफ्ज मेरे कानो के लिए और मेरे विचारा के लिए बडा 'ऊपरा' सा था पर उस का दर्द समझ सक्ती थी, इसलिए कहा—"दोस्त ! अपनी जिन्दगी के तजुर्बे का सार जो पाया है, जो समझा है, तुम्हे हाजिर कर सक्ती हूँ तुम चाहे इसे कोई भी नाम द लो !"

उस ने रिश्तो के रेगिस्तानो जसी दुनिया मे अपनी प्यासी रूह का एक एक पहलू मेरे सामने रख दिया कि पैदा होते ही मा ने गले से लगा कर नही पाला, बहुत बच्चे होने के कारण घर की दादी-नानी जसी औरत के हवाले कर दिया था जहा वह माँ बाप और बहनो भाइयो के मोह से वचित होकर पली। साधारण घर मे ब्याह हुआ, पर सास, ननदो, देवरानिया और जिठानियावाले घर म उसकी हस्ती बिलकुल नगण्य-सी रही, इतनी कि जिस की ओर ध्यान दने की उस के पति को भी जरूरत नही थी। उसका अस्तित्व किसी जगह स इतना व्याकुल हुआ कि उस ने पढाई की एक डिग्री लेकर आर्थिक पक्ष से भी और आत्म सम्मान के पक्ष से भी कुछ समथ होना चाहा। वह सामथ्य कुछ हद तक हासिल हो गया पर पढाई और नौकरी मे समय बँट जाने क कारण अपने बच्चो को सारा प्यार देते हुए भी, शायद उतना समय नही दे सकी—जिसका शिकवा अब बच्चे एक उलाहने की तरह उस अकसर दते हुए कुछ निर्मोही से हो गय हैं।

और मन की इस विकलता मे से उस एक मित्र मद के लिए एसी मुहब्बत जाग उठी जिस के प्रत्युत्तर के लिए न उस मद के पास समय था, और न शायद

यह तो प्यास थी जिस की इस औरत को जन्म से प्यास थी।

यही दिल के किसी सूने कोने की पीडा थी जो इस औरत की इतनी बेचनी थी कि उस ने आँखों के आँसुओं से मुख से कहा—"अमृता! तुम मेरा कृष्ण बन जाओ "

उस ने जो कहा—यही इसलिए दुहरा रही हूँ कि यह दर्द उस अकेली का ही कोई अकेला दर्द नहीं है, यह पता नही कितनी ही हजारों-लाखों औरतों की किस्मत का और हसरत का दर्द है। कहा—"घटनाओं के चहरे अलग होते हैं, पर दर्द का चेहरा एक ही होता है, दोस्त! यह दर्द मैं ने भी देखा हुआ है। इसलिए इस की रग रग पहचान सकती हूँ। जो तुम ने मुझे आज कृष्ण कहा है, तो कानों मे कहो कि मेरे 'उपदेश' को धारण कर लें।"

उस ने सारे दिल का जैसे अपने कानों मे डाल लिया। मेरे लफ्ज थे—"मेरी दोस्त! जहाँ तुम खडी हुई हो, वहाँ से बस एक सीढी ऊपर होकर खडी हो जाओ। यह नीचे की सीढ़ी वह है जहाँ तुम हाथ फैला कर कभी माता पिता के प्यार को माँगती हो, कभी बहनों भाइयों के प्यार को, कभी खाविन्द की तवज्जो का, कभी बच्चों के आदर को, और कभी किसी मित्र की भीगी हुई नजर को

"रूह का पका हुआ फल कोई न तोडे, कोई न चखे, इस का दर्द मैं और तुम तो क्या, खलील जिब्रान भी नही सह सका था, उस ने भी तडप कर कहा था—'कोई आये और मेरी रूह का पका हुआ फल तोडकर चख ले, और मुझे इस भार से मुक्त कर दे।'—पर दोस्त! यह किसी और के हाथों की मोहताजी का दर्द है—अगर रूह अपनी है, फल अपना है, तो इसे तोडकर चखने और बाँटनेवाले हाथ भी अपने ही हो सकते हैं।

"इस रूह के पके हुए फल को बस दूसरे के हाथों की मोहताजी से बचा लो! यह नीचे की सीढी माँ-बाप, बहन भाई, बच्चे, या खाविन्द मित्र के हाथों की मोहताजी की सीढी है, जहाँ खड़े होकर हर एक को हाथ फैलाना पडता है। पर ऊपर की सीढी तुम्हारे अपने ही दिल की दौलत से भरी हुई मुट्ठीवाली अवस्था है, जहाँ खडे होकर तुम्हे लेना नही, देना है

"तुम्हारी गैरत अगर पैसे जैसी चीज माँगने के लिए हाथ नही फला सकती, तो कोई प्यार-तवज्जो या मान इज्जत माँगने के लिए अपना हाथ कैसे फैला सकती है?

"दोस्त! तुम से भी ज्यादा हमारे आलिमो फाज्लिो का यह दुखान्त है कि वह भी कुछ शाहरत माँगने के लिए दुनिया के आगे हाथ फलाकर खडे हुए हैं

"यह सारा कम अपने आप को छोटा करने का है। रिश्तेदार-सम्बन्धी या राज सरकारें कौन होती हैं? हम तुम आप ही उन के सामने किसी निचली सीढ़ी

पर खड़े होकर उन्हें दाता बना देते हैं, और खुद भिखारी हो जाते हैं

"तुम्हारी या किसी की भी अमीरी—दो बातों में होती है, एक अपने दिल की दौलत में और दूसरी इल्म में। और यही दोनों दौलतें अपने हाथों की कमाई होती हैं। अपने अस्तित्व का मान मेरी गीता का सार सिर्फ एक ही फिक्रा है—कि भरे हुए हाथ किसी के मोहताज नहीं हो सकते। हमें स्वयं ही कृष्ण बनना है, स्वयं अर्जुन"

अपना कोना

पिछले दिनों एक कारोबारी साहब मिलने आये और कारोबार की बातें करते हुए बोले, 'ईमानदारी क्या होती है? आज की दुनिया ईमानदार आदमी को कोने में लाकर धर देती है। फिर वह कोने में बैठा रहे अपनी ईमानदारी को लेकर "

यह बात वह पहले भी कई बार कह चुके थे। पहले कई बार मैं ने बहस की थी, पर देख चुकी थी कि बहस व्यर्थ जाती है, इसलिए इस बार मैं ने कुछ नहीं कहा—सिर्फ धीरे से हँस दिया।

इस खामोशी का और इस मुसकराहट का भेद उन्होंने नहीं जाना। पर यह भेद अपने पाठकों को बताना चाहती हूँ कि यह एक ईमानदार इन्सान की कितनी बढ़िया किस्मत है कि उसे आखिर इस दुनिया में एक वह कोना नसीब हो जाता है जिसे वह अपना कोना कह सकता है, और अपने अस्तित्व का बीज उस कोने में बीज कर वह अपनी छाया में बैठ सकता है

नहीं तो यह कोने, यह पेड़, और यह छायाएँ कब किसी को नसीब हुई हैं?

कारोबारी दुनिया में बगूलों की तरह भटकते हुए लोग कभी किसी सियासी रचना की छाया खोजते हैं, कभी किसी समाजी रचना का आसरा और कभी किसी मजहबी रचना की ओट।

यह कारोबारी मित्र, अपने और कारोबारी मित्रों की तरह मौसम का तापमान देख कर कभी गुरुओं, पीरों की तस्वीरें छापते, बेचते हैं, कभी किसी सियासी नेता के 'बचन', और मौसम के हाल के अनुसार—कभी गरीबी की भयानकता के नुमाइशी चित्र, या अध नग्न सुन्दर नारियों के नुमाइशी चित्र।

यह एक कोना विहीन दुनिया का लम्बा सिलसिला है जिसका मुनाफा मनुष्य के मुँह को जब खून की तरह लग जाता है वह इसी खून को सूंघते हुए, कभी मुनाफे की मुट्ठी को भिक्षा की तरह मांगता है, कभी उसे चोरी से उठाकर जेब में डाल लेता है।

चोरी और भिक्षा का विश्लेषण एक ही होता है। भिक्षा असल में चोरी का ही बिचारा सा हुआ रूप होती है। झपट्टा मार कर छीनने की बजाय हाथ फला कर मांगने की क्रिया।

भिक्षा के लिए फैलनेवाला हाथ कभी झपट्टा भी मार सकता है, या *झपट्टा मारनेवाला हाथ कभी भिक्षा के लिए फैल सकता है,* यह दोना जतन मौके के तापमान के अनुसार होते हैं। और मौके का तापमान भी मौसम के तापमान की तरह बदलता है

और यह भी—कि चोरी या भिक्षा जसे *हीन शब्द—हीन* मनुष्यों के लिए होते हैं, पर जब यही हीन मनुष्य कभी सयोग से किसी मठ या राज्य की चोरी-जैसी छाया खोज लें या छीन लें तो उनके यही हीन शब्द अपनी बाता म एक पक्षीय कानूनो के कीमती कपड़े पहनकर—उन हीन शब्दों की नग्नता को भी ढक लेते हैं, और अपनी हीनता को भी।

कीमती कपडो से अभिप्राय—सिफ शाही कपडे नही, यह वोटो के व्यापारियो के सफेद भेस भी हो सकते हैं और रूहो के व्यापारियो के भगव भेस भी

पर यह वास्तविकता है कि मांगी हुई या छीनी लूटी हुई जगहो के व्यापारी—कभी वह कोना हासिल नही कर सकते, जहाँ वह एक ईमानदार इसान को कोने मे लाकर बिठाते हैं। यह कोना सिफ एक ईमानदार आदमी की तकदीर होती है जहाँ वह अपने अस्तित्व का सच बीज कर अपनी छाया म बैठ सकता है

उस दिन मेरी खामोशी और मेरी मुसकराहट का भेद सिफ यह था कि मैं दिल के सारे अदब के साथ कोनोवालो को कोना मुबारक ! कह रही थी

अक्षर-शक्ति

अपने छोटे से बगीचे म पौधा को पानी दे रही थी कि कुछ पुराने गमलो को देख कर खयाल आया—सूरजमुखी के बीज पडे हुए हैं, कुछ गमलो म लगा दू। एक टूटे हुए गमले के ठीकरो को नये गमलो के निचले हिस्से मे रखकर, मिट्टी भरी, फिर मिट्टी मे बीज रखे, उन्हें मिट्टी से ढका, फिर उस पर पानी छिडक दिया, और उन्हे एक ओर रखकर जिन पेडो पौधो म सूखे हुए पत्ते अडे हुए थे, वह झाडने लगी - साथ ही खयाल आया कि यही तीन कम—बीज को बीजने का, फिर उसे पानी देकर पालने का, और फिर उसके सूखे पत्ते झाडने का — दुनिया की रचना का आदि कम है। इसी का नाम ओम होता था

ओम शब्द तीन अक्षरो का सक्षेप है—जिसमे 'अ' रचना का मूल है, 'उ' उसके पालन का चिह्न, और 'म' उसके झड-सूख जाने का सकेत। यह एक ही शक्ति के तीन रूप हैं, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव का नाम भी दिया जाता है।

साथ ही—अपनी धरती के प्राचीन फलसफे से एक प्यार आ गया। हैरानी भी आयी कि हजारो बरस पहले जब विज्ञान नाम की चीज नही होती थी, मेरी इस धरती न पूरी दुनिया की सृष्टि रचनेवाली पचास कास्मिक वाइब्रेशन्ज कैसे खोजी थीं

मन—हजारा बरसो की तहों मे उतरता गया आँखो की ताक्त सिफ वर्त-मान के थोडे म हिस्से को देख-समझ सक्ती है, उस से जो कुछ भी परे होता है उसकी सामथ्य से परे ही रह जाता है, पर एक नजर होती है, जिस्म का हिस्सा नहीं होती, पर होती है, मैं ने उस घडी उस 'नजर' की सामथ्य देखी — देखा कि कोई मेरे जसे ही खाकी बदन हैं—जो पचास खिलायी लहरो को कागजो पर लकीरो की शक्ल मे लिख रहे हैं कुछ लकीरें ऊपर से नीचे की आर जा रही हैं, और कुछ बायें से दायें और इन पचास तरह की शक्लों मे वह पचास खिलायी लरजिशें लिपट गयी हैं

चेतन मन हँस सा पडा, बोला—दोस्त ! तुमने आज तक जो भी लिखा या पढा है, उसकी बुनियाद वही पचास लकीरो के रूप हैं—जो सस्कृत के पचास अक्षर होते हैं, और हर अक्षर, हर खिलाई लरजिश का रूप होता था

चेतन मन के जवाब म मैं ने कुछ नही कहा, पर अपने सारे बदन मे एक झनझनाहट महसूस की। उस समय चेतन मन ने ही कहा "यही झनझनाहट होती है जिसे ओम लफ्ज से जोडकर ओमकार बनता है, ओङ्कार बनता है। और यही लफ्ज सारी खिलाई ताकतो की जमा होता है "

मैं मुग्ध सी उसे सुन रही थी कि वह अचानक हँसने लगा। इस बार उसकी हँसी बहुत कडवी थी, इतनी कि उसकी कडवाहट से मेरी जीभ सूख गयी। वह बोला, "हर अक्षर, हर खिलाई ताकत का रूप होता था, पर अक्षरो को धारण करने के लिए इसान के चितन से लकर उसके होठो तक—सच की आवश्यकता होती है। उसी सच के साथ कम की आवश्यकता होती है, चेतन साधना की आवश्यकता होती है जो उसकी आत्मिक शक्ति को जगाती है। उसके बिना हर अक्षर बेजान होना है। आज जहाँ भी, जो कोई भी, जो कुछ कहता है—सब अक्षर शक्तिहीन होकर मिट्टी मे गिर रहे हैं अक्षरो का कम मानसिक और खिलाई ताकतो का रूप होकर एक शक्ति बनना था। देखो ! आज वही सबके होठो पर और कागजो पर पडे हुए अथहीन हो गये हैं "

और मैं चुप हूँ—मन की चेतना भी हैरान और चुप है।

पहचान

इन्हीं दिनों मेरे पास एक बहुत प्यारी लड़की आयी। मेरे नाविलों में स्त्री-पात्र का अध्ययन—उस के उस पपर का विषय है, जो उसे इस वर्ष के अन्त में, अमरीका में हो रहे किसी सेमीनार में पढ़ना है। उसी सम्बन्ध में उसे मेरा नजरिया विस्तार से जानना था, इसलिए मेरे नाविल *नागमणि' की अलका के सम्बन्ध में* उसने खास तौर से पूछा—'पूरे नाविल में अलका आज की औरत है, तगड़ी और निस्सकोच। पर अन्त में वह दकियानूसी औरत हो जाती है—जब अपने महबूब की बीमारी की खबर सुनकर उसके पास वापस जाना चाहती है। जिस ने खबर सुनायी थी—उस ने कहा, पर अगर तुम्हारे पहुँचने तक वह जिन्दा न हो ?' तो वह कहती है 'तब भी मैं वहाँ अपने घर रहूँगी, एक विधवा औरत की तरह ' वह सिर्फ एक ही मर्द के बारे में क्यों सोचती है ? वह अगर जिन्दा न भी हो, तब भी। यह सिर्फ एक मर्द वाला नजरिया आज की औरत का नजरिया नहीं है "

मैं ने उस प्यारी लड़की को जो जवाब दिया था, वह अपने पाठकों से भी बाँट लेना चाहती हूँ—मुहब्बत के बारे में अपने नजरिए को स्पष्ट करने के लिए। कहा—"पूरा नाविल अलका और कुमार की शक्ल में दो विरोधी विचारधाराओं का टकराव है। कुमार के विचार में मुहब्बत एक बन्धन है, और अलका के विचार में 'स्वयं' की पहचान, इसलिए स्वतन्त्रता। कुमार मुहब्बत को स्वीकार भी करता है, उस से इनकार भी करता है। पर अलका को कोई दुविधा नहीं है। *उसका 'एक मर्द का फैसला औरत के जद्दी पुश्तैनी* सस्कारों में से नहीं, 'स्वयं' की पहचान में से है। नाविल की आखिरी सतर—अगर सस्कारों के अधीन होती तो वह आज की तगड़ी औरत का विचार नहीं कही जा सकती थी, वह सचमुच एक दकियानूसी विचार होती, हड्डियों में रची हुई गुलामी का इजहार। पर वह सतर औरत के जद्दी पुश्तनी नजरिये से भी मुक्त है, सस्कारों से भी। इसलिए वही लफ्ज जो आज तक औरत की कमजोरी

और मजबूरी म से कहे जाते हैं, अलका के मुह से कहे जाते हैं, अलका के मुह से पहली बार औरत की स्वतन्त्रता और ताकत बनकर निकलते हैं।

अलका जैसा पात्र जो जदीद अदब म भी 'अति जदीद' माना गया है, उस के मुह से कहलवाया आखिरी फिकरा मेरी चेतन विचारधारा है। वही लफ्ज जो सदियों से आज तक औरत कहती रही है, मैं न यही फर्क बताने के लिए इस्तेमाल किये है कि यह लफ्ज जब जिन्दगी की कमजोरी और मजबूरी मे से निकलत हैं तो कितन भयानक होते हैं, जिन्दगी के अर्थों को खा देनेवाले, पर यही लफ्ज जब किसी की स्वतन्त्रता और ताक्त मे से निकलते हैं तो कैसे 'स्वय की महक होते है, जिन्दगी को अथ देनेवाले।

मरे लिए 'एक मर्द' या 'बहुत से मर्द' का फलसफा, न भारतीय औरत की परम्परा से जुडा हुआ है, न परम्परा से बदला लेने की इच्छा से। यह सिफ 'स्वय' की पहचान से जुडा हुआ है, और पहचान के फसले से।

आबेहयात

मुहब्बत लफ्ज़ को आबेहयात लफ्ज़ से एकाकार करते हुए मैं दुनिया के एक बहुत बडे चिंतक बर्ट्रेण्ड रसेल की यह पंक्तियाँ दुहराना चाहती हूँ जो उस ने अपनी आत्मकथा के आमुख मे लिखी हैं कि उस के जीवन का उद्देश्य क्या है

"मेरी ज़िन्दगी की हाकिम तीन बातें हैं—बहुत सादी सी पर बहुत तगडी —एक मुहब्बत की तलाश, दूसरी इल्म की जुस्तजू, और तीसरी बर्दाश्त की हद के बाहर जो इन्सानी दुख दर्द है उन का दारू खोजना। यह तीनो वेग—तेज हवाओं जैसे मुझे कही भी उडा भटका कर ले जाते रहे हैं।" और मुहब्बत की तारीफ़ करते हुए बर्ट्रेण्ड रसेल लिखता है, "मुहब्बत की तलाश मैं ने इसलिए की कि यह ज़िन्दगी को खुमार देती है—इस खुमारी के कुछ घटो पर मैं सारी बाकी ज़िन्दगी न्योछावर कर सकता हूँ मैं इसे ढूँढ़ता खोजता रहा, क्योकि यही होती है जो इन्सान को अकेलेपन से मुक्त करती है। अकेलापन—जिस मे कोई काँपती चेतना से, ज़िन्दगी के सिरे पर खडे होकर ऐसे झाँकता है—जैसे एक ठण्डी, गहरी और बेजान खाई मे देख रहा हो"

आगे जाकर रसेल यह भी लिखता है, "बहुत सारे मर्द औरतो से प्रभावित होने से डरते हैं। पर जहाँ तक मेरा तजुर्बा है यह एक मूर्ख डर है। मुझे लगता है कि मर्दों को औरतो की आवश्यकता होती है, और औरतो को मर्दों की—मानसिक तौर पर भी, और जिस्मानी तौर पर भी। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं उन औरतों का ऋणी हू जिन से मैं ने मुहब्बत की है। उन के बिना मैं बहुत तगदिल इन्सान रह जाता"

मालन ब्रैण्डो को मैं फिल्म के क्षेत्र का एक ऐक्टर नही, एक कलाकार मानती हूँ। और उस के इन शब्दो के साथ सहमत हूँ कि दुनिया मे हर कोई ऐक्टर है, फर्क सिर्फ इतना है कि कई लोग इसे कारोबार के तौर पर अपना लेते हैं, वह दूसरो से इस व्यापार को कुछ ज्यादा जानते हैं, और उन्हें इस का मोल भी मिलता है। वैसे ज़िन्दगी मे भी लोगो को इस का मोल मिलता है—

जसे जिस सेक्रेटरी को मालूम हो कि उस मे सैक्स अपील है, वह इस का इस्तेमाल करती है, और दूसरो से महँगी हो जाती है और हम सब दिल से जानते हैं कि फिल्मो के सितारे कलाकार नही होते मेरी नजर मे एक भी कलाकार नही —" मैं मालन ब्रण्डो को एक्टर की बजाय कलाकार मान कर, मुहब्बत और औरत के बारे मे उसके नजरिये को मैं मान देती हू – "मर्दों का औरतो को नफरत करना असल मे मर्दों का औरतो से खौफ खाना है। उन्हे यह खौफ औरतो पर आधारित होने के खयाल से आता है मर्दों को औरतें पालती हैं, वह उन के सहारे बडे होते हैं—और इसी मोहताजी के खौफ से इतिहास इन बातो से भरा हुआ है कि औरतें कितनी बुरी हैं कितनी खतरनाक हैं। सारी बाइबल मे उन की निन्दा के हवाले हैं। औरत मर्द की पसली से बनायी गयी थी—यह कहानी भी बाद मे मर्दों ने घड ली अपने ही खौफ मे से—'

इस तरह मुहब्बत के असल अर्थो से सिर्फ औरत वचित नही हुई, मर्द भी वचित हुआ है। और इस के अर्थों को नगण्य कर के औरत ने मर्द से मिलनवाले सुखो के साधन को मुहब्बत समझ लिया है, और मर्द ने औरत की जवानी को, और औरत के रूप को, मुहब्बत का नाम दे लिया है मेरे अनुसार मुहब्बत के अर्थों को आबेहयात के अर्थों मे समझा जा सकता है—जिस की एक घूट पीने से कोई मौत रहित हो जाता है—स्वय' के विश्वास की मौत से और किसी भी तरह के उत्साह सच, और साहस की मौत से मुक्त

मुहब्बत से लबरेज हुए पलो मे – इन्सान अपने महबूब पर जिन्दगी को न्योछावर करने के समर्थ हो जाता है —यही निडरता आबेहयात होती है जो उसे मौत के भय से मुक्त कर देती है। और यही भय मुक्त हो जाना मौत रहित हो जाना होता है।

यह मुहब्बत के खोये हुए अर्थ हैं—कि आज जिन के पास पदवी, अमीरी, जवानी और हुस्न जैसी नेमतें भी है—उन के अन्तर मे भी अकेलेपन का कम्पन उतरा हुआ है किसी मर रहे अग का कम्पन

यथार्थ जो है, और यथार्थ जो होना चाहिए

"यथाथ जो है, और यथाथ जो होना चाहिए"—अगर इन के बीच का अतर मुझे पता न होता, तो मरा खयाल है, मुझे अपन हाथ म कलम पकडन का कोई हक न ी था।

इस बात की तशरीह करने के लिए यहाँ मैं बगाल के लेखक विमल मित्र की एक कहानी 'धरती' का हवाला देना चाहूगी। कहानी का आरम्भ लखक इस तरह करता है "अगर यह कहानी मुझे न लिखनी पडती तो मैं खुश हाता"—यह आँखो देखी कहानी कोई मिसज चौधरी आकर लेखक को सुनाती है और साथ ही बडी शिद्दत से कहती है 'विमल! तुम यह कहानी जसे मैं ने सुनायी है, हू ब हू वसे ही लिख दो, पर इस का अत बदल कर!"

कहानी यह है कि मिसज चौधरी एक मकान मालकिन है आर मकान के कमरे एक एक रात के हिसाब से उन लागो को किराये पर दती है, जि ह किराय की औरत क साथ रात गुजारन के लिए कमरे की जरूरत होती है। यह कमाई उस के गुजारे का साधन है और इस कारोबार म एक अनहोनी बात हो जाती है कि एक जवान, सुदर और ईमानदार लडकी के पास अपन महबूब से मिलने के लिए कोई जगह नही है, इसलिए वह लडकी और उस का महबूब कभी कभी मिसज चौधरी स पाँच रुपये कुछ घण्टो का किराया देकर एक कमरा ले लेत हैं। दोनो छोटी नौकरी करते हैं विवाह करना चाहते है, पर कोई घर किराये पर ले सकने की उन मे सकत नही है, इसलिए विवाह का, और घर का सपना वह पूरा नहीं कर सकते। दोना म इतनी सकत भी नही कि बाहर कही मिल कर खाना खा सकें। इसलिए लडकी घर की पकी हुई रोटी लपट कर ल आती है, वह दोनो साथ मिलकर, उस कमर म बठकर, खा लेत हैं, बातें कर लते हैं, घडी भर जी लेते हैं।

मिसेज चौधरी शुरू स इस कारोबार म नही थी। वह भी कभी शरीफ जादी थी, घर की गृहिणी थी, तुलसी की पूजा किया करती थी। पर जिन्दगी

की कोई घटना ऐसी घट गयी थी कि उसे गुजारे के लिए यह कारोबार करना पडा था। इसलिए उसे इस सच्ची, सादी, और सुन्दर लडकी से मोह-सा हो जाता है। कभी उन के पास पाँच रुपये भी नही होते तो मिसेज चौधरी तीन रुपये ही ले लेती है, और कभी कमरा उधार पर भी द देती है।

उस मकान मे आनवाले सब मद एश परस्त हैं, नित नयी लडकी चाहते है, सो उन मे से एक कोई अमीरजादा पाँच सौ, आठ सौ, एक हजार रुपया खच करने के लिए भी तयार है, अगर कभी उसे एक रात के लिए वह लडकी मिल जाय जो अपने महबूब के सिवा किसी की ओर नजर उठाकर नही देखती। मिसेज चौधरी उस को पेशकश को ठुकरा देती है, क्योकि यह बात उसे असम्भव लगती है।

तभी लडके की नौकरी छूट जाती है और उस का सपना हमेशा के लिए अधूरा रह जाने की हद तक पहुँच जाता है। इस हालत मे मिसेज चौधरी उस लडकी से उस अमीर आदमी की सिफ एक रात के लिए एक हजार रुपय की कीमतवाली बात कह देती है। लडकी आँखें झुकाकर कहती है, "अच्छा, मैं उस से पूछ लू"—और फिर वापस आकर वह एक रात की कीमत एक हजार रुपया कबूल कर लेती है।

मिसेज चौधरी का विश्वास डिग जाता है। पर वह लडकी एक रात उस आदमी के साथ गुजारकर, एक हजार रुपया लेकर चली जाती है। और फिर कुछ दिन के बाद उसे लडकी के विवाह का निम त्रण पत्र मिलता है। वह अचम्भे से भरी हुई विवाह म जाती है—वही लडकी सुहाग का जोडा पहने बठी हुई है, और उस का वही महबूब उस की माग मे सि दूर भर रहा है।

मिसेज चौधरी के पैरों-तले की धरती हिल जाती है। वह उसी शाम को कहानी लेखक के पास आकर यह कहानी लिखने के लिए कहती है, और साथ ही बडी शिद्दत से कहती है "तुम इस कहानी का अ त बदल देना। यह विवाह यथाथ नही हो सकता। ऐसी घटना के बाद सिफ तबाही यथाथ होती है। आज का विवाह कल का तलाक बन जायेगा। वह लडकी भी आखिर म मेरी तरह मेरे जसा ध धा करेगी। यही सदा से होता आया है, और होता रहेगा "

कहानी लेखक कई बरस तक कहानी नही लिख सकता, क्योकि वह नही जानता कि कहानी का क्या अ त लिखना चाहिए। और इस तरह प द्रह बरस बीत जाते हैं। वह दोनो पात्रो को ढूढन की कोशिश करता है, पर वह कही नही मिलत। फिर एक सजोग घटता है कि कलकत्ते स दूर मध्य प्रदेश म एक नयी लाइब्रेरी के उदघाटन पर लेखक को बुलाया जाता है, और समारोह के बाद लाइब्रेरी का वैलफेयर आफिसर उसे अपने घर चाय पर बुलाता है। वह घर एक छोटा सा बँगला है, जिस का छोटा सा बगीचा है, और घर की एक

एक चीज पर सुखी जिन्दगी की मोहर लगी है। दोनो पति-पत्नी उस से किताबो की बातें करते हैं। उन का बच्चा बहुत प्यारा है, पर उस का नाम इतना अनोखा है—कि लेखक के आश्चर्य करने पर, मर्द बताता है कि हम पति पत्नी दोनो ने अपने नामो को मिलाकर —अपने बच्चे का नाम बनाया है। यहाँ लेखक को अपने खोये हुए पात्र मिल जाते हैं। यह दोनों वही मुहब्बत के दीवाने हैं जो कभी मिसेज चौधरी के घर कुछ घण्टो के लिए कमरा किराये पर लिया करते थे

अब लेखक पन्द्रह बरस से मन म अधूरी पड़ी हुई कहानी लिख सकता है। पर जमे मिसेज चौधरी ने कहा था कि इस कहानी का अन्त सिर्फ दुखान्त लिखना चाहिए, क्योकि दुखान्त ही इसका यथार्थ है, कहानी-लेखक वह नही लिख सकता।

पराये मर्द की सेज पर सोकर एक हजार रुपया कमानेवाली लडकी के अगो को वह रात बिलकुल नही छू सकी। वह रात—उस की रूह और उस के बदन से हटकर परे खडी रही। सिर्फ लडकी की रूह से परे नही, उस के महबूब की रूह से भी। और वही एक हजार रुपया—उन दोनो के सपनो की पूर्ति का साधन बना, उन के वस्ल का सच, उनके घर की बुनियाद।

यह कहानी एक बहुत खूबसूरत सम्भावना है उस यथार्थ की जो, अगर सम्भव नही, तो सम्भव हो सकना चाहिए।

कोई भी अदीब, अगर जिन्दगी की नयी और सशक्त कद्रो से जुडी हुई सम्भावनाओ को—जिन्दगी के यथार्थ की हद म नही ला सकता, तो मेरे विश्वास के अनुसार वह सही अर्थों म अदीब नही है।

एक लेखक की—अपने पाठको से वफा, सिर्फ इन अर्थों म होती है कि वह पाठको के दृष्टिकोण का विस्तार कर सके। जो लेखक यह नही कर सकता वह अपनी कलम से भी बेवफाई करता है, पाठको से भी।

'धरती' कहानी का लेखक जब यह कहता है 'अगर मुझे यह कहानी न लिखनी पडती तो मैं खुश होता" तब वह सिर्फ वह मनुष्य है जो सदियो स चले आ रहे उस यथार्थ का कायल है जिसका अन्त सिर्फ दुखान्त होता है। पर जब वह कहानी का अन्त वह नही लिख सकता जो सदियो से होता आया है, तब वह सही अर्थों मे एक कहानीकार है।

मैं ने भी जब और जो भी लिखा है या लिखती हूँ, सही अर्थों म एक कहानीकार होने के विश्वास को लेकर लिखती हूँ। और साथ ही इस फर्क को सामने रखकर—"अमृता जो है—और अमृता जो होनी चाहिए"—बिलकुल उसी तरह "यथार्थ जो है—और यथार्थ जो होना चाहिए।"

जवानी की बावरी लटे

पूस का पाला मुडेरो स नीचे उतरते हुए—अब बदन पर भी उतरने लगा था, और मैं धूप की एक कतरन ढूढ़कर घर की छत पर, पीली दरी का टुकड़ा बिछा कर, अलसायी सी हो गयी थी कि घर की झाड पोछ करनेवाली दोना मुनिया और कम्मो छत पर झडे हुए नीम के पत्त बुहारने के लिए आ गयी

धूप की कतरन अब तक फन कर कोई दो चारपाइयो का जगह घेर चुकी थी—इसलिए मुनिया और कम्मो मुझ से थोडी सी दूरी पर, सुकडकर बैठत हुए बोली—'मां ! हम भी पीठ को धूप लगा लें ?

कुछ मिनट बीत गय । वह दोना झाडू की सीको की तरह इकट्ठी सी हो कर बठी रही । फिर धूप ने होले-होले उनकी गांठ ढीली कर दी, और वह होले-होले बातें करने हुए झाडू की सीको की तरह खुल गयी

धूप क सेंक से मैं ऊँघ सी गयी थी, जब कम्मो की आवाज एक सींक की तरह चुभी और मैं चौंक सी गयी । कम्मो मुनिया से कह रही थी—लुगाई की जून तो बुरी होती है, मद की जीभ सिली हो तो सास की जीभ फट जाती है, ससुर की आँखें

मैं जानती थी कि दोनो ब्याही हुई हैं दो-दो बच्चो की मां हैं, और चाहे उन की जवानी अभी भी कोरे कपडे के समान है, पर उस पर कई जगह गरीबी की खोचें लगी हुई हैं

मैं ने उन की ओर एक बार देख भर लिया, कहा कुछ नही । लगा—कुछ पूछू कहूँगी तो वह फिर बुहारी की तरह बँध जायेंगी

धूप के सेंक से शायद मुनिया का बदन मचल उठा था, वह जिदगी के मह-पाले को बदन स झाडते हुए कम्मो स बोली, "अरी, तू अपना बुडढा मेरी बुढिया का दे दे—दोनो की जोडी बनती है । तेरा ससुर बहुत ही पाजी है, और मरी सास भी उस के मुकाबले की है "

जवाब मे कम्मो ने कहा, ' बात तो तू ने खरी कही । मरी सास तरे ससुर

जैसी पुन्नी है, दोनों की जोड़ी खूब रहेगी " तो मुनिया बोली, "उन की जून भी सँवर जायेगी, हमारी भी। चल, फिर दोनों के फेरे करवा दे! बाम्हन ने तो अपने टके ही लेने हैं, और क्या आधे पैसे तू डालियो, आधे मैं डालूगी "

अब मुनिया टबों से पानी का मग लेकर ईंटों के फर्श पर अपनी एड़ियाँ रगड़ रही थी। मैली एड़ियाँ कुछ चमक उठी थीं, और शायद इसी लिए एड़िया की तरह मुनिया भी चमककर बोली, "बाम्हन को तो दस टकों का मोह होता है, किसी के दिल से तो होना नहीं "

मुझे मुनिया की बात की थाह नहीं मिली थी, पर कोई घड़ी भर को चुप रहने के बाद जब कम्मो ने मुनिया के दिल को छेड़ दिया तब बात की थाह मिल गयी। और मैं भी हुंकारे की तरह उन की बातों में रिल गयी। लगा, अब मुनिया इस तरह एक-एक सींक कर के बिखर चुकी थी कि मेरे सामने जल्दी से बुहारी की मुठिया की तरह नहीं बँधेगी। मुनिया ने कम्मो की जगह मेरी ओर देखते हुए कहा, 'माँ! तुम बताओ! मन्त्र सच्चे हैं या टके? हम दो बहनें थी, दोनों के फेरे दो भाइयों के साथ पड़े। मैं भी काठी की इकहरी थी, और दोनों भाइयों में छोटा भी काठी का इकहरा था, उधर मेरी छोटी बहन भी भारी काठी की थी, और दोनों भाइयों में बड़ा भी भारी काठी का था। मेरी सास देखने आयी तो मेरी माँ से कह गयी 'बड़ी के फेरे छोटे से करवाना, और छोटी के बड़े से। जोड़ियाँ तब ही बनेंगी।'—और मेरी माँ ने फेरे करवा दिये। हम दोनों अपने अपने मर्द के साथ ससुराल आयी तो ससुरजी बोले, 'नहीं, मुझे तो यह मंजूर नहीं' बड़ी बड़े के साथ, और छोटी छोटे के साथ—तभी जोड़ी ठीक बनती है।"

"फिर?" मैं ने जरा सा चौंककर पूछा, और साथ ही दरी पर छाँह आ जाने के कारण मैं ने दरी को घसीट कर धूप में कर लिया।

"फिर क्या! पुन ने बाम्हन बुलवाकर चार टके दिये और मेरे फेरे बड़े से करवा दिये, और मेरी बहन के छोटे से, और हम अपने-अपने मर्द की खाट से उठा कर दूसरे की खाट पर डाल दिया।"

मुनिया से कुछ पूछने की बजाय मैं सोच में उतर गयी कि यह कसक संस्कारों की है या दिल में उतरी किसी की सूरत की है?—'शायद दोनों बातों की " मन ने कहा, पर साथ ही कहा, "अभी जो अपने ससुरों और सासों से विवाह रचा रही थी वह संस्कारों की पकड़ में कैसे हो सकती हैं "

इतने में मेरी जगह मुनिया से कम्मो पूछ रही थी, "दुनिया तो होती ही खोटी है, पर तू खरी बात बता कि तुझे अभी भी छोटा याद आता है?"

मुनिया ने कम्मो को उत्तर देने के स्थान पर मुझ से पूछा, "माँ! तुम बताओ! एक बार जिस के साथ फेरे पड़ गये, वह ही अपना मर्द नहीं हो गया?"

मुनिया का जवाब सस्कारो मे से खोजा हुआ जवाब था। मैं कुछ कहन जा रही थी कि कम्मो ने कहा, "अरी, तू सच बात कह। मैं तुझ से पूछती हूँ कि तुझे छोटा अच्छा लगता है ?'

मुनिया की एडियाँ अब और भी ज्यादा चमक रही थी। मुह भी एडियो की तरह चमक पडा। पर वह बालों की लटूरियों का जूडा बाधन लगी। बालो की दो लटें जूडे म नही बध रही थी। उस ने थक कर सारा जूडा खाल दिया, और बोली, "कम्मो भाभी ! बात तो दिला की सच्ची होती है, दिल म तो छोट का मुँह ही बसता है "

और मैं अभी तक सोच रही हूँ पता नही—यह गीत किस न लिखा था "अहल जवानी दियाँ मेढियाँनी माए, डरदा कोई वी ना गुदे ' (भरी जवानी की लटें, माँ री ! डर का मारा कोई न गूथे)

शुद्ध-स्वर

राग ऋषियों ने सात सुरों की कल्पना इस प्रकार की है—मोर की आवाज से खड़ज, पपीहे की आवाज से ऋषभ, बकरी की आवाज से गन्धार, कूंज की आवाज से मद्धम, कोयल की आवाज से पंचम, घोड़े की आवाज से धैवत और हाथी की चिंघाड़ से निशाद।

राग विद्या के यह सात स्वर शुद्ध स्वर हैं। स्व का अर्थ है अपनेआप, और र का अर्थ है शोभावान यानी सहज सुंदर।

बाद में कई रागों के लिए ऊँचे-नीचे स्वरों की आवश्यकता पड़ी तो पाँच विकृत स्वर बनाये गये, जिन में से ऋषभ, गन्धार, धैवत और निशाद विकारी होकर कोमल हो जाते हैं, और मद्धम विकृत होकर तीव्र हो जाता है।

रागों के सिलसिले में गृह-स्वर, वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी लफ्ज़ प्रयोग किये गये हैं। गृह-स्वर वह होता है जहाँ राग के अलाप की समाप्ति हो। वादी स्वर वह होता है जो राग का प्राण हो। संवादी स्वर वह होता है जो वादी स्वर का सहायक हो। अनुवादी स्वर वह होता है, जो वादी और संवादी को मदद देकर राग की पूरी सूरत सामने ले आये। और विवादी स्वर वह होता है—जो अच्छे भले राग की सूरत बिगाड़ दे। इस विवादी स्वर को वर्जित-स्वर भी कहते हैं, शत्रु स्वर भी।

स्वर केवल राग विद्या की सम्पत्ति नहीं होते, हर भाषा के प्राण होते हैं। खासकर तब, जब भाषा कला का माध्यम बनती है।

अदबी जुबान के शुद्ध स्वर किसी भी अदीब के यह सात वसफ कहे जा सकते हैं—अनुभव की अमीरी, एहसास की तीक्ष्णता, चिंतन की गहराई, विशाल मुतालया, खोज की रुचि, सच का इश्क और जीवन के नैतिक मूल्य।

हुनर का क्राफ्टवाला पहलू साधना के अर्थों में होता है।

नज़्म हो, नसर हो, या तनकीद हो, उसी के अनुसार इन सात शुद्ध स्वरों में से कोई स्वर गृह स्वर होता है, कोई वादी स्वर, कोई संवादी, और कोई

अनुवादी। पर अदबी जुबान में जो विवादी स्वर होता है, वह इन्सान के निकृष्ट विचारों का स्वर होता है, कला का शत्रु स्वर। हुनर का वर्जित स्वर। अदब में बेअदब स्वर।

जिन्दगी के हादसे कई रागों की स्थापना करते हैं, जिनके लिए नये स्वरों की जरूरत पड़ती है, ऊँचे नीचे स्वरों की। पर वह पाँच विकृत स्वर—इन्सान के अकेलेपन, उदासी, विरक्ति, और धूप या पीड़ा के एहसास होते हैं। वह विकृत स्वर होते हैं—पर वर्जित नहीं।

साहित्य का जादू राग के जादू जैसा होता है, आत्मा में दीये जला सकने-वाला, मन के मेघ से नीर ले सकनेवाला, और सर्प रुचियों का बाँध सकने-वाला।

पर हमारा आज का बहुत-सा साहित्य लोक-कानों के लिए यदि शोर बन गया है, तो दोस्तो! यह हम देखना है कि हम कहाँ-कहाँ निकृष्ट विचारों के वर्जित स्वर लगा रहे हैं।

सूर्य-नाडी चन्द्र-नाडी

पौराणिक विचारधारा ने अधनारीश्वर फलसफे को इसानी जिस्म मे इस तरह पाया है कि इसान के दायी ओर उस की सूय नाडी होती है और बायी ओर चद्र-नाडी।

सूय नाडी शिव का प्रतीक है, मद का, जिसे हठयोगवाले पिगला कहते हैं। और चद्र नाडी शक्ति की प्रतीक है, औरत की, जिसे हठयोगवाले इडा कहते हैं। इन दोनो शक्तियो को इन के कर्म के आधार पर प्राजना और उपाय कहते हैं।

साधना से इडा और पिगला का मिलन सम्भव होता है। और दोनो के बीच, दोनो के मिलने के स्थान को हठयोगवाले सुषुम्ना कहते हैं। कहते हैं कि अनहत शब्द इसी स्थान से सुनायी देता है, इसीलिए इस का नाम ब्रह्म माग भी है महा पथ भी।

यह सारी सरचना, ज्यों की-त्यो, जिदगी की सरचना भी है। एक मद और एक औरत का शाश्वत आकषण, जिसे मोहब्बत से शक्ति लेकर महा पथ पर चलना होता है और वस्ल का अनहत शब्द सुनना होता है।

योगियो ने इसानी शख्सियत के विकास के लिए साधना का जो रास्ता नियत किया है—वह है, साधना की चार मजिलें, जिहें व चार कमल कहते हैं। यह चार कमल उन्होने इसानी जिस्म के चार हिस्सो म कल्पित किये हैं।

पहला—मणिपुर चक्र, जिसे निर्माण काया भी कहते हैं, वह इसान क केंद्र-बिदु नाभि मे होता है।

दूसरा—अनहत चक्र, जिसे धम काया भी कहते हैं वह हृदय म होता है।

तीसरा—सभोग चक्र, यानि सभोग काया, वह गदन के नजदीक होता है।

और चौथा कमल इसान के सिर म होता है हजारो नाडियो का गुच्छा, हजारो पत्तियोवाला कमल फल, जिस पर सहज सच विराजमान होता है। यही सहज अवस्था उस महा सुख के अनुभव की प्रतीक है, जो अनुभव छोटे से पिण्ड

को ब्रह्माण्ड के साथ जोडता है। इसी अनुभव को देव रूप म कल्पित कर के विष्णु कहा गया है, जो कमल फूल पर विराजमान है

यह इसान की स्वय शक्तियो के नाम हैं, जिन्हें साधना के बल से जगाया जाता है। यह निर्माण शक्ति का वह रास्ता है, जिसे मस्तक तक पहुँचना होता है, और विष्णु का रूप हो जाना होता है।

यही मजिलें औरत और मद के मिलन की मजिलें हैं। इस मिलन ने निर्माण काया की पहली मजिल से आगे जाकर, धर्म काया और सम्भाग-काया म से गुजरकर, वस्ल के विष्णु का स्वरूप बनना होता है। अधनारीश्वर का रूप।

निर्माण काया से अगली मजिल धम काया, अद्वैत की मजिल होती है जिस मे मजहब, कौम या कानून हायल नही होते। सूय-नाडी और चद्र नाडी का मिलन जिदगी का यथाथ है, पर जिस के लिए साधना जसे सामथ्य की आवश्यकता होती है।

ऊँचा आसमान

आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में एक कहानी प्रचलित है कि पहले समय में आसमान बहुत नीचा था। इतना नीचा कि धरती के लोग सीधे खड़े होकर नहीं चल सकते थे। वह धरती पर रींगकर चलते थे। तब धरती पर घुप अँधेरा रहा करता था और धरती के लोग कन्द-मूल टटोलकर खोजते थे और अपनी भूख मिटाते थे फिर धरती के पछियों को खयाल आया कि यह दशा बड़ी दुखदायी है अगर किसी तरह अम्बर को धकेलकर ऊँचा कर दिया जाय तो धरती के लोग सिर उठाकर चल सकेंगे

सो पछियों ने मिलकर लम्बे लम्बे तिनके इकट्ठे किये और उन के ज़ोर से आसमान को ऊपर की ओर धकेलना शुरू किया। आसमान सचमुच ऊपर हो गया, और धरती के सारे आदमी, जो घुटनों के बल रींग रहे थे, सिर ऊँचा कर के खड़े हो गये।

साथ ही एक चमत्कारी घटना घटी कि आसमान के ऊँचा हो जाने से उस के पीछे जो सूरज छिपा हुआ था वह सामने आ गया, और सारी धरती पर उजाला हो गया।

यह कहानी सिर्फ बीते हुए समय की नहीं है, मेरी नज़र में हर काल की कहानी है हर क्षेत्र की, पर अपने अपने अर्थों में।

यह कहानी इन्सानी रिश्तों के क्षेत्र में आज भी सच है। सिर्फ अन्तर यह है कि इस क्षेत्र में हर एक का आसमान अपना अपना होता है। पछियों की रूह वाले जो इन्सान अपने ज़ोर से कुछ तिनके जोड़कर अपना आसमान ऊँचा कर लेते हैं उनकी धरती पर उजाला हो जाता है, और वह अपने परों तले की धरती पर सिर उठाकर चलते हैं। नहीं तो—सारा समाज सामने गवाह है—जहाँ हर मर्द और हर औरत घने अँधेरे में एक दूसरे को बिना पहचाने सारी उम्र घुटनों के बल रींगते रहते हैं

और यह कहानी हमारे पंजाबी साहित्य के क्षेत्र में भी सच है जहाँ मुत्ता

नज़र का आसमान इतना नीचा है कि हमारे साहित्यकार शोहरत की भूख लगने पर बडे हाथ पाव मारकर, मान सम्मान के फूल पत्ते खोजते रहते हैं। और एक दूसरे की निन्दा चुगली के अंधेरे मे रीगते हुए कभी भी सिर ऊँचा कर के नही खडे हो सकते।

हमारे साहित्य म जो भी कुछ साहित्यिक मिआर के आधार पर होना चाहिए वह व्यक्तिगत दोस्ती और दुश्मनी के आधार पर हो रहा है।

दोस्तो ! हमारे हाथो का सहारा हमारी कलमें हैं। यही कलमे ऊँची कर के हम नीचे आसमान को उठाकर ऊँचा आसमान कर सकते हैं और जिस ओट ने हमारा सूरज छिपा रखा है, उसे हटाकर हम अपना सूरज ढूढ सकते हैं।

सूरज एक हकीकत है, उस का उजाला एक हकीकत है, आप आजमाकर देख लें दोस्तो कि अँधेरे का यथार्थ, यथार्थ नही है।

और पछी रूह का वरदान पानेवाले दोस्तो ! आसमान जितना ऊचा होगा, उस की खिला को चीर सकनेवाली आपकी नजर भी ऊँची हो जायेगी। और सूरज चाद तारे नजर की हद मे आ जायेंगे।

दोस्तो ! साजिशो के अँधेरे मे हाथो घुटनो के बल हो कर चलना सचमुच पछी रूह की तौहीन है।